

220.02
95II

५३००२
१क II

३०२८०

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या २२००३

आगत संख्या ३०२२०

१५ II

पुस्तक-दिवरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित ३० वे दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में पापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

हरिद्वार

वर्ग संख्या ५३०.०३ आगत संख्या ३०२८०
१८८१

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

11 8 DEC 1985 27 JUN 1986

694/20114 7 694/20114

1 FEB 1986

694/20114

21 AUG 1986

694/2-2

5 MAR 1986

694/20114

15 APR 1986

694/20114

23 MAY 1986

715/2

१८. ५. २३.

५३०.४
९५.२

| | |
|-------|--|
| ५३० | |
| - १०६ | |
| ३०२.० | |

५३०.०३
९५.११

initial

CHECKED 1973
Initials

PRATYAKSHA-SHARIRAM

A TEXT-BOOK OF
HUMAN ANATOMY IN SANSKRIT

Including Classical Nomenclature

WITH

A Short History of Ayurvedic Literature
In English & Sanskrit Introductions.

PART I.

BY

GANANATH SEN,

MAHAMAHOPADHYAYA (Govt. of India),

Vidyasagar, Pranacharya, Saraswati, M. A., L. M. S.,

DEAN of the Faculty of Medicine and Surgery (Ayurveda), Benares
Hindu University; PRESIDENT, ALL-INDIA AYURVEDIC CONFERENCE
(Allahabad) 1911, (Indore) 1920, (Mysore) 1930; Ex-President,
All-India Ayurveda Vidyapith; Ex-President, Astanga Ayurveda
Vidyalaya; Late Principal, Superintendent & Physician-in-chief
ASTANGA AYURVEDA COLLEGE & HOSPITAL; Founder-Principal,
VISHWANATH AYURVEDA MAHAVIDYALAYA & HOSPITAL;
Author of SIDDHANTA-NIDANAM (Text-Book of
Pathology & Symptomatology in Sanskrit),
AYURVEDA-SAMHITA, etc. etc.

FOURTH EDITION

CALCUTTA

1940

530.03,1 K11



30280

PRINTED & PUBLISHED BY
KAVIRAJ S. K. SEN, M. SC.
KALPATARU PALACE,
223, CHITTARANJAN AVENUE,
CALCUTTA.
(September, 1940)

ALL RIGHTS RESERVED BY
PUBLISHER.

KALPATARU PRESS,
223, CHITTARANJAN AVENUE,
CALCUTTA.

प्रत्यक्षशारीरम्

नाम

समग्रनरशारीरवर्णनात्मकः अभिनवशारीरग्रन्थः

प्राचीनशारीरसंज्ञादिविचारसमन्वितः

बहुचिह्नोज्ज्वलश्च ।



महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन-शर्म-सरस्वती,

विद्यासागर, वैद्यावतंस, प्राणाचार्य,

एम्. ए, एल्. एम्. एस्.—

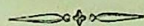
महाशयेन विरचितः ।

तस्य चायं

प्रथमो भागः

(अस्थि-सन्धि-क्षायुवर्णनपरः)

चतुर्थावृत्तिः ।



कलिकाता महानगर्यां

प्राणाचार्य कविराज श्रीसुशीलकुमार सेनशर्मा,

कविरत्न, एम्, एस-सी,—

इत्यनेन प्रकाशितः ।

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी, सं० १९६७)



प्रथमभागस्य विषय-सूची ।

| | (पृष्ठांकाः) |
|---------------------------|----------------|
| English Introduction | 1-11 |
| उपोद्घात सूची ... | i-ii. |
| उपोद्घातः ... | १-८२ |
| प्रथमोऽध्यायः । | |
| मङ्गलाचरणम् ... | १-२ |
| शारीरोपक्रमणीयाध्यायो नाम | ३-५ |

द्वितीयोऽध्यायः ।

| | |
|--|-------|
| शारीरपारिभाषिकाध्यायो नाम | ६-१४ |
| त्वचः, कलाः, पेश्यः, स्नायवः, सिराः, धमन्यः, रसायन्यः, नाड्यः, स्रोतांसि ... | ६-६ |
| धातवः, रसः, लसोका, रक्तम्, मांसम्, मेदः, वसा, अस्थीनि, मज्जा, शुकम् ... | १०-११ |
| आशयाः, शिरोगुहा, उरोगुहा, उदरगुहा ... | ११ |
| ज्ञानेन्द्रियाधिष्ठानानि ... | १२ |
| श्रोत्रे, त्वचः, नेत्रे, रसना, घ्राणे १२-१३ | |
| कर्मेन्द्रियाधिष्ठानानि ... | १३ |
| वाग्निन्द्रियम्, पाणि-पादम्, पायुः, उपस्थः ... | १३ |
| नवद्वाराणि ... | १३ |
| मर्माणि ... | १३ |
| शिरोप्रीवोपाङ्गानि ... | १३ |
| मध्योपाङ्गानि ... | १३ |
| शाखोपाङ्गानि ... | १३ |

तृतीयोऽध्यायः ।

| | |
|----------------------------|-------|
| अस्थिसामान्यवर्णनीयाध्यायः | १४-१८ |
|----------------------------|-------|

(पृष्ठांकाः)

| | |
|-------------------------------|----|
| अस्थिसामान्यस्वरूपम्— | १४ |
| अस्थिविभागः ... | १६ |
| अस्थिसंस्थाने प्राचां समन्वयः | १६ |
| शाखास्थानां संख्या | १६ |
| मध्यशरीरास्थानां „ | १७ |
| शिरोऽस्थानां „ | १७ |

चतुर्थोऽध्यायः ।

| | |
|--|-------|
| अस्थिविशेषवर्णनीयाध्यायो नाम | १८ |
| शाखास्थिविज्ञानोयः परिच्छेदः | १८ |
| अधःशाखास्थीनि— | |
| पादाङ्गुल्यस्थीनि, पादकूर्चास्थीनि जङ्घास्थि, अनुजङ्घास्थि, जान्वस्थि ऊर्वस्थि ... | १६-२५ |
| ऊर्ध्वशाखास्थीनि— | |
| कराङ्गुल्यस्थीनि, करकूर्चास्थीनि प्रकोष्ठास्थीनि, प्रगण्डास्थि २८-३३ | २८-३३ |
| मध्यकायास्थिविज्ञानोयः परिच्छेदः । | |
| पृष्ठवंशः, कशेरुकासामान्यलिङ्गानि, प्रीवाकशेरुकाः, पृष्ठकशेरुकाः कटिकशेरुकाः, त्रिकास्थि, अनुतिकास्थि ... | ३५-४२ |
| श्रोणिफलकम् ... | ४३ |
| जवनकपालम्, कुकुन्दरास्थि, भगास्थि ... | ४७ |
| अंसफलकम् ... | ४८ |
| अक्षकास्थि ... | ५० |
| उरःफलकम् ... | ५२ |
| ग्रैवेयकम्, मध्यफलकम्, अपपलम् ... | ५४ |

| | (पृष्ठांकाः) |
|---|----------------|
| पर्शुकाः ... | ५४ |
| सामान्यपर्शुकाः, विशिष्टपर्शुकाः ५५-५६ | |
| उरःपञ्जरम् ... | ५७ |
| अथ शिरोऽस्थिविज्ञानीयः परिच्छेदः | |
| शिरःसम्पुटम् ... | ५७ |
| पश्चिमकपालम् ... | ५८ |
| पार्श्वकपालम् ... | ६२ |
| पुरःकपालम् ... | ६४ |
| शङ्खास्थिनी ... | ६७ |
| शंखचक्रम्, कर्णमूलपिण्डम्, अश्मकूटम् ... | ६८-७० |
| जतूकास्थि ... | ७१ |
| भूर्भरास्थि ... | ७४ |
| कपालचक्राणि ... | ७६ |
| मुखमण्डलास्थिनी ... | ७६ |
| नासास्थिनी ... | ७६ |
| ऊर्ध्वहन्वस्थिनी ... | ७७ |
| अश्रुपीठास्थिनी ... | ८० |
| गण्डास्थिनी ... | ८० |
| ताल्वस्थिनी ... | ८३ |
| शुक्तिकास्थिनी ... | ८४ |
| सीरिकास्थि ... | ८५ |
| अधोहन्वस्थि ... | ८६ |
| कण्ठिकास्थि ... | ९० |
| समग्रकरोटिदृश्या विशेषाः | ९२ |
| करोटिपटलम् ... | ९२ |
| करोटिभूमिः ... | ९५ |
| करोटिपीठम्, करोटितलम् ९५-१०० | |
| करोटिपक्षौ ... | १०४ |
| शंखखातम्, गण्डोत्तरखातम् | |
| हनुजातूकखातम् ... | १०५-१०६ |

| | (पृष्ठांकाः) |
|--|----------------|
| करोटिपुरोभागः (मुखमण्डलम्) | १०६ |
| नेत्रगुहे ... | १०६ |
| नासागुहे ... | १११ |
| समग्रकरोटिदृश्याः त्वाचभागाः | ११४ |
| अथ सन्धिस्नायुखण्डम् । | |
| प्रथमोऽध्यायः । | |
| सन्धिस्नायुसामान्यविज्ञानीयो नाम | ११५ |
| सन्धिसामान्यवर्णनम् | ११५ |
| सन्धिप्रकारभेदाः ... | ११५ |
| कोराः, उदूखलाः, सामुद्रगाः, प्रतराः, तुन्नसेवन्यः, वायसतुण्डाः, मण्डल-शंखावर्ताः ... | ११६-११७ |
| सन्धिदृश्या विशेषाः ... | ११८ |
| सन्धेयांशाः, तरुणास्थिनि, स्नायवः, श्लेष्मधरकलाः ... | ११८-११९ |
| द्वितीयोऽध्यायः । | |
| सन्धिविशेषविज्ञानीयो नाम ... | ११९ |
| अधोहनुसन्धानम्, शिरोग्रोवसन्धयः | |
| पृष्ठवंशसन्धयः, पर्शुकापृष्ठसन्धयः, पर्शुकापूर्वसन्धयः, अक्षकोरःसन्धानम् श्रोणिचक्रसन्धयः ... | १२०-१२६ |
| ऊर्ध्वशाखासन्धयः ।—अंससन्धयः, कूर्परसन्धिः, प्रकोष्ठान्तरीयसन्धयः, मणिबन्धसन्धिः, करकूर्चान्तरीय- सन्धयः, करतलसन्धयः, करांगुलि- सन्धयः ... | १३२-१३६ |
| अधःशाखासन्धयः ।—वक्षसन्धिः, जानुसन्धिः, जङ्घान्तरीयसन्धयः, गुल्फसन्धिः, पादकूर्चान्तरीयसन्धयः, पादतलसन्धयः, पादांगुलि- सन्धयः ... | १३६-१४७ |

चित्र-सूची ।

| (पृष्ठांकाः) | (पृष्ठांकाः) |
|---|--|
| १ । पुरश्चित्रम् (नानावर्णम्) ग्रन्थारम्भे | २६ । धर्तु काः (सामान्यतः) ... ५५ |
| २ । नरककालम् (सम्मुखतः) } १६-१७ | २७ । विशिष्टपशु काः ... ५६ |
| ३ । ,, (पार्श्वतः) } पृष्ठान्तः | २८ । करोटिः ... ५८ |
| ४ । (क) दक्षिणपादास्थीनि (पादपृष्ठे) } २०-२१ | २९ । पश्चिमकपालम् (पुरस्तलम्) ... ५९ |
| ४ । (ख) ,, (पादतले) } पृष्ठान्तः | ३० । पश्चिमकपालम् (पृष्ठतलम्) ... ६१ |
| ५ । (क) जङ्घास्थीनि (सम्मुखतः) } २२-२३ | ३१ । पार्श्वकपालम् (आभ्यन्तरतलम्) ... ६३ |
| ५ । (ख) ,, (पृष्ठतः) } पृष्ठान्तः | ३२ । पुरःकपालम् (बहिस्तलम्) ... ६५ |
| ६ । जान्वस्थि ... २५ | ३३ । पुरःकपालम् (अन्तस्तलम्) ... ६६ |
| ७ । (क) ऊर्ध्वस्थि (पुरस्तात्) } २६-२७ | ३४ । शङ्खास्थि (बहिस्तलम्) ... ६८ |
| ७ । (ख) ,, (पृष्ठतः) } पृष्ठान्तः | ३५ । शङ्खास्थि (अन्तस्तलम्) ... ६९ |
| ८ । पाणिपुरोभागः ... २७ | ३६ । जतूकास्थि (ऊर्ध्वतलम्) ... ७२ |
| ९ । (क) प्रकोष्ठास्थिनी (सम्मुखतः) } ३०-३१ | ३७ । कर्करास्थि ... ७५ |
| ९ । (ख) ,, (पृष्ठतः) } पृष्ठान्तः | ३८ । नासास्थिनी ... ७६ |
| १० । (क) प्रगण्डास्थि (सम्मुखतः) } ३२-३३ | ३९ । ऊर्ध्वहन्वस्थि (बहिस्तलम्) ... ७७ |
| १० । (ख) ,, (पृष्ठतः) } पृष्ठान्तः | ४० । ऊर्ध्वहन्वस्थि (अन्तस्तलम्) ... ७८ |
| ११ । पृष्ठवंशः ... ३५ | ४१ । अश्रुपीठास्थि ... ८० |
| १२ । पृष्ठकशेरुका ... ३६ | ४२ । गण्डास्थि (बहिस्तलम्) ... ८१ |
| १३ । ग्रीवाकशेरुका (साधारणी) ... ३७ | ४२ । गण्डास्थि (अन्तस्तलम्) ... ८१ |
| १४ । १मा ,, ... ३७ | ४३ । ताल्वस्थि ... ८३ |
| १५ । २या ,, ... ३८ | ४४ । सीरिकास्थि ... ८५ |
| १६ । ७मी ,, ... ३९ | ४५ । अधोहन्वस्थि (बहिस्तलम्) ... ८७ |
| १७ । पृष्ठकशेरुका (पार्श्वतो दृष्टा) ... ३९ | ४६ । अधोहन्वस्थि (अन्तस्तलम्) ... ८९ |
| १८ । विशिष्टाः पृष्ठकशेरुकाः ... ४० | ४७ । कण्ठिकास्थि ... ९१ |
| १९ । त्रिकास्थि ... ४१ | ४८ । करोटिपटलम् ... ९३ |
| २० । अनुत्रिकास्थि ... ४२ | ४९ । करोटिपीठम् ... ९६-९७ |
| २१ । श्रोणिफलकस्य बहिस्तलम् ... ४४ | ५० । करोटितलम् ... १०२-१०३ |
| २२ । तस्यैव अन्तस्तलम् ... ४५ | ५१ । करोटिपत्रः ... १०५ |
| २३ । अंसफलकम् ... ४६ | ५२ । मुखमण्डलम् ... १०७ |
| २४ । अन्नकास्थि ... ५१ | ५३ । नासागुहाभ्यन्तरम् ... ११२ |
| २५ । उरःफलकमुपपशुकाश्च ... ५३ | ५४ । अधोहनुसन्धानम् ... १२० |
| | ५५ । शिरोग्रोवसन्धिः (पुरस्तलम्) ... १२२ |

| (पृष्ठांकाः) | | (पृष्ठांकाः) | |
|------------------------------------|---------|--------------------------|---------|
| ५६ । शिरोघ्नीवसन्धिः (पृष्ठतलम्) | १२३ | ६२ । मणिबन्धसन्धिः | ... १३६ |
| ५७ । पशु कापृष्ठसन्धयः | ... १२७ | ६३ । वंजणसन्धिः | ... १४० |
| ५८ । पशु कोरःसन्धयः | ... १२८ | ३४ । जानुसन्धिः | ... १४१ |
| ५९ । श्रोणिचक्रसन्धयः | ... १३१ | ६५ । जानुसन्धेरभ्यन्तरम् | ... १४२ |
| ६० । अंससन्धयः | ... १३३ | ६६ । जङ्घास्थिद्वयसन्धिः | ... १४४ |
| ६१ । कूर्परसन्धिः | ... १३४ | ६७ । पादतलस्थाः स्नायवः | ... १४६ |

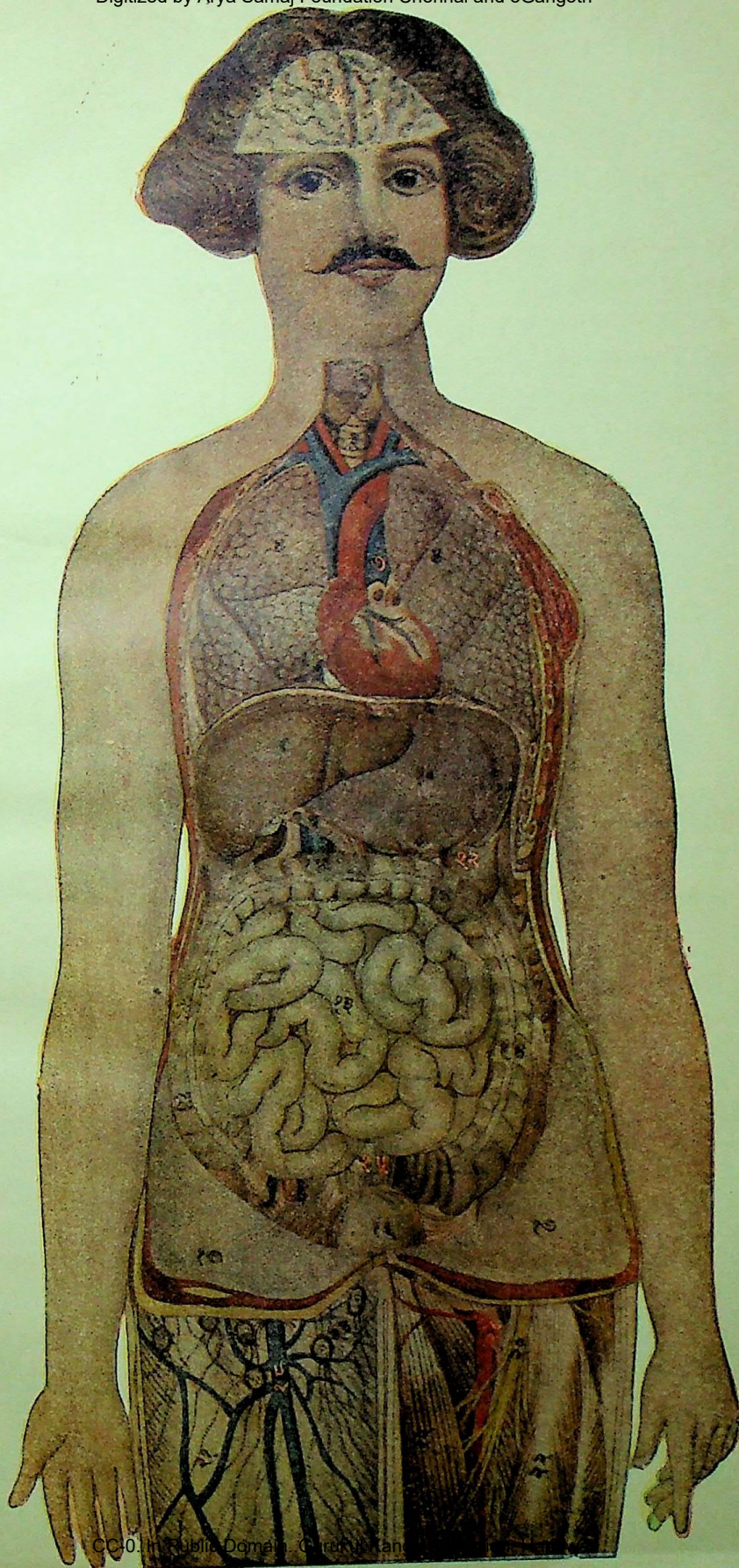
अत्र दक्षिणतो दृश्यमानं—पुरश्चित्रम्—आशयादिपरिचयार्थम् ।

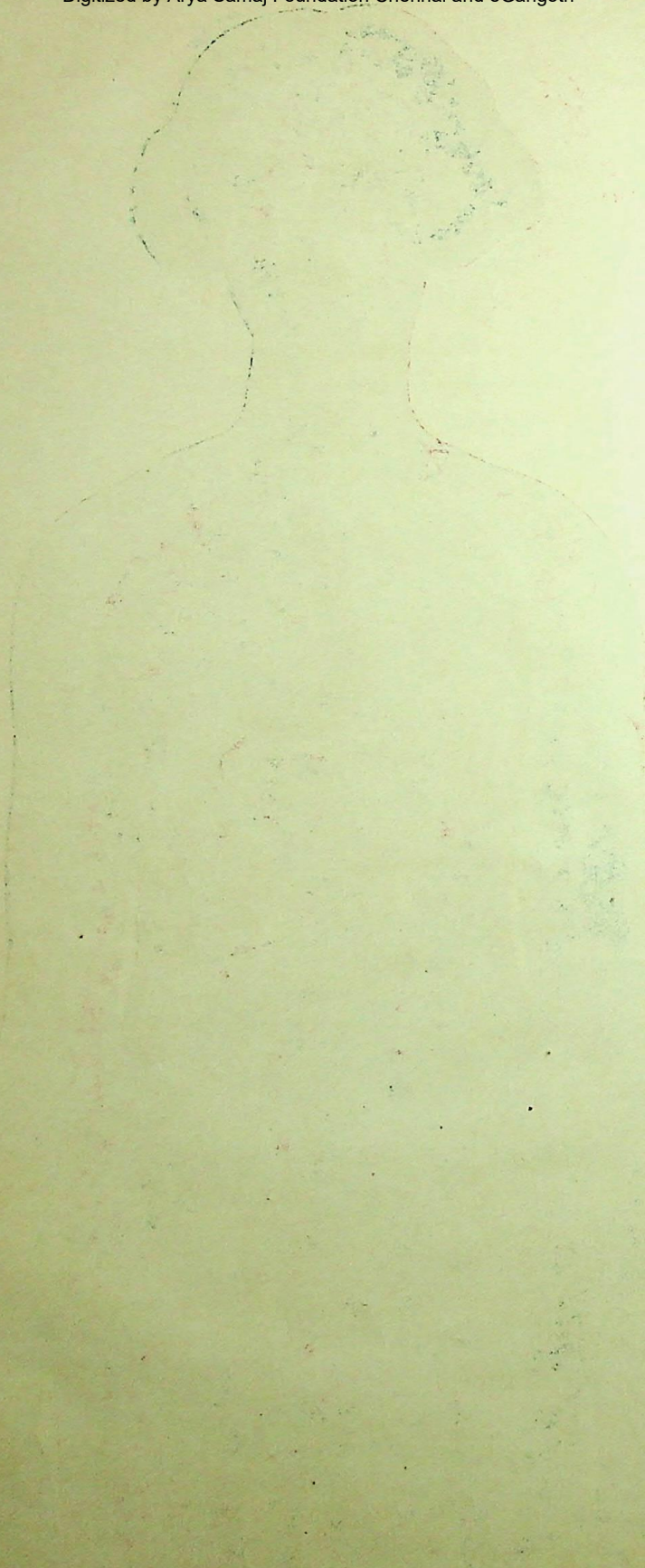
चित्रान्तरीयाङ्कानां व्याख्या ।

| | |
|-------------------------------|---------------------------------------|
| १ । मस्तिष्कम् | १२ । वृक्कः (वामः) |
| २ । स्वरयन्त्रम् | १३, १३ । जुद्धान्त्राणि |
| ३ । आसनलिका | १४-१४-१४ । बृहदन्त्रम् (मलाशयः) |
| ४, ४ । फुस्फुसद्वयम् | १५ । उत्तरगुदम् |
| ५ । हृदयम् | १६ । वस्तिः (मूत्राशयः) |
| ६ । महाधमनो | १७ । उदरच्छदा कला (विदार्य दर्शिता) |
| ७ । फुस्फुसाभिगा धमनी | १८ । सिराः |
| ८ । महाप्राचीरिकाख्या पेशी | १९ । धमन्यः |
| ९ । यकृत् | २० । नाड्यः |
| १० । आमाशयः | २१ । रसायन्यः |
| (तत्पृष्ठतो दृश्यः अन्यशयः) | २२ । पेश्यः |
| ११ । झीहा | २३ । रसायनीमूलस्था ग्रन्थयः |

अत्रेमा विशेषतो लक्षणीयाः—सिरा नीलाः, धमन्यो लोहिताः, नाड्यः पीताभाः, रसायन्यः सूक्ष्मशुभ्रामालाकाराः । ता एताः, आशयाश्चेह प्रायः स्वाभाविकवर्णैरेव चित्रिताः ।

दृश्यतां च शारीरपारिभाषिकीयाध्याये आशयादिवर्णनसंक्षेपः, तद्विस्तरश्च आशयखण्डे ।





INTRODUCTION

(Prefatory to First Edition—1911)

Only a few words of apology are required to write a work on Descriptive Anatomy in Sanskrit. No such work is known to exist at the present day and the desideratum is keenly felt by students and practitioners of Ayurvedic Medicine all over India.

A word of explanation as to why I have written this work in Sanskrit—a dead language as some would put it. In the first instance, I have to point out that Sanskrit is yet the only common language intelligible to all students of Ayurveda in whatever part of India their lot may be cast. Besides, it has always been held compulsory that the *bona fide* student of Hindu Medicine should have a good preliminary grounding in Sanskrit; for this is the only language in which all standard works on the subject have been written and explained from time immemorial.

That the subject of Anatomy formed part of a preliminary course of study in Medicine and Surgery in ancient India admits of little doubt. Nay, a short course of Anatomy was once held a necessary adjunct in the intellectual outfit of even a general student, so that writers of the PURANAS & DHARMA-SHASTRAS found it expedient to include short discourses on the subject in many of their works.¹ Anatomical discourses are also found in the hoary Veda² and in the aged NIRUKTA of YASKA,³ as also in Buddhistic Literature.⁴ In the ancient medical works of SUSHRUTA and VAGBHATA, both major and minor surgical operations, such as Laparotomy (opening the abdomen), Amputation of limbs, Embryotomy, operations on the intestines, Lithotomy and various plastic operations have been described with such precision⁵ that the anatomical knowledge which this

(1) Vide *Agnipurānam*, Ch. 370, which deals exclusively with Anatomy; *Garurbhāṣanā*, Ch. 4, Part II. Also *Yajñyavalkya Smṛiti* (यजुर्वेद-प्रकरण) and *Viṣṇu Smṛiti* quoted in the Sanskrit Introduction. p. 63.

(2) As in *Satapatha Brahman*, Quoted in Sanskrit Introd. p. 62.

(3) Quoted in the Sanskrit Introduction.

(4) Vide *Khuddak Pāṭh* (Tripiṭaka)—passage beginning अथि इमस्मिं काये &c.

(5) The references for these operations have been quoted in the Sanskrit Introduction. Most of the Surgical Instruments described in *Sushruta*, Ch. vii. are not only closely similar to but often identical with modern instruments as I have shown with demonstrations before the well-known literary society Sahitya Sabha of Calcutta, Aug. 16, 1913 and the 6th All-India Ayurvedic Conference held at Muttra, 1914.

pre-supposes could not have been of a mean order. Numerous quotations of descriptive Anatomy from an ancient work of Surgery called BHOJA-SAMHITA occur in commentaries nearly a thousand years old. Clear references to the circulation of blood occur in the works of CHARAKA & VAGBHATA and the fact that the blood derives its colouring matter from the spleen and liver is distinctly mentioned by Sushruta. Dissection of the human body has been enthusiastically recommended by Sushruta & Vagbhata and there can be no doubt that the practice was in vogue in the palmy days of India's intellectual sun-shine.⁶ As Dr. Hoernle has very aptly remarked (in his famous work "Medicine of Ancient India"). *"Probably it will come as a surprise to many, as it did to myself, to discover the amount of anatomical knowledge which is disclosed in the works of the earlier medical writers of India. Its extent and accuracy are surprising when we allow for their early age—probably the sixth century before Christ—and their peculiar methods of definition."*⁷

Even recently a work on Anatomy called SHARIR PADMINI written about 1000 A. D. has been unearthed by Dr. P. Cordier⁸ and quoted from extensively by Dr. Hoernle in his valuable work "Medicine of Ancient India." Other works on Anatomy, called SHARIR SHASTRA & SHARIR VAIDYAK are also mentioned in Aufrecht's Catalogue.

Fragments of Medical Jurisprudence, with instructions for the post mortem examination of the body in case of suspected death may also be found in a recently discovered work called KAUTILIYA ARTH-SHASTRA⁹ or Polity of Chanakya, the famous minister of Chandragupta, who ruled India in the 4th century B. C.

Nevertheless, the ravages of time and increasing impracticability of dissection have landed us on an age when all anatomical texts in their original form are lost to us. I say impracticability—not neglect—advisedly. Nearly 2200 years ago, the great Emperor Asoka, whose dominion extended over the whole of India and beyond, prohibited the practice of human dissection by a Royal Edict.¹⁰ During the hard times that followed, dating from the Greek invasion, human dissections were hardly possible in a Buddhist-ridden country. Dr. Puschman¹¹ clearly tells us that even

(6) The quotations will be found in the text, Ch. I, and my Sans. Introduction (last section).

(7) *Medicine of Ancient India*. Part I, Preface.

(8) Vide Dr. Cordier's *Recettes De couvertises*, p. 33.

(9) The work has been, of late, published by the Government of Mysore (S. India). The subject referred to will be found in Sec. IV. (कण्टकशोधनम्) ।

(10) Vide *Journal of Asiatic Society*, Vol. VII, p. 261.

(11) Vide Dr. Puschmann's *History of Medical Education*, p. 243, et seq.

in Europe, "Dissection of the human subject was in the first centuries of the middle ages opposed by religious and political ordinances and also by social prejudices." and the learned historian goes on—"Many doctors provided themselves with bodies, when they could not get them in a legitimate way, by theft." We have it from the same source that "At Bologna, dissections on the human subject were probably carried out as early as the 13th century."... "The Senate of Venice in 1368, issued an order that dissection should be performed once a year." Again "Practical teaching in Anatomy was developed in the universities of other countries at a later period and to a much smaller extent than in the academies of Italy." In India, however, Sushruta writing over two thousand years ago, enjoined

Difficulty of dissection in Europe during the past ages.

Sushruta's enjoiner for dissection.

in no faltering terms¹²—"Therefore whoever wishes to practise Surgery must prepare a corpse in the proper way and see by careful dissection every part of the body in order that he may have definite and doubtless knowledge."

Modern histories of India begin where the true history of Ancient India ends. The birth of Buddha or the reign of Asoka the Great marks not the beginning but the end of India's past glory. A true history of the great achievements of the sons of India before that epoch is yet to be written.¹³ It was during that period extending over hundreds of years that medical science, as well as many other branches of science and literature, made great progress and shed their lustre on distant climes like Egypt, Greece, Rome and Arabia.¹⁴

The true history of Ancient India—to be written yet.

Historians of antiquity have shown by no slender evidences that the colonization of Egypt by Indians took place during these pre-historic times.¹⁵ The name "MISRA DESHA" (the mixed country) applied to Egypt and the custome and customs of the old Egyptians lead one to the same conclusion. Pocock¹⁶ has shown by irresistible internal evidences that Greece owes her original civilisation to India,—her very mythology and names are from Sanskrit literature. The civilization of Rome was a product of later age and both Greece and Rome owed a great deal to the Buddhist preachers sent

India's influence on Egypt, Greece, Rome and Arabia.

(12) Vide *Sushruta, Sharirasthanam*, Ch. V.

(13) Such a history must depend on internal evidences, threshed out by a thorough examination of existing ancient Sanskrit Literature.

(14) Vide Prof. Heeren's *Historical Researches* Vol. II.—"India is the source from which not only the rest of Asia but the whole western world derived their religion." Also Max Dunker's *History of Antiquity*, Vol. IV.

(15) *Menas* the first king of Egypt, son of the sun—appears to be no other than our 8th Manu. Cf. "मावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः" &c. in *मार्कण्डेयपुराण* । Also Vide *Manaver Adi Janmabhumi* (The first Home of Man) by Pandit Umesh Vidyaratna.

(16) Pocock's *India in Greece*.

out by Asoka and other Buddhist princes. Even the dress and manners of ancient Rome closely resembled those of ancient India. Arabian civilization came much later and Arab historians¹⁷ acknowledge in plain terms the great intellectual debt they owed to India. But while Egypt survives only in her mummies and pyramids, the ancient glories of Greece and Rome have been nearly effaced under the Huna invasions. If the other half of Europe, now the great nation-builders and educators of the world, had not come to their rescue, old Greece and Rome would have now been nearly forgotten. But a part of the ancient glory of India still survives—notwithstanding greater crushing influences in the past—in the modest hamlets of the simple Pandits. Hindu Medicine at least still holds its own to no mean extent against all foreign rivals. Intrinsic merit based on solid clinical & scientific foundations can not be denied by thoughtful men to such an exponent of ancient glory, whatever its shortcomings at the present day.

India's Ancient
glory yet survives
in part.

Ever since the invasion of the Greeks (327 B. C.), India had so many vicissitudes of fortune that one who arrays the facts of history¹⁸ before the mind's eye can hardly wonder how so much of the past glory was lost. The real wonder is—how so much has yet survived. After the great invasions of Alexander came the devastating hordes of Scythians and after them the locust armies of the Hunas—all of whom continued bloody warfare and pillage for hundreds of years. History bristles with the accounts of the horrors perpetuated by these barbarians. No doubt much of the treasures of Indian literature was lost during these dark ages. Even during the great renaissance which began with the reign of JOSHQDHARADEVA VIKRAMADITYA surnamed SHAKARI or the mighty destroyer of the Scythians and Hunas (5th century A. D.), only a part of the lost glory could be recouped by the intellectual luminaries of the period. But the worst came when, since the advent of India's arch-enemy Mahmud of Ghazani (11th century A. D.), the upper half of India was over-run and cruelly sacked, times without number, by the savage Saracenes. Towns and villages were burnt and looted and kingdoms crumbled to pieces. Eventually, even the Deccan and Bengal did not escape their depredations. Very few of the limited number of written manuscripts already thinned in bulk by the invaders' incendiarism could have survived such tremendous shocks. A feeble revival came again during the comparatively peaceful reigns of Akbar, Jahangir and Shahjahan, all of whom were lovers of

A bird's-eye-view
of the last two
thousand years.

How the ancient
glory was lost.

(17) Vide Dr. P. C. Roy's *History of Hindu Cemistry*, Vol. I. Ch. VI, in which the subject has been elaborately discussed.

(18) Almost all Histories of India are unanimous on these facts,

THE HEAVY LOSSES SUSTAINED BY AYURVEDA

5

The Rescuers of
India—the greatest
Renaissances.

literature. But with Aurungzeb followed another reign of terror and Hindu-hatred and after him a long period of rapine and anarchy which made the cultivation of scientific knowledge practically impossible. Yet, if the destroyers of India came from close quarters, the rescuers of India came from far away. The greatest Renaissance has come at last—now that under the benign peaceful rule and kind encouragement of a highly enlightened Government, great researches in Indian Science & literature mark the mighty awakening of India from her long slumber.

Great and permanent was the loss suffered by AYURVEDA as in fact by every other branch of science and literature during the evil times that befell

The heavy loss sustained by Ayurvedic literature during the dark ages.

India. Only a few of the original works of the master minds are available at the present day. Of the school of Physicians headed by the Sage ATREYA, all the six great works (or SAMHITAS) written by his six pupils—AGNIVESHA,

BHELA, JATOOKARNA, PARASHAR, HARITA & KSHARAPANI—as also by many others like VISHWAMITRA, KHARANADA etc., have been lost altogether. Only one of them, the AGNIVESHA SAMHITA, as revised and recast by CHARAK and again revised and supplemented by DRIDHABALA, survives and is now known as the famous CHARAKA SAMHITA. BHEDA SAMHITA has been recently traced in the Tanjore State Library but the copy of the manuscript which I had the good fortune to examine through the courtesy of Pandit Jadavji Tricumji Acharya of Bombay, shows

Very few of the great Ayurveda Samhitas survives in original.

the work as a meagre collection of fragments which appear to be of no great importance. A spurious work called HARITA SAMHITA passes for the original work of that name. Of

the School of Surgeons headed by the Royal Master DHANWANTARI, all the original works by his pupils—SUSHRUTA, AOUPDHENAVA, AOURABHRA, POUSHKALAVATA, GOPURA-RAKSHITA, BHOJA &c., have passed into oblivion. Only one of them, the SUSHRUTA SAMHITA as a revised and recompiled summary of the great original sometimes called VRIDDHA SUSHRUTA survives to tell the tale of its mutilation. The recompiler of Sushruta drew largely from a great work by VIDEHA on diseases of the Eye, Ear, Nose and Throat, but this work as well as the large Samhitas on the same subject by NIMI, KANKAYAN, GARGYA, GALAVA etc., are lost to us. In Diseases of children none of the works of JIVAKA, PARVATAKA, HIRANYAKSHA &c. are available. In Toxicology, KASHYAPA SAMHITA, a large work by KASHYAPA, has been traced in the Tanjore State Library.¹⁹ Numerous other works²⁰ on Toxicology and other branches of the Medical Science have been lost

(19) By Pandit Jadavaji Tricumji Acharya of Bombay whose labours as Editor of the Ayurveda Granthamala Series are have been invaluable in the cause of Ayurvedic renaissance.

(20) Passages from all these lost works as occurring in ancient authoritative commentaries have been quoted in the Sanskrit Introduction.

irrecoverably. Some works on Veterinary Medicine and Surgery yet survive and one of them—the PALAKAPYA SAMHITA—a voluminous original work on the disease and treatment of elephants has been published at Poona and may be taken as the type of the original Samhitas of old.

In my Sanskrit Introduction, I have cited numerous quotations from these and many other ancient works over two scores in number, all of which appear to be now lost. These have been quoted from extensively by authoritative commentators like DALLANA, CHAKRAPANI, VIJAYA RASKHITA, SREEKANTHA etc. Their authenticity can not be doubted. Probably many of these works existed when these commentaries were written—700 to 1000 years ago—although many more had been lost even before that period. A short history of Ayurvedic literature, together with the dates of most well-known authorities, has been attempted in my Sanskrit Introduction, to which the inquisitive reader is referred for more detailed information.

It may not be out of place here to observe in passing that the decline of Buddhism practically synchronised with the decline of Hindu Medicine.

Although the Buddhists were no great friends to Anatomy, the chronicles of Buddhism clearly show that in the monasteries of Nalanda and Taksha-shilla (Taxilla), two branches of literature were studied particularly—*viz.* HETU SHASTRA or Logic and CHIKITSA SHASTRA or Medicine. Benevolence being the watch word of Buddhism, there was no lack of hospitals and medical charities both for men and animals during the reigns of ASOKA, BIMBISARA, and other Buddhist Princes. We hear the name of the famous physician JIVAKA²¹—(surnamed "KOMARABHACHCHA" or KAUMARBHRITYA) in connection with the court of the king Bimbisara. Both he and his great teacher BHIKSHU ATREYA are said to have attended on the great Buddha himself and his followers. Again the famous Buddhist patriarch NAGARJUNA is believed by many to have been the reviser and recompiler of the present day Sushruta Samhita. VAGBHATA, the well-known Ayurvedic author, of reputation next only to that of CHARAKA and SUSHRUTA, was also a Buddhist of Sind who lived probably on 5th or 6th century A. D. He has left us two valuable works, the ASHTANGA SAMGRAHA and the ASHTANGA HRIDAYA,—which may be respectively called a large and small comprehensive epitome of Ayurvedic literature.²² It appears from a close study of these works, however, that the decline of Ayurveda had already begun in Vagbhata's time when finding the old literature

(21) For references to Jivaka, see Sanskrit Introduction. P. 34, text and footnote.

(22) The view that the author of the first book was different from the author of the second originated by Dr. Hoernle has been refuted in the Sanskrit Introduction. p. 25.

perishing fast, he worked hard to summarise all the medical information—good, bad or indifferent—that he could then lay his hands upon. Many authors of the famous RASA-TANTRAS or works on Medical Chemistry too appear to have flourished during the Buddhist period.

The famous Bower manuscript, recently discovered in Chinese Turkestan by Lieut. Bower and so ably deciphered by the indefatigable Dr. Hoernle, is another evidence of that vast mass of Ayurvedic and general literature which was lost²³ during the fall and decay of Buddhism in Asia.

The Bower Manuscript and its great lesson.

In Anatomy, the loss has been very heavy. All original works having been lost, Hindu Anatomy now survives only in a few meagre and desultory dissertations in the so-called "Anatomical Section" (SHARIRA-STHANA) of the larger Ayurvedic works now extant.

The loss in Anatomy

The Tantric Literature, which elaborately describes the Brain, the Spinal Cord, the Sympathetic chains of Ganglia and the different Plexuses of nerves (Narhi), is now shrouded in so much mystery that few people suspect that there is such a world of anatomical information concealed in it. All these together with numerous anatomical terms and references accidentally occurring in various portions of the existing texts, now constitute

The so-called anatomical section in extant works.

scattered relics of what once was an elaborate System of Anatomy. The quotations from BHOJA SAMHITA occurring in the ancient commentaries of DALALNA and CHAKRAPANI are indeed so varied and numerous that if put together they would make good-sized volumes of Anatomy and Surgery. The recently discovered work SHARIRA PADMINI already referred to

The original works on Anatomy lost.

before is of little practical value to the learner of Anatomy as it was written in an age when no verification by dissections was in vogue or practicable. Thus the Anatomy of all extant Ayurvedic texts, including the summaries left in CHARAKA and SUSHRUTA SAMHITAS, bristle as a matter of fact with omissions, interpolations and inaccuracies of ages and is neither systematic nor descriptive. Later writers from VAGBHATA down to BHAVAMISHRA, in their ignorance of the true meaning of ancient texts, have only burdened the literature with what may be called "Fanciful Anatomy" of their own invention. Undoubtedly, this has done more harm than good to Ayurvedic literature. No wonder then that the progress of Ayurvedic Medicine should have been so much retarded during the last few centuries. That Hindu Medicine has still survived is due to the fact that it is yet supported by its splendid Therapeutics and Principles of Treatment together with many wonderful recipes laid down by the master minds of old.

(23) For the date of the Bower manuscript, vide, Journal of Asiatic Society, LX. Part I., P. 7

As one out of the many anatomical inaccuracies which have crept into the extant Ayurvedic literature, I may here cite the promiscuous use of the words *Sira* and *Dhamani* to imply veins, arteries, nerves, ducts etc. as found in the extant texts. The proof that the ancients knew of the Circulation of Blood, and consequently the difference between arteries and veins, is unquestionable, as I have shown in my Sanskrit introduction. Indeed, the term SIRA has yet survived in the original sense of veins exclusively in a chapter of SUSHRUTA dealing with venesection or blood-letting. Ample evidence of the ancients minutely knowing not only of the Central but also the Sympathetic Nervous System exists in the TANTRAS. Again, whilst no description of the urinary organs is to be found in the "Anatomical Section" of SUSHRUTA, the anatomical names for the Ureters, Seminal ducts and the Prostate gland occur accidentally in connection with the Operation of Lithotomy described in another portion of the work. The reader is referred to the Sanskrit Introduction for elaborate information on these points.

Inaccuracies in
extant Anatomical
literature.

I should be wanting in duty if I failed to express my deep indebtedness to Western Medical Science for the materials which I have in this work culled from its vast literature on Anatomy. The Subject has been very minutely worked out by western writers whilst their Eastern colleagues have remained content with their ruined legacy.

Author's debt to
Western Anatomy.

I may add, however, that my task has not been one of translation or transliteration. Those who have with commendable energy brought out vernacular editions of western Anatomy in India have generally contented themselves with copying English and Latin names verbatim or rendering them occasionally by inaccurate Sanskrit equivalents. Though useful in their own way to a certain class of students belonging to vernacular medical schools, these works with their hybrid nomenclature have been found to be of little value to the Ayurvedic student of Anatomy. Not knowing English as a rule, they are scared away by the transliterated English and Latin names and the long dry descriptions clothed in a language which appears to them neither English nor Vernacular. My first duty therefore, as I took up my self-imposed task, was to build up a suitable nomenclature. All old anatomical names occurring in extant ancient literature had to be interpreted and incorporated so far as possible and numerous new names had to be coined, so worded as to fit in properly with the old classical stock. The difficulty at first seemed insuperable. But with the patient labour of years, I have made the most of the situation, as far as my scant abilities permitted, in the following way :

Author's task not
one of translation or
transliteration, but
of restoration
of ancient
relics.

The difficulty of
building up a
nomenclature.

Author's method of
works.

METHODS ADOPTED IN NOMENCLATURE

9

(1) I have identified several old anatomical names by verifying them in all extant Ayurvedic literature—e. g. the word KALA²⁴.

(1)
Identification of old
names in extant
Ayurvedic literature

(कला meaning membrane) and SNAYU (स्नायु meaning fibrous tissues generally and ligaments particularly). It is to be regretted that the latter word has been wrongly applied to imply nerves in vernacular works of Anatomy.

(2) I have restricted the meanings of certain words—e. g. of SIRA (सिरा)

(2) Restriction of
the meaning
of certain words
used promiscuously
in later literature.

to imply veins and of DHAMANI (धमनी) to imply arteries,—these being the original²⁵ senses of the words so well suited to the purpose of Descriptive Anatomy.

(3) I have utilised for my purpose certain words like IDA, PINGALA and SUSHUMNA from Tantric literature,—the first two meaning

(3) Finding and
defining of certain
terms from the
Tantras.

the two sympathetic chains of ganglia and the last meaning the Spinal Cord. From the same source, I have adopted the word NARHI (नाडी) to imply nerves exclusively. Probably

the Greek word NEURON (a nerve) is a derivative of this Sanskrit word and has given to the English tongue such words as Neurology, Neuralgia etc.

In every case, I have defined the words in the beginning to avoid misconstruction. (Vide Text, Part I. Ch II.,)

(4) In the identification of certain ancient terms like KLOMA (क्लोम)

(4) Identification of
certain names in
Vedic literature.

I have received some help from Vedic literature, particularly those portions of it which deal with the sacrificial rites.

It is remarkable that several anatomical names like GAVINI (गवीनी) for the Ureters, and BANISHTHU (बनिष्ठु) for the Prostate gland occur only in the Vedas²⁶ with sufficient clues for identification preserved to this day.

(5) As for the new names, I have coined them where necessary always with an eye to their meaning and usefulness and have endeavoured to clothe them in a classical garb to respect the susceptibilities of

5) The coining
of numerous new
names in classical
style.

the Indian Sanskrit scholar. In every case, corresponding English or Latin names of current anatomical literature have been added in the foot-notes to facilitate reference and

teaching by medical men trained in the Western System. A glossary of terms will also be appended at the end of the book when it is completed.²⁷

(24) For the reasons for ascertaining the meanings of old terms, vide Text, Ch. II.; also Sanskrit Appendix and Glossary,

(25) For evidences on this point, vide Sanskrit Introduction pp. 74-75. Also “संज्ञापञ्चक विमर्श” an Anglo-Sanskrit treatise by the author of this work.

(26) Quoted and explained in the Sanskrit introduction and Appendix.

(27) Such a glossary—English to Sanskrit and Sanskrit to English has been—(1940) published separately as ‘शरीर-परिभाषा’ (Anatomical nomenclature).

A large number of specially-prepared illustrations, some of them bi-color and tri-color, have also been added at considerable expense to make the text easily intelligible.

So threading my way with a new or newly replenished old nomenclature and engrossed with the tedious and minute details of preparing suitable illustrations, I have at every step considered the requirements of the Indian students and have moulded my descriptions, as best as I could, to such requirements. I have accordingly endeavoured to make the descriptions terse yet lucid,—neither following the elaborate style of Gray or Morris, nor adopting the cut-and-dried form of Potter. To all these works however, I am indebted in general for anatomical data and the outlines of some of the illustrations.

The descriptions made terse yet lucid, to suit the requirement of Ayurvedic students.

How far success has attended my efforts is not for me to judge though I have the satisfaction of knowing that my pupils, whom I have taught my work, have found it easy and clear to comprehend.

In this connection, I have the pleasant duty of expressing my gratitude to Dr. A. F. Rudolf Hoernle, M. A., Ph.D., C. I. E., of Oxford, the well-known author of a valuable work of anatomical research entitled "Studies in the Medicine of Ancient India", who, when I presented him with an advance copy of my work, encouraged me in the following terms :

"I have been greatly pleased with your work and congratulate you on what to me seems a very creditable performance.

The inherent difficulty in an attempt like yours to introduce students and practitioners of Hindu Medicine, who as a rule do not know English, to a knowledge of modern Anatomy is the necessity of making use of the old Ayurvedic nomenclature which in not a few respects covers facts and ideas very different from those accepted at the present day. With this difficulty you seem to me to have grappled with considerable skill and success. There is much that is valuable in the old Ayurvedic system of Medicine : but there is much more that modern Hindu practitioners may, with profit to themselves and to their patients, learn from the great advances made by modern Medical Science. To them, your work with its re-interpretations of the old names, amplified where necessary with newly-coined names, may be heartily recommended. Moreover, what is sure to prepare for it a hearty welcome among them is the fine classical Sanskrit in which you have succeeded to clothe your descriptions."

Dr. Hoernle's valuable opinion.

CONCLUSION

11

I have much pleasure also to express my grateful thanks to the large number of Ayurvedic physicians hailing from all parts of India, who, ever since they met me at the 3rd All-India Ayurvedic Conference held at Allahabad (1911)—in which I had the honour to preside—have not only encouraged me by letters and occasional interviews to write this work but have practically spurred me on whenever I was found lagging in my difficult task.

I am also indebted to my much-respected erudite friend Pandit Rai Rajendra Chandra Shastri Bahadur, M. A., P. R. S., for certain valuable historical informations and suggestions; as also to my esteemed friend Kaviraj Viraja Charan Kavyatirtha Kavibhushana, author of "VANAUSHADHI DARPANA," for occasionally going through the proof-sheets of my work and helping me with some useful suggestions.

In conclusion, I crave the indulgence of the critical reader for the typographical and other errors which may have been overlooked. Engaged in the arduous duties of my profession and working single-handed, I have often been unable to go through the minute details of the work with full justice to the subject. Nobody however is more aware of the shortcomings of my work than myself and should I live to see it through a second edition, I hope to make certain improvements which even now I very much desire. Meanwhile I shall be thankful to the reader who communicates to me any errors or inconsistencies that he may come across in the book.

CALCUTTA,
December, 1913.

}

GANANATH SEN

PREFACE TO THE SECOND EDITION.

As the first edition of the first part of this work is exhausted before the second part is out, it becomes necessary to reprint it with slight revisions here and there. The author much regrets that owing to pressure of work and various family mishaps he has been unable to bring out the second part yet but he expects to complete the work at an early date.

The author takes this opportunity to thank the various Ayurvedic institutions of India which adopted this work as a text-book before and after its recommendation by the All-India Ayurvedic Conference held at Muttra in 1914. It is a sign of real progress that the importance of studying anatomy by the students of Ayurveda has once again come to be understood by their teachers all over India.

The author is also thankful to writers of anatomy in Hindi and other languages who have adopted his nomenclature with or without acknowledgment. It is also gratifying to note that scholars from different parts of India have asked the author's permission to translate this work into several Indian languages. But he regrets he could not permit the translation before the work was completed.

The author again begs to invite friendly criticisms and suggestions and will be glad to revise his work in future editions.

Calcutta,
1915.

}

GANANATH SEN

PREFACE TO THE THIRD EDITION.

In editing this third edition of the first part of "PRATYAKSHA-SHARIRAM". I have revised the whole text as best as I could from the viewpoint of the teacher and the student. I am glad that I have been able to bring out as promised the second part of the work along with it, I am aware how much apology I owe to the public for the delay that occurred in it. My only explanation is that I found the task rather hard and slow in the midst of the general press of my public and professional duties.

Only the Nervous System and the Special Senses now remain to be described in the third part. I hope, I shall be able to place it before the public within a year's time.



Meanwhile, I would invite and welcome honest criticism from those who have studied both Ayurveda and modern Anatomy and have cleared up their understanding with dissection of a human body as enjoined by SUSHRUTA.

Calcutta,
1921.

}

GANANATH SEN

PREFACE TO THE FOURTH EDITION

The first two parts of this work having been exhausted, it becomes necessary to bring out a fourth edition of these parts. At the suggestion of several learned friends like Ayurveda-Martanda Pandit Jadavji Tricumji Acharya of Bombay, I have taken this opportunity for re-writing several portions of the work with a view to include in it the elements of Histology and Physiology in order to elucidate the purpose of the creation of the tissues and organs described in the first two parts of the work. In the third part, this idea has been already carried out.

Several illustrations have also been added and some illustrations have been replaced with better ones to make the descriptions as clear as possible.

To answer some persistent criticism from Poona on the use of the terms PESHI (पेशी), SNAYU (स्नायु), SIRA (सिरा), DHAMANI (धमनी), and KALA (कला), I wrote a treatise in Sanskrit and English called "SANJNA-PANCHAKA-VIMARSHA" (संज्ञापञ्चकविमर्श), which, I have reasons to think, has been much appreciated by scholars.

Another treatise on Sanskrit nomenclature in called "SHARIRA-PARIBHASHA" (शरीरपरिभाषा) has also been published as a book of reference for teachers and students. It is complete in two sections—English to Sanskrit and Sanskrit to English. I hope it will be found helpful by those for whom it is intended.

For the critical reader also, these two supplements of the original work are expected to come handy and useful.

In conclusion, I once more thank the authorities of the numerous Ayurvedic Institutions of India and the All-India Ayurveda Vidyapitha who have adopted this work as a text book. It has also been recommended by the State Faculty of Ayurvedic Medicine, Bengal, and some of the Boards of Indian Medicine in other provinces.

In conclusion, I crave the indulgence of the reader for any errors and omissions that may have been overlooked. I shall be grateful if these are communicated to me.

March, 1940,
223, Chittaranjan Avenue,
Calcutta.

}

GANANATH SEN

प्रत्यक्षशरीरस्य उपोद्घातोक्त-विषयाणां विवरणसूची ।

प्रथमः पादः—(१ पृष्ठतो १४ पृष्ठान्तः) आयुर्वेदागमः, सम्प्रदायद्वयम्, आयुर्वेदस्य अष्टाङ्ग-विभागात् कार्यविभागः, रसतन्त्राणि रसवैद्यसम्प्रदायश्च, लभ्यमानवैद्यकग्रन्थाः,—चरकसंहिता, सुश्रुत-संहिता, कोऽसौ चरकः, पतञ्जलेः प्रादुर्भावकालः, दृढबलस्य प्रादुर्भावकालः, सुश्रुत-प्रतिसंस्कृतां नागाज्जुनो वा न वा, कोऽसौ नागाज्जुनः, नागाज्जुनकालः, आवर्षसहस्रद्वयमायुर्वेदस्य दशाविपर्यासः, आयुर्वेदवटतरुः पुनः सञ्जीवनीयः ।

द्वितीयः पादः—(१४ पृष्ठतो ४४ पृष्ठान्तः) आयुर्वेदस्य कालचतुष्टयविभागः, तत्राद्यो दैवकालः प्रभातकालो वा, ब्रह्मवैवर्तपुराणोक्तः आयुर्वेदावतरणस्य क्रमभेदः, तत्कालीन-ग्रन्थपरिचयश्च, आयुर्वेदस्य मध्यन्दिनम् आपकालः, आयुर्वेदे मध्यन्दिने समग्रभूमण्डले आयुर्वेदस्य प्रचारः निखिल-चिकित्साशास्त्रबीजता च ।

तृतीयः पादः—(४७ पृष्ठतो ५६ पृष्ठान्तः) भारतीयानां ज्ञानाज्जनविघ्नाः शास्त्रलोपहेतवश्च, तत्राद्यो विघ्नः ग्रीसदेशीयानामाक्रमणम्, द्वितीयो विघ्नः नन्दवंशध्वंसविप्लवः, राज्यारम्भे अशोककृतो महान् प्रजाध्वंसश्च, तृतीयो विघ्नः पार्थिनाक्षां यवनानां शकानां च भारताक्रमणम्, ततः शुङ्ग-वंश्येन पुष्पमित्रेण स्थापितायां शान्तौ चरकस्य प्रादुर्भावः, शकनरपतेः कनिष्कस्य अधुना १८३५ शकाब्दाः, ततः परं काश्मीरे दृढबलप्रादुर्भावः, चतुर्थो विघ्नः हूणजातिकृतः सुमहान् राज्यविप्लवः, ततः शकारिविक्रमादित्यस्य प्रादुर्भावः, महाराजविक्रमादित्यादीनां राज्यकालेषु पञ्चशतवर्षान्तः भारतीयविद्यानां पुनरुद्धारः, तत्र कालिदासादीनां वाग्भट-वृन्द-माधव-चक्रपाणि-डहनादीनाञ्च प्रादुर्भावः, पञ्चमो विघ्नराशिः महम्मद-गजनिर्कृतो बहुवर्षव्यापी भारतकीर्तिध्वंसः, षष्ठो विघ्नः महम्मदघोरकृतं सुधोरमाक्रमणं पृथ्वीराजराज्यापहारश्च, वङ्गेषु माधवचक्रपाणयो-रनन्तरं विजयरक्षित-श्रीकण्ठदत्तयोः प्रादुर्भावः, सप्तमो विघ्नराशिः चेङ्गिखान् तेमूरलङ्कार्या भारतसमृद्धिलुण्ठनं जनपदविध्वंसनञ्च, दानिखाल्ये वीरबुक्कनृपतिकृता राज्यरक्षा सायणमाधव-कृतो वेदोद्धारश्च । तत् समकालं च शाङ्गधराख्यस्य वैद्यकसंग्रहकारस्य प्रादुर्भावः, अष्टमो विघ्नः मुगलपाठानानां रणलीलाकृतो राज्यविप्लवः, अकबरशाहसमये प्रतिष्ठितायां शान्तौ विदुषां प्रादुर्भावो विद्योन्नतिश्च, तत्र कान्यकुब्जेषु वैद्यकाचार्यो भावमिश्रः, शाहजहानराज्यकाले भट्टोजि-दोजितादीनां विदुषां प्रादुर्भावः, नवमो विघ्नः अवरङ्गजेवकृतः सुमहानायकीर्तिध्वंससंरम्भः, महाराष्ट्रवीरैः शिवाजीप्रमुखैः कृतो धर्मसाम्राज्यस्थापनप्रयत्नस्तन्निष्फलता च आत्मद्रोहकृता, दशमो विघ्नोत्पत्तः “नादिरशाह” “महम्मदशाह” इत्येताभ्यां कृता संहारलीला, ततः सद्येन वेधसा प्रतिष्ठितं ब्रिटिशसाम्राज्यम्, चरकसुश्रुतयोः प्रतिस्कारकालो दृढबलस्य वाग्भटपूर्वजत्वं च, वाग्भटकालनिर्णये हेतुत्रयम्, रसरत्नसमुच्चयकारो वाग्भटस्तु भिन्न एव भृशमवरजश्च, माधवकरस्य

कालनिर्णयः, सायणमाधवस्तु भिन्नएव, चक्रपाणिकालः, विजयरक्षितश्रीकण्ठदत्तयोः कालनिर्णयः, अरूणदत्तकालः, शाङ्गधरकालः, शिवदासकालः, भावमिश्रकालः, वङ्गसेनकालः, अधुनाविलुप्तेषु आयुर्वेदाङ्गेषु शारीरमेवादौ समुद्धतव्यम् ।

चतुर्थः पादः—(६० पृष्ठतो ८१ पृष्ठान्तः) पूर्वाङ्गमायुर्वेदस्य निखिलवाङ्मयस्य, शारीरस्य वैद्यके प्रधानपूर्वाङ्गता, शारीरस्य प्रत्यक्षपरत्वात् प्रामाण्यम्, न च शारीरं शल्यतान्त्रिकानामेव उपादेयम्, शारीरे प्राचामादरः—दृश्यन्तां वेदपुराणतन्त्रादीनि, अतीत-सपादद्विसहस्रवर्षेषु शवच्छेदस्या-शक्यत्वात् शारीरशास्त्रस्य दशाविपर्यासः, विपर्यस्तशारीरस्य प्रतिसंस्कृतिभिस्तदनुवर्त्तिभिरपरैश्च ग्रहणं विपर्ययवर्द्धनं च, दर्शयितव्ये विपर्यये वस्तुपरिचयः परिभाषाबीजञ्च, तत्राद्यो विपर्ययक्रमः संज्ञानां व्याकुलीभावात्, सिराधमनीसंज्ञयोः परिचयः, रसायनीसंज्ञापरिचयः, नाडीसंज्ञापरिचयः, तन्त्रोक्तविस्तरस्य सारोद्धारः नाड्यर्थे स्नायुपदप्रयोगः प्रामादिकः परिहृत्तव्यश्च, वैद्यके शारीरसंज्ञा-विप्लवस्य उदाहरणानि, नाडीपदस्य नानार्थेषु प्रयोगः, अमरकोपीयभ्रमः तन्निरसनञ्च, न चात्र शक्यं किमपि समाधानम्, अन्यो विपर्ययक्रमः आशयादिवर्णनाविलोपात् तत्परिचयविरहाच्च, आमाशयार्था-ज्ञानात् सुश्रुते अर्थव्याकुलीभावः, तथापीह प्राचीनशारीरसंज्ञा अद्यापि बहुशो वर्त्तन्ते दुर्बोधप्रायाः, तृतीयो विपर्ययक्रमः काल्पनिकशारीरसम्भवात्, चतुर्थः शारीरविपर्ययक्रमो लिपिकरप्रमादनिमित्तः, सन्ति च विपर्ययस्तेऽपि शारीरे प्राचां सत्यसिद्धान्तज्ञानसूचकानि प्रमाणानि यथा रक्तसंवहनक्रिया-वर्णनम्, पट्टचक्रविज्ञानम्, कर्तव्ये शारीरप्रतिसंस्कारे द्विवधं साधनम्, शारीरप्रतिसंस्कारस्य षड्विधो विधिः, परिभाषानिर्णयः, नवोनसंज्ञानिर्माणम्, प्रत्यक्षदृष्टशारीरस्य सम्यग् वर्णनम्, नव्य-प्राचीनशारीरयोः सामञ्जस्यविधानम्, न चायं ग्रन्थः कस्यचित् पाश्चात्यग्रन्थस्मानुवादः । त्रुटि-स्वीकारः क्षमाप्रार्थना च ।

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः ।

तत्र

आयुर्वेदपुरावृत्तं नाम प्रथमपादः ।

इह खल्वायुर्वेदो नाम निखिलसुर-नर-तिर्य्यगायुरारोग्यप्रदं शास्त्रं शाश्वतिकं यद् ब्रह्माऽदौ भगवानादिवुधो वुबुधे, वुद्ध्वा च स्वयं लक्ष्मलोकमय्या संहितया विशदयाम्बभूव । तं ब्रह्मणः प्रजापतिर्दक्षोऽधिजगे, प्रजापतेरश्विनावश्विन्याश्चेन्द्रः ।

आयुर्वेदागमः

अथेन्द्रो मनीषी मानुष्यकरो गार्त्तिहरणकामः शारीर-वनौषधि-विद्यादिनानापूर्वाङ्गसमन्वितं शल्य-शालाक्य-कायचिकित्साद्य-ष्टाङ्गप्रविभक्तमनन्तपारमायुर्वेदमेकेनातिदुरधिगमं मन्वानो द्वेधा किल मनुजचिकित्सायाः सम्प्रदायं प्रवर्त्तयाश्चकार—शल्यङ्गप्रधानमायुर्वेदं धन्वन्तरिपरम्परया, कायचिकित्साङ्गप्रधानञ्च भरद्वाजपरम्परयेति, अनयोरेवाङ्गयोः प्रधानभूतयोरितराङ्गाणामनु-प्रवेशात् ।

तत्र स राजर्षिर्धन्वन्तरिर्दिवोदासो निखिलविद्यापीठभूतायां वाराणस्यामूषिवान्^१ सुश्रुतौपधेनवौरभ्र-पौष्कलावत-करवीर्य-गोपुररक्षित-भोज-वैतरणप्रभृतीन् शिष्यवरान्

सम्प्रदायद्वयम्

स्वयं क्षत्रकुलप्रदीपः^२ क्षत्रमुख्यान् स्वभावानुकूलं शल्याङ्गमूल-मायुर्वेदमध्यापयामास । ब्रह्मर्षिस्तु भरद्वाजः पुनर्वसुमात्रेय-मात्रेयश्च भगवान्^३ पञ्चालक्षेत्रे काम्पिल्यराजधान्यां कृताश्रमः स्वयं विप्रकुलमुख्यो

१ । तथाहि सुश्रुते,—“ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे, तस्मादश्विनावश्विन्यामिन्द्र इन्द्रादहं, मया त्विह प्रदेयमश्विन्यः प्रजाहितहेतोः ।” (सु० सू० १ अ०) । चरके च,—“ब्रह्मणा हि यथा प्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः । जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः । अश्विन्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे ह केवलम् । ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥” इति (च० सू० १ अ०) । २ । तदुक्तं—“स्वयम्भुवा प्रोक्तमिदं सनातनं पठेद्धि यः काशिपतिप्रकाशितम् ।” इत्यादि (सु० सू० १ अ०) । ३ । धन्वन्तरिर्ब्रह्मर्षिर्भूदित्येके । सुश्रुतस्तु विश्वामित्रसुतः परमार्थतः क्षत्रिय एव । ४ । तथाहि चरके,—“जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषिते काम्पिल्यराजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः”—इत्यादि (च० वि० ३ अ०) ।

विप्रवरानग्निवेश-भेल-जतूकर्ण-पराशर-हारीत-क्षारपाणिनाम्नः षडन्तेवासिनः स्वभगवानु-
गुणं कायचिकित्साप्रधानं शास्त्रमुपदिदेश । सोऽयं द्विविधः सम्प्रदायः—तत्राद्यो
धन्वन्तरिसम्प्रदायः सुश्रुतसम्प्रदायो वेति प्रथते, द्वितीयस्तु भरद्वाजसम्प्रदाय आत्रेय-
सम्प्रदायो वेति ।

अथैते द्विविधाः साम्प्रदायिकाः पृथक् तेतिरे तन्त्राणि । श्रूयते हि,—

“औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम् ।

शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥” इति

(सु० सू० ४ अ०)

“बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः ।

तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥

अथ भेलादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि च ।

श्रावयामासुरात्रेयं सर्षिसङ्घं सुमेधसः ॥” इति च ।

(च० सू० १ अ०) ।

एवं धन्वन्तरिसाम्प्रदायिकानि तन्त्राणि सुश्रुतौपधेनवौरभ्र-पौष्कलावत-
वैतरण-भोजादिकृतानि^१ शल्याङ्गमूलानि, आत्रेयसाम्प्रदायिकानि च अग्निवेश-भेल-
जतूकर्ण-पराशर-हारीत-क्षारपाणिकृतानि कायचिकित्साप्रधानानि, तानि साम्प्रतं विलुप्त-
प्रायाणि । तेषु कानिचित् चक्रपाणि-विजयरक्षित-श्रीकण्ठदत्त-शिवदासादीनां व्याख्या
कृतां समयेऽप्यासन् सुलभानीति बहुधा तदुद्धृतपाठैरनुमीयते^२ ।

अथ पुरा क्रमादूर्जितावस्थां प्राप्तेऽस्मिन् शास्त्रे, सम्यगुपचितेषु शल्य-
शालाक्य - कायचिकित्सा-भूतविद्या-कौमारभृत्याऽगदतन्त्र-रसायन-वाजीकरणाख्येष्वष्टा-
आयुर्वेदस्य स्वप्यङ्गेषु पुरा द्वेधा विभक्तोऽसौ सम्प्रदायः पुनरष्टधा प्रवृत्ते,
अष्टांगविभागात् शल्यापहर्तारश्च शालाकिनश्च कायचिकित्सकाश्च भूतवैद्याश्च
कार्यविभागः कौमारभृत्यकाश्च अगदतान्त्रिकाश्च रासायनिकाश्च वाजी-
करणिकाश्चेति पृथग्विभक्तकार्यैर्वैद्यैः । तत्र सुश्रुतादिगुरुपरम्परागताः शल्यापहर्तारः ।
विदेहाधिप-निमि-काङ्कायन-गार्य-गालवादयः शालाकिनः । अग्निवेश-भेलादिपरम्परा-

१ । भोजादीनां शल्यतन्त्रकर्तृत्वं प्रसिद्धम्, उल्लेखेनोक्तञ्च निबन्धसंग्रहाख्ये सुश्रुतव्याख्याने ।

२ । तत्र दिग्दर्शनार्थमिहैव भेल-हारीत-जतूकर्ण-पराशरादीनां पाठाः चक्रपाणि-शिवदासादिमिरुद्धता
अग्रे प्रदर्शनीया बहुशः ।

आयुर्वेदपुरावृत्तम्

३

गताश्चरकाद्याः कायचिकित्सकाः । अथर्वाद्याः भूतवैद्याः । जीवकाद्याः कौमार-
भृत्यकाः । काश्यपाद्याः अगदतान्त्रिकाः ।

रासायनिकाः पुनराचार्याः आदिम-नित्यनाथ-चन्द्रसेन-सोमदेव-गोविन्द-
नागार्जुनाद्याः सिद्धाः पारदमेव सकलदुःखपारदं विदित्वा तदितरेषाञ्च स्वर्णादि-
रसतन्त्राणि धातूनां चिकित्सोपकरणतां प्राधान्यतः प्रमाणीकृत्य पृथङ्-
रसवैद्यसम्प्रदायश्च निर्म्ममिरे तन्त्राणि रसतन्त्रसंज्ञया सिद्धतन्त्रसंज्ञया वा
प्रसिद्धानि । सोऽयं रसवैद्यसम्प्रदायो नाम । रसवैद्या हि रसमात्रप्रयोगेण चतुर्वर्ग-
सिद्धिमाचक्षणास्तस्यैव परमपुरुषार्थमूलतां प्रतिपादयन्तः स्तुवन्ति,—

“आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।

श्रेयःपरं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ।

एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥” इत्यादि^१ ।

रसेश्वरदर्शनाख्यस्य च दर्शनस्य प्रवर्त्तका एत एव योगिवराः रसवैद्या
रसाचार्या वेति सर्वदर्शनसंग्रहे रसग्रन्थेषु च समुल्लेखः । तत्साम्प्रदायिकेषु च ग्रन्थेषु
बहवः खल्वद्यापि समुपलभ्यन्ते देवगिरा द्वाविडभाषया वा निबद्धाः, समनुस्रियन्ते च
ते साम्प्रतिकैर्वैद्यैः सिद्धवैद्यैश्च । आहुश्च ते—

“स्वलपमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।

क्षिप्रमारोग्यदायित्वाद् भेषजेभ्योऽधिको रसः ॥” इति^२ ।

प्राधान्यञ्च रसवैद्यसम्प्रदायस्य बौद्धयुगेष्वेव समभूदिति प्रसिद्धबौद्धेतिहासा-
लोचनाद्बहुषु रसग्रन्थेषु मङ्गलाचरणादौ बुद्धनमस्कारदर्शनाच्चावगच्छामः^३ ।

१ । श्रूयते ह्यथर्वा नाम ऋषिर्भूतविद्याचार्यो बलिमन्त्रादिप्रवर्त्तकः । २ । जीवको हि
कौमारभृत्याचार्यो बौद्धग्रन्थेषु श्रूयते बहुशः, स च राजगृहवास्तव्यो बिम्बिसाराख्यस्य नरपतेर्भगवत-
स्तथागतस्य च चिकित्सक आसीत् (Vide Rockhill's Life of Buddha, pp. 65 et
seq). अपरश्च जीवको बृद्धकाश्यपतन्त्रं प्रणिनाय, यत् सम्प्रति आयुर्वेदमार्तण्ड प० श्रीयादव-
तिविक्रमाचार्यैर्नेपालाधिपतिकृपया विष्कृतं प्रकाश्यते । ३ । काश्यपविवरणं महाभारते परीक्षित-
स्तक्षकदर्शनप्रकरणे द्रष्टव्यम् (आदिपर्व ५ अ०) । ४ । रसाचार्याणां नामानि रसरत्नसमुच्चयस्य
प्रथमाध्याये द्रष्टव्यानि । गोविन्दश्चायं गोविन्दभगवत्पादाख्यो रसहृदयप्रणेता भगवतः शङ्कराचार्यस्य
गुरुरिति प्रसिद्धः । ५ । एष पाठो माधवाचार्येण सर्वदर्शनसंग्रहे रसेश्वरदर्शनप्रकरणे समुद्धृतः ।
६ । रसेन्द्रसारसंग्रहे गोपालकृष्णः । ७ । यथा रसरत्नसमुच्चये,—“यस्यानन्दभवेन” इत्यादि ।
यथा च नागार्जुनकृत-कक्षपुटतन्त्रारम्भे—“प्रणिपत्य सर्वबुद्धान्” इत्यादि ।

वाजीकरणिकाश्च तावदाचार्याः कामकलाकुशलैर्यवनैः स्वाधिकारसमये विशेषादाद्रियमाणास्तेष्वेव स्वविद्यानैपुण्यं न्यासिष्येति यवनाधिकारकालिके-
तिहासालोचनादनुमीयते । इत्थञ्चेदं वाजीकरणतन्त्रं क्रमादिहलोकसर्वस्वैर्यवनैरेव
विशेषादनुशीलितं किञ्चित् कायचिकित्सायङ्गसंयोजितं कालेन 'तिब्बी (यूनानी)'—
वाजीकरणतन्त्रम् चिकित्सातन्त्रमिति यावनतन्त्रमिति वा पृथक् प्रतिष्ठा-
यावनचिकित्सा च मयासीत् । प्रभावश्चास्य भारते उत्तरपश्चिमार्द्धवास्तव्येषु
वैद्येष्वद्यापि दरीदृश्यते,— इति हन्त परिणामोऽयमतीतयवनराज्याधिकारस्य । न
त्वेतावताऽयुर्वेदापभ्रंशस्य 'तिब्बी'-तन्त्रस्य परमार्थतः पृथक्तन्त्रत्वं प्राधान्यं वा
लेशतोऽपि शङ्कनीयं शास्त्रज्ञैरित्यलं प्रासङ्गिकवस्तुविस्तरेण ।

अथेदानीमतीतवर्षसहस्रव्यापिना राज्यविप्लवादिनाऽस्मन्मन्दभाग्यपरिणतिवशाद्
विलुप्तप्रायासु तत्तन्महर्षिप्रणीतमूलसंहितासु, प्रनष्टकल्पेषु च प्रायः कायचिकित्सावर्जम-
लभ्यमानवैद्यग्रन्थाः परेष्वायुर्वेदाङ्गेषु, लभ्यन्ते कतिचिदेव ग्रन्थाः प्राचीनमहिम्नः
साक्षिभूताः—ये खल्वद्यापि नानानिबन्धजनकृतप्रक्षेप-पाठ-
व्यत्ययादिपरामृष्टा अपि स्मारयन्त्येवायुर्वेदस्योदारानन्तविषयताम् । तेषु च लभ्य-
मानग्रन्थेषु द्वावेव प्रधानभूतौ चरकसुश्रुताख्यौ आर्षसंहितेति प्रथितौ ; वाग्भट-शार्ङ्गधर-
भावमिश्र-चक्रपाणि-वङ्गसेनादिकृताः पुनर्ग्रन्थास्तदुपजीविनः संप्रहमात्राः । निघण्टु-
निदानादिग्रन्थास्तु वनौषधि-रोगविज्ञानाद्येकैकदेशप्रतिपादकाः । रसरत्नाकर-रसेन्द्र-
चिन्तामणि-रसरत्नसमुच्चयादयः पुनः रसतन्त्रकृतां निबन्धाः पूर्वं सुदुर्लभा अप्येतर्हि
केषाञ्चिन्महनीयकीर्त्तिनामनुग्रहात् प्रतिदिनं सौलभ्यं भजन्ते । भेलसंहिता तु साम्प्रतं
दक्षिणापथे 'ताञ्जोर'नगरीस्थ-राजकीयग्रन्थागारे खण्डितप्राया वर्तते, दृष्टा च साऽस्मा-
भिस्तत्रैव ; सेयमिदानीं कलकत्ताविश्वविद्यालयतः प्रकाशिता बहुशः खण्डितपाठा साक्षि-
भूतेव ग्रन्थलोपस्य । यः पुनर्ग्रन्थो हारीतसंहितेति-नामधरो दृश्यते साम्प्रतं मुद्रितः,
सोऽयमाधुनिकेन केनचिदल्पज्ञेन निर्मितश्चर्वितचर्वणात्मको नात्युपादेयो निबन्ध इति
न तमाद्रियन्ते धीमन्तः^१ । सोऽयमेतावान् साम्प्रतं लभ्यमानानां वैद्यग्रन्थानां संक्षेपा-
दुद्देशः ।

तत्र चरकसंहिता खल्वग्निवेशतन्त्रं चरकप्रतिसंस्कृतमिति प्रत्यध्यायशेष-

१ । अप्रौढ-रचनालोकनाद् व्याकरणाशुद्धि-च्छन्दोभङ्गादिनानादोषदर्शनाद् वाग्भटादिनाम-
निर्देशाच्च सर्वथा अवाचीनेन केनचिदल्पज्ञेन निर्मितोऽयं ग्रन्थः प्रतिभाति ।

निर्देशादाकलयामः । प्रतिसंस्कारश्चायं पुराणस्य नवीकरणरूपो जीर्णसंस्कारात्मको व्यापारः । तेन सेयं चरकसंहिता साक्षादग्निवेशतन्त्रमेवेति चरकसंहिता न युज्यते वक्तुम् । अग्निवेशतन्त्रस्य हि जीर्णावशेषः चक्रपाणि-विजयरक्षित-श्रीकण्ठ-शिवदासादिसमयेऽपि सुलभोऽभूदिति तदुद्धृतपाठोद्धारै- रवगच्छामः, न च ते ते पाठा लभ्यन्ते सम्प्रति लभ्यमानचरकसंहितायाम् । किञ्च, जीर्णसंस्कृतेऽप्यग्निवेशतन्त्रे —

“अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च ।

नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरकसंस्कृते ॥

तानेतान् कापिलवलिः शेषान् दृढवलोऽकरोत् ।

तन्त्रस्यास्य महार्थस्य पूरणार्थं यथायथम् ॥”

—इति स्पष्टो विलोपापूरणसूचकलेखो दृढवल्पण्डितकृतचरकसंहितायामेव^१ । न च नाकारि दृढवलेन चरकप्रतिसंस्कृतांशेऽपि स्ववचोनिवेश इति शक्यं शपथेन विभावयितुम् । स ह्यनृषिः स्वरचितांशेष्वपि यतस्ततः स्वकपोलकल्पनया आत्रेयाग्नि-वेशसंवादमाचक्षाणः^२ स्वकृतांशेऽपि प्रत्यध्यायशेषम् “अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रति-संस्कृते” इति प्रतिजानानश्च न खलु सर्वथा भूतार्थवादीति शक्यते वक्तुम् । तथा चेयं लभ्यमाना चरकसंहिता परमकारुणिकेन चरकर्षिणा चिकित्सास्थानार्द्धं यावत् कृतजीर्णोद्धारपूरणा, तदनन्तरं च दृढवलेन पूरितावशेषा नूनं पुनः पुनः प्रतिसंस्कृता चेति न प्रमाणान्तरापेक्षं प्रेक्षावताम् ।

सुश्रुतसंहिता पुनः केनचित् प्रतिसंस्कृतं सौश्रुततन्त्रमिति प्रसिद्धा किंवदन्ती । न चास्याः प्राचीनसौश्रुततन्त्राद् वृद्धसुश्रुतापरपर्यायादभेदः कथमपि सम्भाव्यः ।

सुश्रुतसंहिता

दृश्यन्ते हि वृद्धसुश्रुतोक्ताः पाठा^३ बहुधा वैद्यकटीकाकृद्भिरुद्धताः,

न च ते समुपलभ्यन्ते लभ्यमानसुश्रुतसंहितायाम् । “औषधै- नवमौरभ्र”मित्यादिपद्ये च सुश्रुतसंहितादृष्टे सौश्रुततन्त्रस्य पृथङ्निर्देशतः शेषाणां शल्यतंत्राणां मूलभूतेषु ग्रन्थेष्वन्यतमं प्राचीनसौश्रुततन्त्रं पृथगेवासीदिति च शक्यं संशयितुम् । सन्ति च सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रारम्भे परमत-संग्रहस्वीकृतिसूचकानि पद्यानि, यथा —

१ । चिकित्सास्थाने ३०शाध्याये । २ । यथा चरके सिद्धिस्थाने तृतीयाध्याये ।

३ । यथा तृणपुष्पाख्यो ज्वरो वृद्धसुश्रुते वर्णितो विजयरक्षितेन निरदेशि । वृन्द-शिवदास-उल्लनादीनामपि तथैव सिद्धान्तः ।

प्रत्यक्षशरीरस्य उपोद्घातः

“शालाक्यशास्त्राभिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः ।

ये च विस्तरतो दृष्टाः कुमारवाधहेतवः ॥

षट्सु कायचिकित्सासु ये चोक्ताः परमर्षिभिः ॥” इत्यादीनि ।

वाग्भटश्च लभ्यमानचरकसुश्रुतयोरनार्षवचोबहुलत्वं प्रतिपादयन्नाह—“ऋषि-
प्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ । भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥”
इति । तदेतदरुणदत्तो व्याचक्षाण उपसंहरति—“अतश्चरकसुश्रुतवदनार्षमपीदं (अष्टाङ्ग-
हृदयम्) गुणवत्त्वान्मतिमद्भिर्ग्राह्यमेव”—इति । प्रतिसंस्कृतत्वं च लभ्यमानसुश्रुतसंहितायाः
डलनचक्रपाण्यादिभिरनुमन्यते सुस्पष्टया गिरिवेद्येवमिह सति नानाप्रमाणसंप्लवे कृतं
वृथार्थभक्तिसंरम्भेण । एवञ्च स्वीकरणीयैव पुनःप्रतिसंस्कारार्हता सुश्रुतादिग्रन्थानाम् ।

यथा चेदानीं लभ्यमानायां सुश्रुतसंहितायां बहुधा विपर्यासं याताः प्रत्यक्ष-
विरुद्धत्वेनोपन्यस्ताश्च साम्प्रतं दृश्यन्ते केचन दर्शयिष्यमाणाः शरीरविषयास्तथा

१ । यथा निबन्धसंग्रहे डलनः—“यत्र यत्र परोक्षे नियोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कृतसुखं
ज्ञातव्यम् । प्रतिसंस्कृता हि सुश्रुतमुखेनेदमाह,—“यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः सुश्रुताय इति ।”
तथा च भानुमत्यां चक्रपाणिः “चतुर्विधं हि शास्त्रे सूत्रम्, ‘अहं हि धन्वन्तरि’रित्यादि गुरुसूत्रम्,
‘वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च कोपनैः,’ इत्यादि शिष्यसूत्रम्, ‘प्रतिरसं पाकः’ इत्याद्येकीयसूत्रम्,
‘सुश्रुतप्रभृतय ऊचुः’ इत्यादि प्रतिसंस्कृतसूत्रम् इति ।”

२ । ये पुनरखिलं विदन्तोऽपि गजनिमीलिकामास्थिता न विदन्ति पुनः प्रतिसंस्कारार्हतां
वैद्यकग्रन्थानाम्, तेषां विचाराय समुद्ररामः कांश्चन सौश्रुतानपपाठानद्यापि अपरिशोधितान् । न
ह्येते अपपाठा अपि आप्तजनप्रणीता इति मन्तव्यम् । तथा मन्वानाश्च वृथार्थभक्तिं नटयन्तो दूषयन्त्येव
महर्षीन्, न भूषयन्ति । तत्र सुश्रुते—अपपाठा यथा—

(१) “अस्मिन्स्तु शास्त्रे पञ्चमहाभूत-शरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते । तस्मिन् क्रिया,
सोऽधिष्ठानम् । कस्मात् ? लोकस्य द्वैविध्यात्”—इत्यादि । (सुश्रुत० सूत्र० १म अ०) ।

अत्र लोकस्य द्वैविध्यं पुरुषस्य क्रियाधिष्ठानत्वे हेतुरुपन्यस्तः । तत्र च तादृशहेतुतावच्छेदकं
नास्ति किमपि, किं बहुना, नायं हेत्वाभासोऽपि । सम्भाव्यते चेह अस्मद्-गुरुपरम्परागतः—“लोकस्य
तद्विधेयत्वाद्”—इति पाठः साधीयान् । लिपिकरप्रमादो ह्ययं ‘द्वैविध्यात्’ इति पाठः ।

(२) “प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च । स षट्सु रसेष्वायतः । रसाः
पुनर्द्रव्याश्रयाः । द्रव्याणि पुनरोषधयः । तास्तु द्विविधाः स्थावरा जङ्गमाश्च । तासां स्थावरा-
श्चतुर्विधाः—वनस्पतयो वृक्षा वीरुष ओषधयश्चेति” । (सुश्रुत० सूत्र० १म अ०) ।

अत्र “द्रव्याणीत्यादि”—रेखाङ्कितान्ते ओषधिपदं स्थावरजङ्गमवस्तुमात्रे प्रयुक्तमिति
सर्वप्रसिद्धिविरोधं पाठभ्रंशहेतुकमेव प्रतीमः । विभागश्च “स्थावराश्चतुर्विधाः—वनस्पतयो

आयुर्वेदपुरावृत्तम्

प्रतीमः—सौश्रुततन्त्रमिदं प्रतिसंस्कारादनन्तरमपि ग्रन्थलोपात् केषाञ्चिदज्ञातनाम्नां संशोधकानां प्रभावादिमामवस्थामगमदिति ।

एवञ्च सौश्रुतप्रथमाध्यायो यथा पुरा बहुधा खण्डितोऽभूत् तथा क्वचित् कचिदन्येऽप्यध्यायाः—इति सुखेनाविष्करणीयम् प्रेक्षावद्भिः, तद्दृष्टान्ताश्च केचन अत्रैव चतुर्थपादे दर्शिताः ।

पाठव्यत्ययाश्च लेखक-मुद्रकादिप्रमादकृताः लभ्यमानचरक-सुश्रुतसंहितयोरसंख्य-प्राया नित्यमुपलभ्यन्तेऽध्ययनाध्यापनादिविन्नभूताः । तेनानयोः संहितयोरनाविलता न स्वप्रेऽपि साम्प्रतं सम्भाव्येत्याकलयतः कस्य न दूयते चेत्तः ?

यतश्च खलु प्रतिसंस्कारगुणाः प्रतिसंस्कृत्तृगुणापेक्षिणस्ततः कोऽसावग्नि-वेशतन्त्रप्रतिसंस्कर्त्ता चरको दृढबलश्च, को वाऽयं सौश्रुततन्त्रप्रतिसंस्कर्त्ताऽज्ञातनामेति संक्षेपतः प्रसङ्गादनुसन्धीयते ।

तत्राहुरेके,—“कठचरकालुक्”—इति पाणिनीयसूत्रे चरकनामदर्शनात् अयमग्नि-वेशतन्त्रप्रतिसंस्कर्त्ता चरकः पाणिनेरपि पूर्वजः इति, तन्न । सूत्रे निर्दिष्टाभ्यां कोऽसौ चरकः ? कठ-चरकपदाभ्यां यजुर्वेदस्य शाखाविशेषप्रवक्तुः ऋषिद्वयस्याभिधानात् । तथाहि चरणव्यूहे भगवान् कात्यायनः—“यजुर्वेदस्य पड़शीतिर्भेदा भवन्ति । तत्र चरका नाम द्वादशभेदाः,—चरका आह्वरकाः कठाः प्राच्यकठा * * * इत्यादि ।” तस्मादन्य एवायं सूत्रनिर्दिष्टश्चरकर्षिर्मन्त्रप्रवक्तेति

वृक्षा वीरुध ओषधयश्चे”ति—अव्याप्तिदुष्टः, स्थावरान्तःपातिनां पार्थिवानां तत्राग्रहणात् । न च वाच्यम्—“पार्थिवाः सुवर्ण-रजत-मणि-मुक्ता-मनःशिला-मृत्कपालादयः” इत्यंशस्याग्रे पुनरभिधानान्नैष दोष इति । यतो नैतावता परस्तादुक्तेनापि विभागदोषोऽव्याप्तिमूलः संशोध्यते । वस्तुतस्तु अत्र पाठभ्रंशो लिपिकरप्रमादकृतः स्वीकरणीयः । वयन्तु मन्यामहे—“ते चाश्रया द्विविधाः—स्थावरा जङ्गमाश्च । तत्र स्थावरा द्विविधाः—ओषधयः पार्थिवाश्च । तत्र ओषधयश्चतुर्विधाः ।” इति साधीयान् पाठः ।

(३) एवमेव “तद्दुःखसंयोगाद् व्याधय उच्यन्ते”—इत्युपक्रम्य “ते चतुर्विधा आगन्तवः शरीरा मानसाः स्वाभाविकाश्चेति”—इति विभागोऽपि केनचिदल्पबुद्धिना प्रक्षिप्तः प्रतिभाति । विभागवीजस्य सामान्यादर्शनात् । न हि खलु मानुष्यकविभागे क्रियमाणे ब्राह्मणाः दाक्षिणात्याः कृष्णाः यवनाः—इत्येवं विभागः केनचिदुन्मत्ततरेण क्रियते । अत एव चरके “द्विविधा व्याधयः निजागन्तुकभेदेन” इत्युक्तम्, तत्रैवान्येषामन्तर्भावात् ।

एवमन्येऽप्यपपाठाः सुश्रुते बहुधा दृश्या अत एव टीकाकृतः स्वटीकासु बहुधा सौश्रुतपाठान्

कोऽत्र संशयः ? न चायमेव स्यादग्निवेशतन्त्रप्रतिसंस्कृतेत्यत्र किञ्चिदस्ति प्रमाणम् ।
न वा युज्यते कथमपि तादृशी कल्पना, वेदप्रवक्तृश्वरकस्य बहुप्राचीनत्वात् ।

कश्चित् पुनराह—चरकोऽयं वैद्यकप्रतिसंस्कृता कनिष्काख्यस्य राज्ञो भिषगा-
सीदिति त्रिपिटकाख्ये चीनदेशीयबौद्धग्रन्थे दृश्यते, कनिष्कश्च राजतरङ्गिण्याख्ये
काश्मीरेतिहासे^१ तुरुष्कान्वयजो नरपतिः सार्द्धसप्तदशशताब्दीपूर्वज इति वर्ण्यते,
तस्मात् सोऽयं चरकोऽग्निवेशतन्त्रप्रतिसंस्कृतेति । तदपि न विचारसहम् । प्रमाणा-
भावात् । कनिष्कनरपतेर्वैद्योऽसौ चरकश्चेदयुर्वेदप्रतिसंस्कृताऽभविष्यत्, किमिति
राजतरङ्गिण्यां कनिष्कवृत्तान्ते नाख्यास्यत तादृशस्य नामापि ! अथ प्राचीनतया
स एव चेत् स्वीकार्यः प्रतिसंस्कृता, तर्हि यजुर्वेदशाखाप्रवक्ता चरकपिरेवास्तां सुपरि-
ज्ञातस्तत्पदाभिपिक्त इत्यलममूलकमतोन्मूलनेन ।

वयन्तु चरकोऽयं स्वयं भगवान् पतञ्जलिरेवेति चिरन्तनं प्राचीनमतमाद्रियामहे ।
तथाचाह—चरकचतुराननश्चक्रपाणिदत्तश्चरकटीकारस्मै,—

“पातञ्जल-महाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः ।

मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः ॥” इति ।

तथाच योगवार्तिके विज्ञानभिक्षुः—

“योगेन चित्तस्य पदेन वाचाम्

मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।

योऽपाकरोत्तं वरदं मुनीनाम्

पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥” इति ।

भोजश्चाह पातञ्जलसूत्रवृत्तिप्रारम्भे,—

“शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता

वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ।

दर्शयन्ति यत्र तत्र संशयाकुलमनसा । अपरे च केचित् सौश्रुता अपपाठा अस्माभिः अल्लैव
चतुर्थपादे शारीरविचारप्रसंगे प्रदर्शनीयाः ।

१ । पाश्चात्त्यपण्डितस्य ‘लेभि’संज्ञकस्य मतमेतत् (Dr. Sylvain Lévi in Jour.
Asiatique, 1896. T. viii. P. 456. et seq). २ । कनिष्कवृत्तान्तो राजतरङ्गिण्यां
प्रथमतरेङ्गे द्रष्टव्यः ।

वाक्चेतोवपुषां मलः फणभृतां भर्त्रेव येनोद्धृतः

तस्य श्रीरणरङ्गमहन्नृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ॥” इति ।

नागेशभट्टोऽपि मञ्जूपायामाप्रलक्षणं चरककृतमुद्धृत्याह—“इति चरके पतञ्जलि-
रिति ।” भावमिश्रोऽपि नूनमेनामेव प्रसिद्धिं मनसिकृत्य स्वग्रन्थादौ लिखेत्,—

“यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः ।

तदा शेषश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ।

अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदञ्च लब्धवान् ।

एकदा स महीवृत्तं द्रष्टुं चर इवागतः ।

तत्र लोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीडितान् ।

स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ।

तान् दृष्ट्वातिदयायुक्तस्तेषां दुःखेन दुःखितः ।

अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशम-कारणम् ।

सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूव ह ।

प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवेदिनः ।

यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद् यतः ।

तस्माच्चरकनाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले ।

स भाति चरकाचार्यो देवाचार्यो यथा दिवि ।

सहस्रवदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ॥

आत्रेयस्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन् ।

मुनयो बहवस्तैश्च कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकम् ॥

तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता ।

चरकेनात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः ॥”

इति (भावप्रकाश १ अ०)

अहिपतिर्हि भगवान् शेषः पतञ्जलिरूपेण वेदवेदाङ्गवेदिनो मुनेः पुत्रो बभूवेति
एकस्यैव शेषावतारस्य प्रसिद्धेर्भोजचक्रपाण्यादिसंवादाच्चायं भावमिश्रवर्णितश्चरकर्षिः
पतञ्जलिरेवेति मन्यामहे ।

समीक्षामहे च पातञ्जल-सूत्रैश्चरकसंहितायाः सौभ्रात्रम् । तथाहि “कतिधा
पुरुषीये” चरकः “चतुर्विंशतिरित्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः” इति सांख्यमतमुपक्रम्य
योगमेव मोक्षद्वारं प्रधानं प्रतिपादयति स्म—

“योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्त्तनम् ।
 मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्त्तकः ॥
 आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्त्तते ।
 सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे ॥
 निवर्त्तते तदुभयं वशित्वञ्चोपजायते ।
 आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया ।
 दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥
 इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम् ।
 शुद्धसत्त्वसमाधानात्तत् सर्वमुपजायते ॥”

(च० शा० १ अ०)

—इत्यादिना बहुधा । पातञ्जलदर्शनोक्तेश्च “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः,” “तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्,” “स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारे इन्द्रियाणां प्रत्याहारः,” “ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्,” “बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्चित्तस्य परशरीरावेशः,” “परिणामत्रयसंयोगादतीतानागतज्ञानम्”^१ “श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध-संयमादिव्यं श्रोत्रम्,”^२ “ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च,”^३ “कायस्य रूपसंयमात् तद्रूपाद्यशक्तिस्तस्मै चक्षुःप्रकाशासंयोगेऽन्तर्धानम्”^४—इत्यादिसूत्रैः चरकपाठसादृश्यं सुग्रहं पातञ्जलप्रविष्टैरित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

किञ्च रामभद्रदीक्षितप्रणीते पतञ्जलिचरितेऽपि श्रूयते पतञ्जलेवैद्यकसंहिता-कारत्वम् । तदुक्तम्—

“सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यकशास्त्रे च^५ संहितामतुलाम् ।

कृत्वा पतञ्जलिमुनिः प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम् ।” इति ॥

(पतञ्जलिचरितस्य ५म सर्गे)

न चासौ पतञ्जलिः केवलं चरकसंहिताकार एव, रसशास्त्रेऽपि तन्नामश्रवणात् । तथाहि चक्रदत्तटीकायां लौहपाकविधिव्याख्याने शिवदासः—

“पातञ्जले तु स्पर्शादिनाऽपि पाकज्ञानमुक्तम्—

तावल्लौहं पचेद्वैद्यो यावद्वस्त्रेण पीडितम् ।

समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः ॥” इत्यादि ।

१ । समाधिपादे २३ सूत्रद्वयम् । २ । साधनपादे ५४।५५ सूत्रद्वयम् । ३ । विभूति-
 पादे ३९ सूत्रम् । ४ । तत्रैव १६ सूत्रम् । ५ । तत्रैव ४२ सूत्रम् । ६ । तत्रैव ४६
 सूत्रम् । ७ । तत्रैव २१ सूत्रम् । ८ । “वाक्तिकानि ततः”—इत्यपि कचित् पाठः ।

लौहादिव्यवहारश्च चरकेऽपि दृश्यते । तदुक्तम्—

“एष एव च लोहानां प्रयोगः सम्प्रकीर्तितः ।

अनेनैव विधानेन हेम्नश्च रजतस्य च ।

आयुःप्रकर्षकृन् सिद्धः प्रयोगः सर्वरोगनुत् ॥” इति

(चरक० चिकि० १ अ०)

चरके पारदव्यवहारोऽपि काचित्को दृश्यत एव, यथा—

“सर्वव्याधिनिवर्हणमद्यात् कुष्टी रसश्च निगृहीतम्” इति

(च० चिकि० ७ अ०)

निगृहीतो रसश्च मकरध्वजाख्यः प्रयोगः स्यादिति तर्कयन्त्यनेके ।

केचित्त्वाहुः—भगवान् पतञ्जलिश्चरकस्य भाष्यं निर्ममे, न पुनः स एव स्वयं प्रतिसंस्कृतेति । तत्तुच्छम्, प्रमाणाभावात् । यदि हि नाम चरकस्य पातञ्जलभाष्यं कदाचिदपि प्रसिद्धमभविष्यत् तर्हि सहस्राधिकवर्षपुराणेषु चक्रपाणिदत्तादिव्याख्यानेषु किमिति तद्वार्त्तापि नाश्रोष्यत ? न च वाच्यं, रसग्रन्थकारत्वेनैव पतञ्जलेर्वैद्यकारत्व-सिद्धेरलमस्य संहिताप्रतिसंस्कृत्वकल्पनयेति ; चक्रपाण्यादिभिः स्पष्टं प्रतिसंस्कृतत्वा-भिधानात् ।

तदेवं भगवतः पतञ्जलेरभिवेशसंहिताप्रतिसंस्कृतत्वे सिद्धे साम्प्रतं तत्काल-

पतञ्जलेः निर्णयाय ब्रूमः । पतञ्जलेः खल्वविर्भूतस्य वर्षसहस्रद्वयं

प्रादुर्भावकालः (किञ्चिदधिकं वा) समतीतमिति सम्प्रतिपद्यन्ते प्रायः सर्वे

एवेतिहासविदः प्राच्याः प्रतीच्याश्च । तत्प्रतिपादकानि प्रमाणानि तु तत्तदाकरेषु मृग्यानि—नेह विस्तरमिमां विचारयामः ।

चरकसंहितापूरकः पुनर्दृढवलाचार्यः पञ्चनदपुरवास्तव्यः कश्चन भिषगतिप्राचीनः इति तदुक्त्या प्रतिपाद्यते । कालः पुनरस्य पतञ्जलेरवाक् वाग्भटादिसंग्रहकारेभ्यश्च प्रागिति शक्यमसंशयं वक्तुम्, यतः पतञ्जलिप्रतिसंस्कृतायाश्चरकसंहितायाः चिकित्सा-स्थानशेषाद्धे सह सिद्धि-कल्पस्थानाभ्यां विलुप्तेऽसौ प्रादुरासीत् तदापूरकः, संग्रहकारेषु

पुराणतमो वाग्भटश्च दृढवलरचितान् चरकपाठान् क्वचित्

दृढवलस्य प्रादुर्भावकालः किञ्चित्परिवर्तितान् समुद्धरति स्म बहुधा । वाग्भटश्च

(प्रसंगतो वाग्भटकालश्च) इत्सिङ्गाख्यबौद्धपरिव्राजकेन चीनदेशगतेन तदीयं ग्रन्थे

१ । Vide Goldstücker's Pāṇini, pp. 233—34 ; also Prof. Bhandarkar's Indian Antiquary (1872), pp. 298-302. २ । तदुक्तिश्च—
“अखण्डार्थ इद्वलो जातः पञ्चनदे पुरे”—इत्यादिश्चरकचरमाध्याये द्रष्टव्या । ३ । It-sing's

अष्टाङ्गायुर्वेदसंग्राहको नवीनाचार्य इतीङ्गितेन निर्दिष्टः, इत्सिंगश्च ख्रीस्तीयसप्तमशतके भारतं परिचक्रामेति सुपरिज्ञातं तद्वचसा । तदेवं प्रायस्तत्कालाद्वर्षद्विशतीप्राक्तनः (ख्रीस्तीयपञ्चमशतकारम्भे वा) वाग्भटकालः स्यादिति प्रतीतिरितिहासविदाम् । दृढबलश्च वाग्भटानुसृतस्ततोऽपि वर्षशतद्वयात् प्राक् सम्बभूव इति कल्पनया तस्य प्रादुर्भूतस्य प्रायः सप्तदशशती वर्षाणां समतीतेत्यामनन्ति मतिमन्तः ।

सुश्रुतसंहिता पुनरियं लभ्यमाना कदा केन प्रतिसंस्कृतेति दुःशको निर्णयः । तत्राह सुश्रुतटीकायां डलनः,—“प्रतिसंस्कृतापीह नागार्जुन एवेति ।” सुगमञ्चेदमनया निर्देशभङ्गाया, यत् स्वपूर्वतनैः कैश्चिद् व्याख्यातृभिरनुमतानामन्येषां प्रतिसंस्कृत्त्वं

सुश्रुतप्रतिसंस्कृता प्रसक्तं निरस्यति डलन एवकारेणेति । चक्रपाणिश्च स्वकृतायां भानुमत्याख्यसुश्रुतटीकायां सुश्रुतस्य प्रतिसंस्कृतत्वमुरी कुर्वाणोऽपि नागार्जुन एव तत्प्रतिसंस्कृतेति नाशंसत् । तथाच शङ्कामहे, नागार्जुनादयः केचिदासन् नैकाधिकाः सुश्रुतप्रतिसंस्कृत-तया पूर्वप्रसिद्धाः, न चात्र किंवदन्तीमात्रमूलं निष्प्रमाणं डलनवचो विनि-गमकमिति ।

अथ चेन्नागार्जुन एव सुश्रुतप्रतिसंस्कृता,—तथापि कोऽसाविति दुःशकं निर्णेतुम् । श्रूयन्ते ह्यनेके नागार्जुनाः प्राचीनेतिहासप्रसिद्धाः । तत्रैको नागार्जुनो लौहशास्त्रप्रवक्ता रसतन्त्राचार्यः, अपरस्तदाख्यो बौद्धनरपतिः काश्मीरेतिहासप्रसिद्धः,

अन्यश्च माध्यमिकमतप्रवर्तको महायानाख्यसम्प्रदायप्रतिष्ठापको कोऽसौ नागार्जुनः ? बौद्धाचार्यो बौद्धेतिहासेषु सुप्रथितनामा । तत्राद्यः सिद्ध-नागार्जुनो नाम कक्षपुटतन्त्र-रसरत्नाकरादिकारः* । स च नेपालप्रत्यन्तेष्वासीत् कृताश्रमः इति तद्देशीया जनश्रुतिः । न चासौ सुश्रुतप्रतिसंस्कृतेति सम्भाव्यते, यतः तादृशेन रसतन्त्राचार्येण सकलरोगहरस्य रसेन्द्रस्याभ्यन्तरप्रयोगः समग्रसुश्रुतसंहितायां कचिदपि

Buddhist Practices in India (Translated by Prof. Takakusu), p. 128.

१ । यथा चक्रसंग्रहे—“नागार्जुनो मुनीन्द्रः शशास यलोहशास्त्रमतिगहनम्”—इति रसायनाधिकारे । २ । यथा राजतरङ्गिण्यां प्रथमतरङ्गे—“तदा भगवतः शाक्यसिंहस्य परनिवृत्तेः । अस्मिन् महीलोकधातौ सार्द्धं वर्षशतं ह्यगात् । बोधिसत्त्वश्च देशेऽस्मिन्नेको भूमीश्वरोऽभवत् । स च नागार्जुनः श्रीमान्—” इत्यादि । ३ । For a full description of the subject, vide Dr. P. C. Roy's History of Hindu Chemistry, Vol. II, Introduction. ४ । अन्योऽपि रसरत्नाकरोऽस्ति नित्यनाथकृतः प्रसिद्धतरः ।

किमिति न निरदेशीति दुरुत्तरः संशयः । तथाहि सुश्रुते द्रव्यसंग्रहणीयाध्याये,—
 “त्रपु-सीस-ताम्र-रजत-कृष्णलोह-सुवर्णानि लौहमलञ्चेति” धातवश्चिकित्सोपयोगिनः
 संगृहीतास्तद्गुणाश्च अन्नपानविध्यध्याये वर्णिताः, न तु तत्र श्रूयते वार्त्तापि जराव्याधि-
 विध्वंसिनो रसेन्द्रस्य^१ । न च नागार्जुनाख्यो बौद्धनरपतिः प्रसिद्धबौद्धाचार्यो वा
 सुश्रुतप्रतिसंस्कृतेति सुवचम्, प्रमाणाभावात् । अस्ति हि नागार्जुनो नाम माध्यमिक-
 सूत्राधिकारो बौद्धधर्माचार्यः सुप्रसिद्धो, न त्वसौ वैद्यो वैद्यकप्रतिसंस्कृता वेति कचिद्
 दृश्यत उल्लेखो बौद्धग्रन्थेषु^२ । तस्माद् दुरुपपादमेवैतन्मतं—बौद्धनागार्जुन एव सुश्रुत-
 प्रतिसंस्कृतेति । न त्वेतावता प्रतिसंस्कृतत्वेऽपि सन्देहः सूक्ष्मदृशां, पूर्वोक्तप्रमाण-
 बाहुल्यात्, शारीरस्थाने प्रत्यक्षविरुद्धप्रमाददर्शनाच्च^३ ।

यदि पुनरुत्तरीक्रियते बौद्धनागार्जुन एव सुश्रुतप्रतिसंस्कृतेति, तथापि सुश्रुत-
 नागार्जुनकालः प्रतिसंस्कारस्य सम्प्रति वर्षसहस्रद्वयाधिकः कालो व्यतीत इति
 निर्विवादः सिद्धान्तः । नागार्जुनो हि सिद्धबौद्धाचार्यो
 द्विसहस्रवर्षतः पूर्वं समजनीति मतस्य सर्ववादिसम्मतत्वात् ।

एवञ्च द्विसहस्रवर्षतः पूर्वमप्यायुर्वेदस्य प्रतिसंस्कारार्हता समभूदिति नात्र
 सन्देहावसरः कोऽपि । परतश्च प्रतिसंस्कारात् प्रादुर्बभूवुरनेके वाग्भट-माधववृन्द-
 चक्रपाणि-विजयरक्षित-श्रीकण्ठ-शार्ङ्गधर-भावमिश्रादयो वैद्यकसंग्रहकाराः व्याख्यातार-
 श्रेत्यपि सुविदितं विदुषाम् । इदानीं पुनरेतेषामेव निबन्धान्
 आवर्षसहस्रद्वयम् आयुर्वेदन्य प्राचीनमतपिष्टपेणव्रतान् सर्वायुर्वेदसारं मन्वानास्तुष्यन्ति च
 दशाविपर्यासः स्तुवन्ति च केचन धन्यम्मन्या भिषज इति हन्त नो
 दशाविपर्यासः । आर्षी तु वत सा प्रतिभा नियतनवीन-
 तत्त्वान्वेषणपरायणा साम्प्रतं विलीनैव, नूनमथवा भूमण्डलस्य पूर्वाद्धिस्तमिता पुनः
 पश्चिमाद्धे समुदितेति चिन्तयतः कस्य नु प्रेक्षावतो भारतीयस्य न विधीदति हृदयम् ?

यदा निर्वर्णयामः, पूर्वोक्तानामनार्षनिबन्धकाराणां समयेऽपि लभ्यन्ते स्म

१ । यत्तु सुश्रुते—“रक्तं श्वेतं चन्दनं पारदञ्च काकोल्यादिः क्षीरपिष्टश्च वर्गः” (सु० चि०
 २५ अ०) इत्यादि । तत्र पारदस्य बाह्यप्रयोग एवोपदिष्टो नाभ्यन्तरप्रयोगः । २ । यत्तु
 तिब्बतीय-बौद्धमिश्रुतारानाथकृते नागार्जुनोपाख्याने (Life and Legends of Nāgārjuna)
 नागार्जुनस्य लोकातीतशक्तिसम्पन्नत्वमभिहितं कचिद् वैद्यविद्यानैपुण्यञ्च, तेनापि सुश्रुतप्रतिसंस्कृतत्वमस्य
 नोच्यते । न च सर्वथा स्तुतिमात्रपरायणं द्विशतवर्षमात्रपूर्वजस्य तारानाथस्य जल्पमात्रं प्रमाण-
 मितिहासविदाम् । ३ । ते च प्रमादा अग्रे दर्शयिष्यन्ते ।

नानाविधाः प्राचीनार्षसंहिताः (सांगा विकलांगा वा), विलुप्तप्रायाश्च ताः सर्वथैव साम्प्रतम्,—तदा समतीतवर्षसहस्रीयं वैद्यकध्वंसवृत्तमाकलयन्तः शपामो भारतभाग्य-विधातारं विधातारमेव । यथा चासीदमूषां संहितानां सौलभ्यं सहस्रवर्षान्तस्तथा च सप्रमाणमनुपदं दर्शयिष्यामः ।

तदेवमित्थं गते नानानार्षजनप्रतिसंस्कृतजीर्णवशेषे वर्षसहस्रयुगीयलिपिकरप्रमाद-प्रक्षेपादिपरामृष्टे च प्रधानार्षसंहिताद्वितये, सत्सु च तदुपजीविषु केषुचिदष्टाङ्गहृदय-भावप्रकाश-शार्ङ्गधर-चक्रदत्त-वङ्गसेनादिषु संप्रहृन्मन्त्रमात्रेषु, सन्तमसाच्छन्नेषु च

शरीर-वनौषधिविद्यादिष्वायुर्वेदपूर्वाङ्गेषु, प्रलीनप्रायेषु च काय-
आयुर्वेदवदतरुः पुनः चिकित्सावर्जमपरेष्वायुर्वेदप्रधानाङ्गेषु, सर्वथा प्रतिसंस्कारा-
सङ्गीवनीयः पूरणाभ्यां पुनः सञ्जीवनीयोऽयं निगूढशक्तिर्महाप्रभावः समप्र-

जगदेकाश्रयो वैद्यकवदतरुरिति कस्तावदत्र चक्षुष्मानुदासीत ? एवं हि हन्तायुर्वेदो विपन्नदीधितिरप्येतर्हि कायचिकित्साङ्गमात्रेण कथं कथमपि ध्रियमाणो निखिलभारतीय-प्रजाप्राणत्राणाय प्रभविष्णुर्वहुधा परकीयचिकित्साशास्त्रचन्द्रमसमद्यापि निष्प्रभीकरोति रविरिव पश्चिमाचलस्थः । न विद्मो, नवेन तेजसा समुदितः किं किमेष न विदधीत दश दिशः समुज्ज्वलयन् ।

अथ आयुर्वेदस्य प्राचीनगौरववर्णनं नाम

द्वितीयपादः ।

अथैवमतिसंक्षेपादायुर्वेदस्य पुरावृत्तं किञ्चिदालोच्य सम्प्रति विलुप्तप्राचीन-गौरवं परिचाययितुं यतामहे । दर्शयिष्यामश्चाप्रे सकलचिकित्सा-शास्त्र-मूलता-मायुर्वेदस्यैव ।

तत्र यदा पूर्वदर्शितदिशा ब्रह्म-प्रजापत्यश्चि-वासवपरम्परयाऽभूदवतरणमायु-र्वेदस्य धन्वन्तरिभरद्वाजादिषु परमर्षिषु, सोऽयमस्य स्निग्धकान्तः प्रभातकालः, तमिह दैवकालमाचक्ष्महे । यदा पुनर्धन्वन्तरि-सुश्रुतादिसम्प्रदायत आत्रेयाग्नि-

वैशादिसम्प्रदायतश्च द्विविधा प्रवृत्तिः, क्रमशः कार्यविभागा-
आयुर्वेदस्य काल- दष्टांगवैद्यकतन्त्रकाराणां प्रादुर्भावश्च, तदेतदखिलभूमण्डलोद्भासि
वतुष्टयविभागः मध्यन्दिनमायुर्वेदस्य—सोऽयमार्षकालः संहिताकालो वा । यस्तु

पुनः प्राचीनविज्ञानारुणरागसंग्रहणः संग्रहकृतां कालः, सेयमपराह्वेला हीयमानज्योतिषो वैद्यकस्य,—तं संग्रहकालमभिधमः । साम्प्रतं पुनरेष सम्प्राप्तः करालः सन्ध्यासमयो

यत्र समुपचीयमाने गाढान्धकारे न दृश्यते दर्शनीयं, न क्रियते करणीयं, न च सम्यग् ज्ञायते पन्था गन्तव्यः । तथाप्याशास्महे—चक्रनेमिपरिवृत्तिन्यायेन पुनरपि समुदेव्यति नः पौर्णमासी रजनी, यत्र दिव्यालोकेन ज्ञास्यते शोभनो मार्गो महर्षिजनानुसृतः, सम्पत्स्यते च भूयोऽपि सैव सम्पदायुर्वेदस्येति ।

अथेदानीमायुर्वेदप्रभातसमये विरचितानां केषाञ्चिन्नाममात्रशेषाणां ग्रन्थानां तत्राद्यो देवकालः परिचयमाख्यापयामः । तेषु चाद्या ब्रह्मकृता लक्षश्लोकमयी संहिता—इति श्रूयते । अन्याश्चानन्तरं बभूवुः क्रमात् संहिताः—प्रजापतिसंहिता, अश्विसंहिता, बलभित्संहिता चेति

प्रतियन्ति वैद्यकविदः ।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे तु आयुर्वेदावतरणक्रमः किञ्चिद्भिन्न एवाख्यायते प्राचीन-ग्रन्थपरिचयश्चाश्रुतपूर्व एव । यथा—

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणोक्तः
आयुर्वेदावतरणस्य
क्रमभेदः, तत्कालीन-
ग्रन्थपरिचयश्च ।

ऋग्यजुःसामाथर्वार्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः ।
विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार सः ॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः ।
स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्च चकार सः ॥
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्व-संहिताम् ।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च ।
व्याधिप्रणाशवीजानि साध्वि मत्तो निशामय ॥
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजोऽश्विनीसुतौ ।
नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः ॥
जावालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च ।
एते वेदांगवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः ॥
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् ।
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति ॥
चिकित्सादर्शनं नाम दिवोदासश्चकार सः ।
चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार च ॥

१ । अत्र धन्वन्तरि-दिवोदास-काशिराजादीनां पृथक्त्वमङ्गीकृतमिति चित्रमेतत् ।

चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमत्रञ्चाश्विनीसुतो ।
 तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ॥
 चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् ॥
 ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥
 च्यवनो जीवदानश्च चकार भगवानृषिः ॥
 चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ।
 सर्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तन्त्रसारकम् ॥
 वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ।
 पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् ।
 द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥
 चिकित्साशास्त्रवीजानि तान्येतानि हि षोडश ।
 व्याधिप्रणाशवीजानिवलाधानकराणि च ॥
 मथित्वा ज्ञानमन्थेनैवायुर्वेदपयोनिधिम् ।
 ततस्तस्मादुदाजहूर्नवनीतानि कोविदाः ॥”
 (इति ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य ब्रह्मखण्डे १६ अ०)

दृश्यते चान्योऽपि सुप्रसिद्धमतविलक्षणो वैद्यकावतरणक्रमश्चरकचिकित्सा-
 स्थानारम्भेऽपि । तद् यथा—

“अथात आयुर्वेदसमुत्थानीयं रसायनपादं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माह भग-
 वानात्रेयः—ऋषयः खलु कदाचिच्छालीना यायावराश्च ग्राम्यौषध्याहाराः सन्तः
 साम्पन्निका मन्दचेष्टा नातिकल्याणाश्च प्रायेण बभूवुः । ते सर्वासामितिकर्तव्यताना-
 मसमर्थाः सन्तो ग्राम्यवासकृतं दोषं ज्ञात्वा पूर्वनिवासमपगतग्राम्यदोषं मत्वा
 शिवं पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममर-गन्धर्व-यक्ष-किन्नरानुचरितमनेक-
 रत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितं दिव्यतीर्थौषधिप्रभवमतिशरण्यं
 हिमवन्तममराधिपतिगुप्तं जग्मुर्भृग्वंगिरोऽन्निवशिष्ट-कश्यपागस्त्य-पुलस्त्य वामदेवासित-
 गौतमप्रभृतयो महर्षयः ।

“तानिन्द्रः सहस्रहगमरवरोऽब्रवीत्—स्वागतं ब्रह्मविदां ज्ञानतपोधनानां
 ब्रह्मर्षीणामस्ति ननु वो म्लानिरप्रभावत्वं वैस्वर्यं वैवर्ण्यञ्च ग्राम्यवासकृतमसु-
 खानुबन्धञ्च । ग्राम्यो हि वासो मूलमशस्तानाम् । तत्कृतः पुण्यकृद्भिरनुग्रहः प्रजानां
 स्वशरीरमरक्षिभिः । कालश्चायमायुर्वेदोपदेशस्य ब्रह्मर्षीणामात्मनः प्रजानाञ्चानु-

प्रहार्थम् । आयुर्वेदमश्विनौ मह्यं प्रायच्छतां, प्रजापतिरश्विन्यां, प्रजापतये ब्रह्मा, प्रजानामल्पमायुर्जराव्याधिबहुलमसुखमसुखानुबन्धम् अल्पत्वादल्पतपोदमनियमदाना-
ध्ययनसञ्चयं मत्वा । तं पुण्यतममायुःप्रकर्षकरं जराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतं शिवं
शरण्यमुदारं भवन्तो मत्तः श्रोतुमर्हन्त्युपधारयितुं प्रकाशयितुञ्च प्रजानुप्रहार्थमिति
तत् श्रुत्वा विबुधपतिवचनमृषयः सर्व एवामरवरमृग्भिस्तुष्टुवुः प्रहृष्टास्तद्वचनमभि-
ननन्दुश्चेति ।

“अथेन्द्रस्तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यः संक्रम्योवाचैतत् सर्वमनुष्ठेयम् ॥” इत्यादि ।

(चरक-चिकित्सास्थान० १ अ०)

तदेतत् सुप्रसिद्धमतविलक्षणं कल्पद्वयमायुर्वेदावतरणस्य, पौराणिकवृत्तानां
कल्पभेदकल्पनया वा ब्रह्मेन्द्रादिगुरुणामनेकशिष्योपदेशसम्भावनया वा समाधानीयमिति
दिक् । अथवा सुप्रसिद्धेऽपि वैद्यकस्य वेदाङ्गत्वे, चरक-सुश्रुतयोर्दृश्यते अथर्ववेद-
स्यैवायुर्वेदप्रभवता वर्णिता, चरणव्यूहे तु ऋग्वेदस्यैव, इति मतभेदः सर्वत्रैव सोढव्यः ।
तथाहि—

“भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णां वेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या—” इति चरकः
(सूत्रस्थाने ३० अ०) । “आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्ये”ति सुश्रुतः ।
(सूत्रस्थाने १ अ०) “ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदः”—इति चरणव्यूहे कात्यायनः ।
समाधानञ्चात्र ऋग्वेदस्याद्यवेदत्वेन आयुर्वेदमूलता, वैद्यकविस्तरस्य पुनरथर्ववेदे
विशेषेण दर्शनात् तदुपाङ्गताऽयुर्वेदस्येति केचित् । पौर्वापर्यञ्च वेदेष्वप्यस्तीति मतं
तु सुप्रसिद्धवेदाचार्येण स्वर्गतेन तत्र भवता सत्यव्रतसामश्रमिणा प्रतिपादितं तदीयत्रयी-
चतुष्टयाख्ये ग्रन्थे इत्यलमस्मादृशामल्पधियाम् अपारकालसागरसन्तरणप्रयासेन ।

अथास्य वैद्यकप्रभातकालस्य इत्यत्कालतया इत्यत्कालपूर्वतनतया वा निर्णयः
सर्वथा अशक्य एवास्माकम् । साहसिकाः पुनः केचन पाश्चात्याः षट्सहस्रवर्षमात्र-
परिच्छिन्नां विधातुः सृष्टिं मन्वानाश्चतुःसहस्रवर्षतः प्राक्तनमेतं कालं मन्यन्ते । वयन्तु
स्मरणातीतोऽयमतिपुराणो दैवयुगाख्यः काल इत्येतावता विरमामः ।

अथैवमायुर्वेदावतरणादवर्गाधिगतविद्या महर्षयो विरचयाम्बभूवुरनेकानि तन्त्राणि,
आयुर्वेदस्य तैश्च गजाश्वायुर्वेदादि-नानोपाङ्गं मानुषचिकित्साशास्त्रं लोके
मध्यन्दिनम्— परां प्रतिष्ठापयामीत् । कालश्चायमायुर्वेदस्य मध्यन्दिनभूतः
आर्षकालः संहिताकाल आर्षयुगं वेत्यवोचाम । स च सार्द्धवर्षसहस्र-

द्वयात् प्राक्तनोऽनेकसहस्रवर्षव्यापी चेति निश्चयोऽस्माकम् । यतो हीयमाने वैदिका-
चारगौरवे प्रलीनप्राये च महर्षिगणतीव्रप्रभावे सम्भवूव नवीनधर्मप्रवर्त्तको भगवान्
शाक्यसिंहः, स च सार्द्धवर्षसहस्रद्वयेन पुराणः । दर्शितपूर्वश्चेदं यथा द्विसहस्रवर्षतः
किञ्चित् पूर्वं चरकादीनां वैद्यकप्रतिसंस्कृतृणां प्रादुर्भावात् प्रतिसंस्कारार्हता वैद्यकस्य
तदैव समभूदिति । अतीतवर्षसहस्रद्वयान्तश्च प्रादुर्भूता दृढबलवाग्भटाद्या वैद्यकाचार्या
इत्यपि अदर्शयाम । एवञ्च ततोऽपि वर्षसहस्राद्धात् पूर्वमर्षयुगावसानं सम्भाव्यते ।

एष चार्षयुगीयानां संहिताग्रन्थानां परिचयः, स च दिष्ट्याद्यापि लभ्यत एव
लभ्यमाननिबन्धेषु टीकासु चेति नास्ति तेषां सत्तायां सन्देहः ।

(अथ कायचिकित्सा-तन्त्राणि)

१ । अग्निवेशसंहिता ।—तदेतदग्निवेशमहर्षिकृतमात्रेयसाम्प्रदायिकानां
प्रधानं तन्त्रं पृथगेव चरकसंहितायाः । तत्पाठांश्च बहुधा समुद्धरन्ति टीकाकृतः ।
तद् यथा—

चरकटीकायां चक्रपाणिः—

१ “यदुक्तमग्निवेशेन—कर्पाद्धं वा कणाशुण्ठयोरिति ।” (च० सू० २ अ०)

एष पाठश्चरकसंग्रहेऽपि दृश्यते, व्याख्यातश्च शिवदासेन ‘अग्निवेशोक्तेयं परि-
भाषेति । षडङ्गपरिभाषाऽपि शिवदासेन तादृगेव निर्दिष्टा ।

पुनः निदानटीकायां विजयरक्षितः—

“वातपित्तकफैः सप्त-दश-द्वादशवासरान् ।

प्रायोऽनुयाति मर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥—

इत्यग्निवेशमते प्रायोग्रहणेन द्वैगुण्यमिति ।”

श्रीकण्ठोऽपि वृन्दकृतसिद्धयोगटीकायामाह—

“तथाचाग्निवेशः—

“प्रवेपमाने ज्वरिते शीते दृष्टतनूरुहे ।

कट्यूरुजङ्घापाश्वास्थिशूलिने स्वेदनं हितम्”—इत्यादि ।

(ज्वराधिकारे)

यतश्चैते पाठा लभ्यमानचरकसंहितायां न दृश्यन्ते, तस्मादितः पृथगेवासीदग्नि-
वेशतन्त्रमिति स्वीकार्यमेव ।

सुश्रुतप्रतिसंस्कर्ताऽपि स्पष्टमग्निवेशादितन्त्राणां पूर्वसत्तामुरीचकार—

“षट्सु कायचिकित्सासु ये चोक्ताः परमर्षिभिः” इत्यादिना उत्तरतन्त्रादौ ।

वाग्भटश्च—“तेभ्योऽतिविप्रकीर्णैभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः” इत्याद्यष्टाङ्गहृदय-
प्रस्तावनायामग्निवेशादितन्त्राणि स्पष्टमुद्दिदेशः ।

अञ्जननिदानाख्यश्च ग्रन्थः अग्निवेशमहर्षिकृत एवेति केचित् । तत्र नो महान्
सन्देहः, यतस्तत्र दृष्टेषु केषुचित् पाठेषु चरकसंहितायां कचिद् वर्तमानेष्वपि तत्रत्याः
केचन पाठाः वर्तमानसुश्रुतसंहितायामेव दृश्यन्ते, न चरके । यथा—

“दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।

हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥” इति—

(सु० उत्तर० ४३ अ०) ।

किञ्च—

“गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिड्कार्त्तिकृत् ।

मिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥”—

इति माधवधृतः पाठश्चरकसुश्रुतवाग्भटेषु न दृश्यते, दृश्यते चाञ्जननिदाने इति
तत्कारस्य माधवपरभावित्वमाशङ्क्यते । ननु माधव एवाञ्जननिदानादेनं पाठमुद्-
धारेति चेत्, तथापि माधवस्य प्राथम्येन निदानकारत्वप्रसिद्धेः, चक्रपाणि-विजयरक्षित-
श्रीकण्ठादिभिश्च कचिदपि अञ्जननिदानपाठस्यानुद्धारात्, कचिद् चपलरचनादर्शनाच्च
युज्यत एवात्र प्रेक्षावतां संशयः ।

तदेतदञ्जननिदानमग्निवेशमहर्षिकृतं मा भूत्, तथापि अतिसंक्षेपेणाऽप्यतिरमणीय-
तया वर्णितमत्र रोगाणां निदानमिति परमव्युत्पादकमिदमल्पधियां मन्यामहे ।

२ । भेलसंहिता ।—सेयमात्रेयसाम्प्रदायिकानां द्वितीया संहिता साम्प्रतं
‘ताञ्जोर’नगरीस्थराजकीयग्रन्थागारे खण्डिताकारेण वर्तमानाऽपि न सर्वैः सुलभा ।
सति वा तत्सैल्ये? नाधिकफलं सम्भाव्यते इति ग्रन्थमेनं स्वयमालोच्य ब्रूमः ।
वाग्भटोऽपि स्पष्टमाह—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ ।

भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ।” इति—

(अष्टाङ्गहृदय समाप्तौ)

१ । Vide Burnell's Catalogue ; also Dr. Hoernle's Medicine
of Ancient India p. 37. २ । अधुना (प्रत्यक्षशारीरस्य तृतीयावृत्तिकाले) मुद्रापिता
सा कलकत्ता-युनिवर्सिटीपण्डितैः । अतिखण्डितश्चासौ ग्रन्थः सुश्रुतादितन्त्रस्यापि पुरा कदाचिदेवं-
विधपरिणामं स्मारयति ।

भेलसंहिता चेयं भालुकितन्त्रादभिन्नेति केचित् । तत्र । डलनेन तदुभयोः पृथङ्निर्देशात् । तथाहि सुश्रुतटीकायां ज्वरप्रतिषेधव्याख्याने डलनः—

“इदानीं भेल-भालुकि-पुष्कलावतादीनां शल्यतन्त्रविदां मतेन विषमज्वरो-पत्तिमभिधाय”—इत्यादि । (सुश्रुतटीका० उत्तरतन्त्र ३६ अ०)

भालुकितन्त्रस्य शल्यतन्त्रत्वेन पृथगुपलम्भाच्च । दृश्यतामग्रे भालुकितन्त्र-प्रसङ्गः ।

भेलसंहितापाठाश्च बहुधा टीकाकृद्भिरुद्धताः । तत्र दिङ्मात्रं यथा—
निदानटीकायां ज्वराधिकारे विजयरक्षितः—

“भेलेऽपि पैत्तिकः पठ्यते—

आमाशयस्थः पवनो ह्यस्थिमज्जगतोऽपि वा ।

कुपितः कोपयत्याशु श्लेष्माणं पित्तमेव च । इति”

शिवदासश्च—

“नागरं देवकाष्ठञ्च धन्याकं वृहतीद्वयम् ।

दद्यात् पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥”—

इति चक्रसंग्रहोक्तं पाठं भेलस्येति निर्दिशति ।

“ताञ्जोरग्रन्थसूची”-कारो वाणेंलाख्यः पाश्चात्यबुधस्तु—वाग्भटस्योपजीव्य-मभूत् प्राधान्येन भेलतन्त्रमेवेत्याह । तन्निर्मूलम् । नहि लभ्यमानं भेलतन्त्रं वाग्भट-ग्रन्थस्य कलामप्यर्हति । जागर्त्ति चाद्यापि वाग्भटस्य “भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते”—इत्यधिकेपवचनम् ।

३ । जतूकर्णसंहिता । सेयमात्रेयसाम्प्रदायिकानामाहता संहिता साम्प्रतमतिदुर्लभा । तत्पाठाश्च बहुधा प्रायः सर्वैरपि टीकाकृद्भिरुद्धताः । तद् यथा—चरकटीकायां चक्रपाणिः—

“तथाच जतूकर्णः—

“पृश्नी-गोकण्टक-गुडैर्मूर्त्रार्तिवस्तिशूलनुत् ।”

(च० सूत्र० २ अ०) इति ।

पुनस्तत्रैव—“यदाह जतूकर्णः—

“पक्त्वाऽथाम्बुशतप्रस्थे दशभागस्थितेन तु ।

तैलप्रस्थं पचेत्तेन छागीक्षीरेण संयुतम् ॥” इति (च० सूत्र० ५ अ०)

“यदुक्तं जतूकर्णे—दोषाणां धातूनामोजोमूत्रशकृदिन्द्रियमलायनानामष्टदश क्षयास्ते लक्ष्याः स्वगुणक्रियानाशात् ।” इति च ।

५३०
१०६ १६ II

३०,२००

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी

आयुर्वेदस्य प्राचीनगौरवम्

२१

अथ निदानटीकायां विजयरक्षितः—

“जतूकर्णेनाप्युक्तं—जीर्णस्त्रयोदशदिवस इति ।”

(ज्वराधिकारे)

“यदाह जतूकर्णः—‘आद्याश्चतस्रो दुःसाध्याः यमिका मोहतृष्णावतः सद्यः प्राण-
हृत् ।” इति च (हिक्काश्वासाधिकारे)

श्रीकण्ठोऽपि निदानटीकायामाह—

“जतूकर्णेऽप्युक्तं—‘कुपितेन वायुना दीपस्येवाग्नेर्निर्वापणं, पित्तेनोष्णजलवत्
कफेनाम्बुवत्’—इति ।” (क्षुद्ररोगाधिकारे)

एवं शिवदासोऽपि चक्रसंग्रहटीकायां बहुधा जतूकर्णपाठानुद्धरतीति दिक् ।

इत्थञ्च जतूकर्णसंहिताख्योऽयं गद्यात्मकरचनाभूयिष्ठो महाग्रन्थः शिवदास-
समयेऽपि सुलभोऽभूदिति सुप्रतिपादम् । शिवदासश्च समाहृतटीकाकारेण्वर्वाचीनतम
इत्यग्रे दर्शयिष्यामः ।

४।५ पराशरसंहिता, क्षारपाणिसंहिता च ।—तदेतत्सन्त्रद्वयं न

केवलं विजयरक्षितश्रीकण्ठाभ्यां बहुधा समुद्धृतपाठम्, अपितु शिवदाससमयेऽपि तत्-
सौलभ्यमासीदिति ज्ञायते चक्रसंग्रहटीकोद्धृतैः पाठैः । तद्यथा—प्रहणीचिकित्सा-
व्याख्याने शिवदासः—

“यदाह पराशरः—

“निर्वाहयेत् सफेनञ्च पुरीषं यो मुहुर्मुहुः ।

प्रवाहिकेति साख्याता कैश्चिन्निश्चारकस्तु सः ॥” इति

पुनः कासचिकित्सितव्याख्याने स एव—

“यदाह क्षारपाणिः—

‘पिप्पल्यामलकं द्राक्षा खज्जूरं शर्करा मधु ।

लेहोऽयं सघृतो लीढः पित्तक्षयजकासजित् ॥” इति ।

६ । हारीतसंहिता—सेयं चक्रपाणि-विजय-श्रीकण्ठ-शिवदासादि-समये

सुलभाऽपि साम्प्रतं सुदुर्लभा संवृत्ता । न च मुद्रितप्रसिद्धा हारीतसंहिता स्वप्नेऽपि
आर्षीति सम्भाव्या, पूर्वोक्तहेतु^१ शतसद्भावात् । चक्रादिशिवदासान्तैर्व्याख्याकारै-
रुद्धतानां पाठानां प्रायस्तत्रादर्शनाच्च । दिङ्मात्रमुदाह्रियते—

१ । अत्र प्रवाहयेदिति युक्ततरः पाठः प्रतिभाति । २ । मुद्रणञ्च हारीतसंहिताख्यस्यास्य
निबन्धस्य कलिकातायां कविराजश्रीकालीशचन्द्रेण, मुम्बय्याञ्च तदनुसारिणा केनचित् कृतमिति प्रसिद्धम् ।
३ । इदयतामुपोद्धातस्य चतुर्थपत्रम् ।

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः

तत्र चरकटीकायां चक्रपाणिः—

“उक्तञ्च हारीते —

“नानापुष्पप्रकाराणां रससारात्मकं मधु ।

तच्छैत्यात् सौकुमार्याच्च सर्वैरुष्णैर्विरुध्यते ॥” इति

(च० सूत्र० २३ अ० व्याख्याने)

तथा निदानटीकायां विजयः—

“तथाच हारीतो व्याहरति—

“चातुर्थको नाम गदो दारुणो विषमज्वरः ।

शोषणः सर्वधातूनां बलवर्णाग्निनाशनः ।

* * * *

—इत्यादि (ज्वराधिकारे)

तत्रैव विद्वधिनिदानव्याख्याने च स एव—

“ऊर्द्धं प्रभिन्नेषु मुखान्तराणां

प्रवर्ततेऽसृक्सहितोऽपि पूयः ।” इत्यादि -

ते चैते पाठा मुद्रितहारीतसंहितायां क्वचिदपि न दृश्यन्ते इति परमार्थतो हारीत-
संहिताया अपि तुल्यमेव दौर्लभ्यम् ।

७। खरनादसंहिता—साऽपीयमात्रेयसाम्प्रदायिकानामेव संहिता । तत्-
प्रसङ्गाच्च यथा—

ज्वरनिदानटीकायां विजयः—

“इति षड्रात्रिकः प्रोक्तो नवज्वरहितो विधिः ।

अतः परं पाचनीयं शमनं वा ज्वरे हितम् ॥

—इति खरनादवचनञ्च पूर्ववदष्टाहप्रतिपादकं द्रष्टव्यम् ।” इति ।

वाग्भटटीकायां हेमाद्रिश्च—

“यदाह खरनादः—

रसशेषे हितः स्वप्नो घर्माम्बु लघुभोजनम्”—इत्यादि ।

(अष्टाङ्गहृदय० सूत्र० ८ अ० टीकायाम्)

हेमाद्रिणा खरनादिनाम्नाऽपि केचिदुद्धृताः पाठाः । ते खरनादस्यैव, अन्यस्य
वा खरनादपुत्रस्येति न सम्यग् ज्ञायते । अरुणदत्तोऽपि खरनादपाठान् बहुधा
समुद्धार ।

८। विश्वामित्रसंहिता—तदेतदतिप्राचीनं तन्त्रं चक्रपाणिना समुद्धृतपाठं चरकटीकायां सुश्रुतटीकायाञ्च । तत्र दिक्—

‘यदुक्तं विश्वामित्रेण—

“तडागजं दरीजञ्च तडागाद् यत् सरिज्जलम् ।

वलारोग्यकरं तत् स्याद् दरीजं दोषलं स्मृतम् ॥” इति—

(चरकटीकायां सूत्र० २७ अ०)

“यदुक्तं विश्वामित्रेण—

सुक्ष्मकेशप्रतीकाशा वीजरक्तवहाः सिराः ।

गर्भाशयं पूरयन्ति मासाद् बीजाय कल्पते ॥” इति ।

(सुश्रुतटीकायां सूत्र० १४ अ०)

शिवदासोऽपि विश्वामित्रपाठमुद्धरति मुष्ककवर्णनावसरे । यथा—

“यदाह विश्वामित्रः—

श्वेतपुष्पः कृष्णपुष्पो रक्तपुष्पस्तथैव च ।

पीतोऽन्योऽपि वरस्तेषु कृष्णपुष्पः प्रकीर्तितः ॥” इति

(चक्रटीकायामशौऽधिकारे)

९। अगस्त्यसंहिता ।—अगस्त्यो नाम धन्वन्तरि-शिष्य इति दक्षिणापथे प्रसिद्धिः । तत्र च अगस्त्यप्रणीतसंहितामवलम्ब्य प्रवृत्तः अगस्त्यसम्प्रदायो नाम चिकित्सकसम्प्रदायो विशेषतः प्रतिष्ठामयासीत् । एतत्सम्प्रदाय-प्रवर्तका आचार्याः अष्टाविंशतिसंख्यका इति केचित्, द्वाविंशतिरित्यन्ये ; चतुश्चत्वारिंशदित्यपरे । तेषां ग्रन्थाः केचिद् देवभाषालिखिताः केचिच्च द्राविड(तामिल)भाषामया अद्यापि दक्षिणापथे बहुधा समुपलभ्यन्ते ।

वङ्गसेनाचार्यस्तु स्वकीयसंग्रहान्ते प्राह—

“अगस्त्यसंहितेयं प्राक् ख्याता मज्जन्मतस्ततः ।

गदाधरगृहे जन्म लब्ध्वा मत्प्रतिसंस्कृता ॥

वङ्गसेन इति ख्यातो नाम्नाऽसौ तदनन्तरम् ।

ग्रन्थोऽयं सर्वसिद्धान्तसारः शीघ्रफलप्रदः ॥”

१। संहितेयं प्रायः कायचिकित्साप्रसङ्गेष्वेव समुद्धृतपाठा इत्यस्याः कायचिकित्सातन्त्रेष्वन्तर्भावः, सम्भावितः । २। एतत्प्रसङ्गीयदक्षिणापथवृत्तान्तो मान्द्राजवास्तव्यसुहृद्वरवैद्यरत्न-पण्डित-श्रीगोपालाचार्यमहाशयेभ्यः प्राप्तः ।

१० । अत्रिसंहिता(?) — सेयमतिप्राचीना संहितेति केचित्, अर्वाचीनेन केनचिन्निमित्तेत्यपरे । यतश्च प्राचीनटीकाकारैरस्याः संहितायाः पाठा न दृश्यन्ते प्रायः समुद्धृताः—(अस्माभिश्च कचिदपि तत्पाठा नासादिताः)—ततोऽस्याः प्राचीनत्वे संशयानाः स्मः । श्रुतं पुनरस्माभिरद्यापि पञ्चनदेषु कचिदस्त्येव सुमहानत्रि-संहिताख्यो ग्रन्थः परं नासादितोऽद्यापि ।

तान्येतानि कायचिकित्साप्रधानतन्त्राण्यार्षाणि लब्धपरिचयान्यस्माभिः ।

[अथ शल्यतन्त्राणि]

११।१२ औपधेनवतन्त्रम् औरभ्रतन्त्रम्—तदेतत् तन्त्रद्वितयं सम्प्रति सर्वथा नाममात्रावशेषमेव यतस्तदुद्धृतप्रमाणान्यपि विरलानि । तत्सत्ता तु “औपधेनवमौरभ्र”मित्यादिसुश्रुतीयश्लोकेन समुन्नेया । डलनेन च “दोषोऽल्पोऽहित-सम्भूत—” इत्यादिसौश्रुतपद्यव्याख्याने (सु० उत्तर० ३६ अ०) औपधेनवमतमिदमिति निरदेशि ।

१३ । सौश्रुततन्त्रं वृद्धसुश्रुतापरपर्यायम् । तच्च लभ्यमानसुश्रुत-संहिताया मूलभूतम् । ये तु केचिदाहुरनयोरभेदं, तन्मतनिरासाय बहूनि प्रमाणानि दर्शितपूर्वाणि सुश्रुतसंहिताप्रसङ्गे । प्रदर्शितं च तत्र विदेहाधिपादीनां नामकीर्तनादि पर्याप्तं प्रमाणम् लभ्यमानसुश्रुतग्रन्थस्य अनाद्यत्वप्रतिपादनाय^१ ।

एवञ्च अर्वाचीनकालीनस्य शिवदासस्य समयेऽपि वृद्धसुश्रुतस्य सौलभ्यमासी-दिति विज्ञायते । न विद्मः,—सम्यगन्वेषणेन जातु पुनर्लभ्येत वाऽऽस्तन्त्रमिति ।

१ । अन्यच्च किञ्चिदस्मत्सुहृदो राजवैद्यश्रीमद्विरजाचरणकविभूषणस्य कृतेर्वनौषधिदर्पणस्य वङ्गभाषाविरचिताद् उपोद्घातप्रसङ्गादुद्धृत्य दर्शयामः । यथा—

माधवीयनिदानटीकायामागन्तुज्वरव्याख्याने विजयः—

“पुष्पेभ्यो गन्धरजसी ओजस्विभ्यो यदानिलः”—इत्यादिना वृद्धसुश्रुतेन पठितं तृणपुष्पाख्यं ज्वरमत्रैवान्तर्भावयन्ति ।” इति । नैष पाठो लभ्यमानसुश्रुतसंहितायां दृश्यते ।

सिद्धयोगटीकायामशौऽधिकारे “पिप्पल्यादितैल”व्याख्यानप्रसङ्गे श्रीकण्ठश्च—

“वृद्धसुश्रुते तु तैलेऽस्मिन्शुतुर्गुणं तोयं दर्शितं तद् यथा—शटीकृष्णे”त्यादि ।

लभ्यमानसुश्रुते पिप्पल्यादितैलप्रसङ्गे एव नास्ति, कुतोऽयं पाठः ?

एवं चक्रसंग्रहस्य वातव्याध्यधिकारे शाल्वणस्वेदव्याख्यानप्रसङ्गे शिवदासोऽपि—

“वृद्धसुश्रुते तु काकोल्यादिर्यथा”—इत्युपक्रम्य पद्यमयं काकोल्यादिगणमुद्धार । लभ्यमान-सुश्रुते तु काकोल्यादिगणो गद्यमयो दृश्यते, न पद्यमयः (सु० सू० ३९ अ०) इति दिक् ।

१४। पौष्कलावततन्त्रम्—तच्च “औषधेनवमौरभ्रम्” इत्यादिप्रसिद्ध-
सौश्रुतपत्रे निर्दिष्टमुद्धृतपाठश्च टीकाकारैः । यथा भानुमत्यां चक्रपाणिः—

“पुष्कलावतेऽप्युक्तम्—आहारस्य यत् परं धाम तदग्निना रक्षितं रक्तत्वं
प्रतिपद्यते—तत् सौम्याग्नेयत्वादुष्णद्रवैश्चाभिवर्द्धते इति (सु० सू० १४ अ० व्याख्याने)

१५। वैतरणतन्त्रम्—एतदपि बहुधा समुद्धृतपाठम् प्राचीनैर्व्याख्यान-
कारैः । तथाहि सुश्रुतटीकायामश्मरीचिकित्सिते उल्लेखः—

“तथाच वैतरणः—

भगस्याधः स्त्रिया वस्तिरूर्ध्वं गर्भाशयाश्रिता ।

गर्भाशयश्च वस्तिश्च महास्रोतःसमाश्रितौ ।

वस्तिभागं समुन्नम्य चावनम्याश्मरीं बुधः ।

स्फिग्ग्रे वेधनं तासां हितमन्यत्र दोषकृत् ॥” इत्यादि ।

चक्रपाणिरपि सुश्रुतटीकायां वैतरणपाठमुद्धार, यथा—

“उक्तञ्च वैतरणे

“सर्वशस्तु निशां प्राप्य प्रलेपन्तु निवर्त्तयेत् ।”

इत्यादि (सु० सू० १८ अ०)

यतश्च घ्रणवन्धनादिलक्षणविशेषाः शस्त्रचिकित्सितविशेषाश्च सुश्रुतेऽनुक्ता बहुधा
वैतरणतन्त्रादुद्धृत्य टीकाकारैर्दर्शितास्तत्र तत्र व्याख्याने, ततः सम्भावयामो लभ्यमान-
सुश्रुतसंहिताया बृहत्तरोऽसौ ग्रन्थोऽभूदिति ।

१६। भोजतन्त्रम् (भोजसंहिता वा)—तदेतत् शल्यतान्त्रिकाणा-
मतिबृहत् तन्त्रमिति शतशस्तदुद्धृतपाठैर्जानीमः । भोजश्च सुश्रुतादिसतीर्थो महर्षिरिति
उल्लेखेन सुश्रुतटीकायां व्याख्यातम् । तथा च नासौ धारेश्वरो नृपतिरिति शङ्कनीयम् ।
सन्ति तु धारेश्वरभोजकृता अपि राजमार्त्तण्डादयो वैद्यकसंग्रहग्रन्थाः, ते भोजसंहिता-
पेक्षया भृशमर्वाचीनाः । समापतन्ति च ते वैद्यकापराहकालीनेषु ग्रन्थेषु । भोज-
राजापेक्षया भोजमुनेर्वहुप्राचीनत्वाच्च कचिदस्य बृद्धभोजसंज्ञयापि व्यपदेशः ।

भोजसंहितापाठांश्च नैकधा समुद्धरन्ति वैद्यकटीकाकृतः सर्वेऽपि । दिङ्मात्र-
मिहोदाहरामः ।

१। संहिता तन्त्रञ्चेति तुल्यार्थं पदद्वयं वैयर्थ्ये । अत एवाग्निवेशसंहिताया अग्निवेशतन्त्र-
मित्यपि प्रसिद्धिः ।

तत्र डल्लनः—“तथाच भोजः—

“शस्त्रं ग्रीहिमुखं कार्यमङ्गलानि पडायतम् ।

द्वयङ्गुलं तस्य वृत्तं स्यात् तत्फलं चतुरङ्गुलम् ॥” इति—

(सु० सू० ८ अ०)

पुनः शारीरस्थाने डल्लनः—

“तदुक्तं भोजे—

हस्तपादाङ्गुलितले कूर्चेषु मणिवन्धयोः ।

बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु ॥” इति

(सु० शा० ५ अ०)।

चक्रपाणिश्च सुश्रुतशस्त्रावचारणीयाध्यायव्याख्याने भोजकृतान्येव लक्षणानि बहुश
उदाजहार (दृश्यतां सु० सू० ८ अ० व्याख्यानम्)।

अन्येऽपि चक्रपाणिसमुद्धृताः पाठा यथा—

“यदुक्तं भोजे—

संव्यूहिमस्तथा पाक्यो द्विविधः क्षार इष्यते ।

पाक्यस्तु सप्रतीवापस्तीक्ष्णोऽन्यस्तु भवेत् पुनः ॥” इति

(सु० सू० ११ अ० व्याख्याने)।

“भोजेऽपि—

लोहिता मर्मगाः कृष्णाः कर्णपालिश्रिताः सिराः ।” इत्यादि

(सु० सूत्र० १६ अ० व्याख्याने)।

“तथा भोजेऽपि—

त्रणोदरास्थापनपीडितानां

प्रमेहिणां छर्दयतिसारिणाञ्च ।

द्रवं न दद्यादथवापि कोष्णं

स्वरूपं हितं भेषजसंस्कृतञ्च ॥”

इति च (सु० सूत्र० १६ अ० व्याख्याने)।

एवं विजयरक्षितोऽपि माधवीयनिदानटीकायां बहुशो यथा—

“भोजादौ त्वयं विस्त्रंसीति नाम्ना पठ्यते” इति ।

“तथाच भोजः—

कासो ज्वरो रक्तपित्तं त्रिरूपं राजयक्ष्मणि ।”

इति (तत्रैव कासाधिकारे)।

आयुर्वेदस्य प्राचीनगौरवम्

२७

“यदाह भोजः—

स्तब्धाङ्गदृष्टिर्भवति गूढोच्छ्वासस्तथैव च ।
दर्शनादसृजस्तज्जाद् गन्धाच्चैव प्रमुह्यति ॥”

इति (मूर्च्छाधिकारे) ।

श्रीकण्ठोऽपि तत्रैव स्वकृतव्याख्यानंशे बहुधा भोजतन्त्रतः पाठानुद्धृत्य
तन्नात्मनो हृदभक्तिमाख्यापयति । तत्रोदाहरणार्थं किञ्चिद् यथा—

“तथाच भोजः—

यदा रक्तञ्च पित्तञ्च वातेनानुगतं त्वच्चि ।
अग्निदग्धनिभान् स्फोटान् कुरुतः सर्वदेहगान् ।
सज्ज्वरान् सपरीदाहान् विद्याद्विस्फोटकांस्तु तान् ॥”

इति (निदानटीकायां विस्फोटकाधिकारे) ।

“भोजेऽप्युक्तं—

पित्तेन जातो वदने विकारः
पार्श्वे विशेषात् स तु येन शेते ।
स्नायुप्रतानप्रभवो विशेषाद्
दाहप्रपाकप्रचुरो विदारी ॥”

इति (तत्रैव मुखरोगाधिकारे) ।

१७ । करवीर्यतन्त्रम् । इदञ्च टीकाकृतसमये नातिप्रसिद्धमपि क्वचित्
समुद्धृतपाठमेव यथा—

“उक्तं हि करवीर्याचार्येण—

चन्द्रकैः शिखिपिच्छाभैर्नीलपीतादिराजिभिः ।
आवृतं वेश्वाराम्बु मज्जक्षीरोपमं त्यजेत् ॥”

इति (निदानटीकायामतीसाराधिकारे) ।

१८ । गोपुररक्षिततन्त्रम् । ‘गोपुररक्षित’ इति संज्ञा धन्वन्तरिशिष्येषु
कस्यचिद् दृश्यते । तत्कृतञ्च तन्त्रमस्तीति किंवदन्ती । तत्पाठास्तु नाद्यापि
क्वचिदस्माभिरभिलक्षिताः । केचित् ‘गोपुर-रक्षित’ इति व्यक्तिद्वयस्य नामद्वयमित्याहुः,
सम्भावयामासुश्च तत्कृतं तन्त्रद्वयम् ।

१ । अत्र क्वचित् ‘करवीराचार्य’ इति प्रामादिकः पाठः सुधीभिर्नादरणीयः ।

१९ । भालुकितन्त्रम् । तच्च भेलसंहितायाः पृथगेव शल्यतन्त्रमिति पूर्वमवोचाम । तत्प्रतिपादकं प्रमाणन्तु किञ्चिद् यथा—सुश्रुतटीकायां शस्त्रस्वरूप-
व्याख्याने चक्रपाणिः—

“तथाच भालुकिः—

यदग्रे मण्डलं वृत्तं क्षुरसंस्थानमेव च ।

मण्डलाग्रं विजानीयात् प्रमाणन्तु पडङ्गुलम् ॥”

इति (सु० सूत्र० ८ अ० व्याख्यायाम्) ।

पुनस्तत्रैवाग्रे, यथा—

“तत्र भालुकिः—

मुद्रिकया विवद्धं स्याद् वृद्धिपत्रसलक्षणम् ।

द्व्यङ्गुलं मुद्रिकाशस्त्रं क्षुरसंस्थानमेव च ॥” इति ।

एवं डल्लनेन सुश्रुतटीकायां विजय-श्रीकण्ठाभ्याश्च निदानटीकायामपि समुद्धृता भालुकितन्त्रीयाः पाठाः । परं चक्रपाणिवचनप्रामाण्याद् यन्त्रशस्त्रादिलक्षणसमन्वितमिदं तन्त्रं शल्यतन्त्रमेवेति निश्चयोऽस्माकम् ।

तान्येतानि औपधेनवादीनि नव शल्यापहर्तृणां तन्त्राण्यस्माभिर्लब्धपरिचयानि । अन्यच्च तन्त्रद्वयं कपिल-गौतमयोर्नामधरं कचिदुद्धृतपाठं कायचिकित्साविषयकमेवेति सम्भाव्यते । अनिश्चयात्तु कायचिकित्सातन्त्रेषु शल्यतन्त्रेषु वा नान्तर्भावितमस्माभिः । तदेतत्—

२० । कपिलतन्त्रम् ।

२१ । गौतमतन्त्रञ्च ।

} तत्प्रमाणद्वयं यथा—

सुश्रुतटीकायामृतचर्याव्याख्याने चक्रपाणिः—

“तदुक्तं कपिलवचने—

मधौ सहे नभस्ये च मासि दोषान् प्रवाहयेत् ।

सहस्यप्रथमे चैव वाहयेदोषसञ्चयम् ।”

इति (सु० सूत्र० ६ अ० व्याख्यायाम्) ।

निदानटीकायामशौऽधिकारव्याख्याने विजयश्च—

“यदाह गौतमः—

इलेष्मा च पञ्चधोरःस्थः इलेषकादिः स्वकर्मणा
कफधाम्नाञ्च सर्वेषां यन् करोत्यवलम्बनम्
अतोऽवलम्बकः, इलेष्मा यस्त्वामाशयसंश्रितः
हृदयः सोऽन्नसंघातहृदनात्, रसबोधनात्
बोधको रसनास्थस्तु, शिरःसंस्थोऽक्षितर्पणात्
तर्पकः, इलेषकः सम्यक् इलेषणात् सन्धिषु स्थितः ॥” इति

अपरापि गौतमसंहिता गवायुर्वेदविषया वर्तते इति शृणुमः ।

(अथ शालाक्यतन्त्राणि)

२२ । विदेहतन्त्रम् ।—तदेतत् शालाकिनां प्रधानतन्त्रं विदेहाधिपेन
निर्मितम् । मूलभूतञ्चेदं लभ्यमानसुश्रुतोक्तशालाक्यतन्त्रांशस्य, तथाहि सुश्रुतस्य
उत्तरतन्त्रारम्भे—

‘शालाक्यशास्त्राभिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः

इति (सु० उत्तर० १ अ०) ।

विदेहाधिपश्चाऽसौ जनको नाम राजर्षिः सुप्रसिद्ध इति केचित् । डल्लनश्च
उत्तरतन्त्रटीकारम्भे प्राह—“अस्याप्रे केचित् ‘विदेहाधिपतिः श्रीमान् जनको नाम
विश्रुतः’—इत्यादि पाठं पठन्ति व्याख्यानयन्ति च, तच्च बृहत्पञ्जिकाकारो न पठति,
तस्मान्मयापि न पठितो व्याख्यातश्च” इति ।

अन्ये तु निमिविदेहाधिपयोरभेदं मन्यन्ते ; विदेहाधिपेष्वान्यस्य राज्ञो
निर्मेजनकपूर्वजत्वेन रामायणे वर्णनात् । तदपि न विचारसहम् ।

“इन्द्रियाणीति जनको वैदेहः” (च० शा० ६ अ०)—

इति चरकीयपाठदर्शनात् । एवञ्च वयं पुण्यश्लोकं भगवन्तं जनकमेव
राजर्षिं शालाक्यतन्त्रकारं मन्यामहे, गणयामश्च निमिनामानमपरं पृथगेव, डल्लन-
श्रीकण्ठादिभिः पृथङ्निर्देशदर्शनात् । तथाहि श्रीकण्ठो निदानटीकायां नेत्ररोगप्रसङ्गे
“यदाह निमिः—‘काच इत्येष विज्ञेयो यः स्यात्त्रिपटलोत्थितः” इति प्रमाणमुद्धृत्य पुनः
“तथाच विदेहः—“एष याप्यः स्मृतः काचो म्लायी नाम शरीरिणाम्” इति प्रायस्तुल्येऽर्थे
पृथक् प्रमाणमुपन्यस्यति स्म ।

१ । इदृशतां रामायणे हरधनुर्भङ्गप्रसंगे जनककृतं स्वकुलकीर्तनम् ।

३०

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः

अथेदानीं डल्लनादिभिरुद्धृतेषु विदेहतन्त्रीयप्रमाणेष्विव कानिचिद् दृश्यन्ते । तत्र डल्लनः —“तथाच विदेहवाक्यम्,

समन्ताद्विस्तृतः श्यावो रक्तो वा मांससञ्चयः ।

सन्निपातेन दोषाणां प्रस्तार्यर्मं तदुच्यते ॥”

इति (सु० उत्तर० ४ अ० व्याख्याने) ।

पुनरन्यत्र स एव—

“तथाच विदेहः,

अन्तर्गतसिरायान्तु यदा तिष्ठति मास्तः ।

स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति ॥”

इति (सु० उत्तर० ६ अ० व्याख्यायाम्) ।

विजयश्च निदानटीकायां यथा—

“यदाह विदेहः,

क्रोधशोकौ स्मृतौ वात-पित्त-रक्तप्रकोपणौ”—

इति (ज्वराधिकारे) ।

पुनः स एव—

“यदाह विदेहः,

पित्तेन तित्तास्यविदाहकृत् स्यात्

स्वाद्व्यास्य-हृल्लासकरः कफेन ॥”

इति (अरोचकाधिकारे)

श्रीकण्ठश्चानेकशो विदेहपाठानुद्धार निदानटीकायाम् । तत्र दिक्—

“तथाच विदेहः—

सर्वलिङ्गं रुजायुक्तमर्बुदं विद्धि सर्वजम्”

इति (नासारोगाधिकारे) ।

“तदुक्तं विदेहे—

नक्तमन्धास्तु चत्वारो ये पुरस्तात् प्रकीर्त्तिताः”—

इत्यादि (नेत्ररोगाधिकारे) ।

एष च “नक्तमन्धास्तु”—इत्यादिपाठो डल्लनेनाप्युद्धृतः ।

एतच्च विदेहतन्त्रं शालाक्यविषयप्रधानमपि सर्वाङ्गसम्पन्नं तन्त्रं सुश्रुतादिवदिति प्रत्येतव्यम्, यतो विजयेन ज्वरारोचकपाण्ड्वादिप्रकरणेऽपि तत्प्रमाणान्युपन्यस्तानि ।

२३ । निमित्तन्त्रम् । तदेतद् विदेहाधिप-तन्त्रात् पृथगेव शालाक्य-
तन्त्रमिति सप्रमाणमवोचाम । तत्प्रमाणानि च टीकाकारैः शालाक्यव्याख्यानावसर
एव समुद्धृतानि । यथा श्रीकण्ठः —

“तथाच निमिः,

इलेष्मपित्तजलोन्मिश्रे शोथे शोणितमांसजे ।

जायन्ते जन्तवस्तत्र कृष्णास्ताम्राः सितारुणाः ॥”

इत्यादि (निदानटीकायां कर्णरोगाधिकारे) ।

“तथाच निमिः—

पञ्चभूतात्मिका दृष्टिर्मसूराद्धदलोन्मिता ।”

—इत्यादि (नेत्ररोगे) ।

२४ । काङ्कायनतन्त्रम् ।—काङ्कायनादीनां संज्ञा डहनेन सङ्ख्याता,
चरकेऽपि यतस्ततः ‘काङ्कायनो बाह्यकभिषग्’ इति काङ्कायनस्य निर्देशः । तदीयतन्त्रो-
द्धृतानि प्रमाणानि तु नाद्याप्यस्माभिरासादितानि ।

२५।२६ । गार्ग्यतन्त्रं, गालवतन्त्रञ्च — गार्ग्यगालवयोस्तन्त्रकारत्वमपि
डहनेन वचसैव सूच्यते । तत्प्रमाणानि पुनर्नास्माभिः कचिदाविष्कृतानि ।

२७ । सात्यकितन्त्रम्—तदेतत् प्राचीनं शालाक्यतन्त्रं डहनेन श्रीकण्ठेन
च नेत्ररोगाधिकारे समुद्धृतप्रमाणम् ।

तत्र डहनेन यथा—

“तथाच रागकथनप्रस्तावे सात्यकिः—

पित्तरक्ताहिताः पीताश्चित्रिताः सन्निपातजाः”

इति (सु० उत्तर० ७ अ०) ।

श्रीकण्ठश्च —

“याप्यश्चायं, तथाहि सात्यकिः,—

तृतीयं पटलं प्राप्ते तिमिरे रागि जायते ।

अरागि तिमिरं साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम् ।

कृच्छ्रं द्वितीये रागि स्यात्तृतीये याप्यमुच्यते ॥”

इति (निदानटीकायां नेत्ररोगे) ।

२८ । शौनकतन्त्रम् ।—शौनकस्य शालाक्यतन्त्रकारत्वं डल्लनेन सुश्रु-
तोत्तरतन्त्रव्याख्यारम्भे सूचितम् । तत्पाठाश्च डल्लनचक्रपाणिभ्यां समुद्धृताः । तत्र दिक्
यथा—चरकटीकायां चक्रपाणिः—

“अत्र शौनकवचनन्तु,

द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात् ।

कपायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः॥”

इति (च० सूत्र० ४ अ० व्याख्याने) ।

लभ्यमानचरकसुश्रुतयोश्च दृश्यते शौनकमतस्य विचारो गर्भावक्रान्तिप्रकरणे ।

तत्र चरकः—

“पक्वगुदमिति शौनको मारुताधिष्ठानत्वात्”

इति (च० शा० ६ अ०) ।

सुश्रुते तु—

“गर्भस्य हि सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः”

इति (सु० शा० ३ अ०) ।

अनयोश्च मतयोरतिस्फुटविरोधदर्शनादनुमीयते चरकोक्तोऽयं शौनकः सुश्रुतो-
क्तशौनकाद्भिन्न एव स्यादिति । एवञ्च चरके क्वाचित्को “मद्रशौनकः” इति पाठः
साधीयान् प्रतिभाति, विरोधपरिहारसम्भवात् । तथा स्थिते च मद्रशौनकतन्त्रं
पृथगेवोन्नेयम् ।

डल्लनेन तु मद्रशौनक इति संज्ञया किञ्चित्तन्त्रं निरदेशि । तत्र चेत् ‘मद्र-
शौनक’ इति युक्ततरः पाठः कल्प्यते, तर्हि चरकीयपाठेन सुवचा सङ्गतिः ।
डल्लनकृतपाठोद्धारस्तु यथा—

“तथाच मद्रशौनकः,

त्वङ्मांससंश्रितो वायुस्त्वग्गृहाहेनैव शाम्यति ।

मांसे दग्धे हि शाम्यन्ति सिरास्त्राण्यवस्थिसन्धिजाः ॥”

इति (सु० सूत्र० १२ अ०) ।

किञ्चैवं पूर्वोक्तेन डल्लनवचसा शालाक्यतन्त्रकारेषु गणनाहेंऽपि शौनके, शौनक-
तन्त्रं न केवलं शालाक्यमात्रपरं, किन्त्वतिविस्तृतं शारीरभेषजकल्पनादिवर्णन-

१ । मद्रदेशीयः शौनको मद्रशौनकः । क्वचित्तु ‘मद्रशौनक’ इत्यपि पाठः ।

परायणश्च प्रतिभाति, सुश्रुतप्रतिसंस्कर्त्ता चक्रपाणिना च समुद्धृतेभ्यः पाठेभ्यस्तथा प्रतीतेः । मद्रशौनकतन्त्रन्तु शल्यतन्त्रप्रधानमासीदिति उद्धृतपाठदर्शनान् सम्भाव्यते ।

यत्तु केचित्—आथर्वणशौनकसंहिताकारः शौनक एवासौ शौनकतन्त्रकार इति, तत्र ब्रूमः । अतिपुराणः खल्वथर्वणसंहिताकारः, नवीनश्च तदपेक्षयायं तन्त्रकारः शौनकः इति—“कठचरकालुक्”—इतिप्रासङ्गिकविचारसादृश्याद् भेद एवानयोः सम्भाव्यते । बहवः किलेह पुरा प्रादुर्भूतास्तुल्यनामान आचार्यास्तन्त्रकाराश्च ; तत्र नाममात्रसादृश्याद् न युज्यते परस्पराभेदस्वीकारः परीक्षकाणामिति ।

२९ । करालतन्त्रम् ।—करालश्चायं करालभट्टसंज्ञया डल्लनेन व्यपदिष्टः । स चासौ ऋषिर्वाऽनुषिर्वेति न शक्यं निश्चयेन वक्तुम्, यतो भट्टान्तपदव्याऽनुषिरेवासौ स्यादिति कैश्चित् शङ्क्यते । तथापि भृशं प्राचीनोऽयं तन्त्रकार इति नात्र संशयः, ‘डल्लनश्रीकण्ठादिनिर्देशात् ।

तत्र श्रीकण्ठो यथा -

“यदाह करालः—

कूणितं खरवर्त्माक्षि कृच्छ्रोन्मीलाविलेक्षणम् ।

सदाहं सासृजा वाताच्छुष्कापाकान्वितं वदेत् ॥”

इति (निदानटीकायां नेत्ररोगे) ।

३० । चक्षुष्यतन्त्रम् ।—केचित्तु चक्षुष्येतन्त्रमिति संज्ञान्तरमस्याहुः । एतत्तन्त्रप्रमाणञ्च यथा—

निदानटीकायां श्रीकण्ठः,

चक्षुष्योऽप्याह—

स्त्रीप्रसङ्गादभीघातादथवा देहकर्मणा ।

क्षिप्रं संजायते कृच्छ्रः शिरोरोगः क्षयात्मकः ।

वातपित्तात्मकं लिङ्गं व्यामिश्रं तत्र लक्ष्येत् ॥”

इति (शिरोरोगाधिकारे) ।

३१ । कृष्णात्रेयतन्त्रम् ।—कृष्णात्रेयश्च पुनर्वसुरात्रेयश्चेत्येक एवेति केचित् । तत्र । कृष्णात्रेयस्य शालाक्यतन्त्रकारत्वेन पृथक् प्रसिद्धेः । तथाहि सिद्धयोगव्याख्याने (कवलाधिकारे) श्रीकण्ठः—

१ । डल्लननिर्देशस्तु उत्तरतन्त्रटीकारम्भे द्रष्टव्यः ।

“शालाकिभिस्तु प्रतिदोषं पठितानि द्रव्याणि । तथाच कृष्णात्रेयः” —
इत्यादि ।

शिवदासोऽपि चक्रसंग्रहटीकायां नस्याधिकारे समुद्धार कृष्णात्रेयतन्त्रीयं पाठम् ।
यथा—

“उक्तं हि कृष्णात्रेयेण,

सप्तवर्षमुपादाय नस्तः कर्म चतुर्विधम् ।” इति ।

तान्येतानि विदेहाधिपादिकृष्णात्रेयान्तपरमर्षिकृतानि दश शालाक्यतन्त्राणि
साम्प्रतमस्माभिर्लब्धाभिज्ञानानि ।

अथ भूतविद्यातन्त्राणि

अथेदं भूतविद्याख्यमायुर्वेदाङ्गं कदाचिदतिप्रसिद्धमपि सम्प्रति चिराय विलुप्तमेव ।
तथा चेदानीं भूतविद्यातन्त्राणां नामान्यपि न लभ्यन्ते, किमुत ग्रन्थाः ?

अस्ति त्वायुर्वेदे लभ्यमानेषु निबन्धेषु भूतविद्यावीजमद्यापि ; तद् यथा—

(१) सुश्रुते अमानुषप्रतिषेधाध्याये (उत्तर० ६ अ०) ;

(२) चरके उन्मादचिकित्सिते (चिकि० ६ अ०) ।

(३) वाग्भटे भूतविज्ञानीय-भूतप्रतिषेधाख्ययोरध्याययोः

(उत्तर० ४, ५ अ०) । इति दिक् ।

किञ्च सुश्रुत-वाग्भटयोः पृथग् भूतविद्याभिधानेऽपि, चरकेण भूतविद्याया
उन्मादाधिकार एवाऽन्तर्भावः सम्पादित इत्यवधेयम् । यथा च तत्तत्प्रसङ्ग-
व्याख्याने सहस्राधिकवर्षपुराणैर्व्याख्यातृभिरपि क्वचिन्नोद्धृतानि कस्यापि भूतविद्या-
तन्त्रस्य प्रमाणानि, तथा तर्क्यामो बहुतिथः किल कालो व्यतीतो भूतविद्या-
तन्त्राणां विलुप्तानामिति । तथापि पौराणिकयुगेषु नाभूत् सर्वथा भूतविद्या-
विलोप इत्यग्नि-गरुडादिपुराणेषु तत्प्रसङ्गविस्तरस्य दर्शनात् सम्भावयामः । बाल-
प्रहादिचिकित्सायाश्च भूतविद्यायामेवान्तर्भावः सुकरः । तथापि तस्याः पृथग्
बालतन्त्रे (कौमारभृत्ये) वर्णनादनुमीयते—चरकानुसृतमार्गेण मानसरोगाधिकार
एवेयं भूतविद्येति ।

१ । वयन्तु आथर्वणतन्त्रमिदं वेदनिर्दिष्टाथर्वमहर्षिणैव प्रणीतं तन्त्रमित्यत्र संशयानास्तर्क-
यामः—अनेके किलासन् युगे युगे वशिष्ठविश्वामित्राथर्वादिनामधरा महर्षयः, न च वेदनिर्दिष्टस्यो
वशिष्ठविश्वामित्रादिस्यो रामायण-महाभारतादिनिर्दिष्टानां तत्तदाख्यमुनीनामभेदः सम्भाव्यते, तुल्यनोम्ना
लोके बाहुल्येन सम्भवात् तादृशकल्पनाया अन्यायत्वात् ।

बृद्धास्त्वाहुः—आथर्वणतन्त्रमिति अथर्वाख्यमहर्षिप्रणीतमभूत् कदाचित् प्रसिद्धं भूतविद्यातन्त्रम् पृथगेव, अथर्वाख्यश्चासौ महर्षिरथर्ववेदनिर्दिष्टः इति । तदेतन्मतं किंवदन्तीमात्रमूलमित्यलमस्य बहुविचारेण ।

अथ कौमारभृत्यतन्त्राणि

कौमारभृत्यतन्त्रकारेषु जीवक-पार्वतक-बन्धकानां संज्ञाः उल्लेखेन निर्दिष्टाः सौश्रुतोत्तरतन्त्रव्याख्यानारम्भे । एवञ्च —

३२ । जीवकतन्त्रम्,

३३ । पार्वतकतन्त्रम्,

३४ । बन्धकतन्त्रञ्चेति तन्त्रत्रयं पूर्वमभूत् प्रसिद्धमित्यनुमीयते ।

तत्प्रमाणानि तु नास्माभिरपि लब्धानि । जीवकादयश्च बौद्धाचार्या इति चिरन्तनी प्रसिद्धिः ।

एतेषु च जीवकादिषु जीवको नाम बौद्धभिषग् ‘जीवककौमारभञ्च’ (कौमार-भृत्यः) इति संज्ञया बौद्धेतिहासेषु प्रसिद्धः । स च सुप्रथितनाम्नो विम्बिसाराख्य-बौद्धनृपतेर्भगवतस्तथागतस्य च चिकित्सको, भिक्षोरात्रेयस्य च शिष्य इति बौद्धेति-वृत्तविदां प्रवादः । भिक्षुरात्रेयश्च चरके निर्दिष्ट इति केचित् ।

१ । “कौमारभञ्च” इति तु ‘कौमारभृत्य’शब्दस्य पालिभाषारूपम् ।

२ । Cf “When Jivaka, surnamed Komaravaccha, had reached the years of discretion, he went to Takshasila to study Medicine under a renowned professor. After seven years of study, he was perfectly skilled in the Art and was dismissed as such by his teacher. In course of time, the young physician had occasion to show his eminent skill. He cured Pradyota the Cruel, king of Ujjayini, as well as Bimbisara who appointed him to be his physician. On a certain day, Buddha was troubled with constipation, Jivaka was called” etc. etc. (Kern’s manual of Buddhism, P. 30). Also see बुद्धदेव by Mahamahopadhyaya Satish Ch. Bidyabhusan, pp. 220—223 and 166—170, and It-Sing’s Record of Buddhistic Practices, P. 128.

३ । चरके तु वशिष्ठविश्वामित्रभरद्वाजात्रेयादीनां भिक्षोरात्रेयस्य च हिमवत्सानी सम्मेलनं प्रतिपादितं, तथात्रैषां तुल्यकालिकता स्यात् ! तथापि जीवकगुरोर्भिक्षोरात्रेयस्य चरकोक्तात्रेयभिक्षोर्भेद एव सम्भाव्यते । पुनर्वसुरात्रेयस्त्वश्विनेशादिगुरुः सर्वथैव मित्रः । अन्ये तु गम्भीरदंशिनः चरकोक्त-मृषिसंघं भोजप्रबन्धोक्तकविसंघवत् कारुणिकमाहुः ।

यत्तु कुमारतन्त्रमिति भानुमत्याख्यसुश्रुतटीकायां निर्दिष्टं चक्रपाणिना,—

“यदुक्तं कुमारतन्त्रे—

कर्णव्यधे कृते वालो न ग्रहैरभिभूयते ।

भूष्यतेऽस्य मुखं तस्मात् कार्यस्तत्कर्णयोर्व्यधः ॥”

(सु० सू० १६ अ० व्याख्याने)

इति पाठोद्धारपूर्वकम् ; तत् केन रचितं कुमारतन्त्रमिति न शक्यं निर्णेतुम् ।

३५ । हिरण्याक्षतन्त्रमिति प्रसिद्धमपरञ्चासीत् कुमारतन्त्रमिति सम्भाव्यते । तत्प्रमाणञ्च श्रीकण्ठेनोद्धृतं निदाने वालरोगव्याख्याने, यथा—

“हिरण्याक्षेऽप्युक्तम्—

संसाव-दाह-पाकाद्यैश्चितः स्फोटैर्भयान्वितः ।

स्रस्ताङ्गो विस्रगन्धिः स्यात् शकुन्या पीडितः शिशुः ॥” इति ।

कौमारभृत्यप्रसङ्गश्च सुश्रुते उत्तरतन्त्रे (२७ तः—३८) द्वादशभिरध्यायैर्वर्णितः । तंथाचानुमीयते सुमहदङ्गमेतदायुर्वेदस्य सम्प्रति सर्वथा प्रनष्टप्रायमिति ।

इदञ्चात्रावधेयम् । “कौमारभृत्यं नाम कुमारभरण-धात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम्”—इति सुश्रुतः । प्रसूतितन्त्रस्य गर्भिण्युपचारादिप्रयोजनकस्य तु नात्रान्तर्भावः । तस्य हि वैद्यके शारीरएवान्तर्भावः, शल्यतन्त्रे च मूढगर्भचिकित्सादेः । एवञ्च सर्वथा कौमारभृत्यात् पृथगेव प्रसूतितन्त्रं (Midwifery) मन्तव्यम् । स्त्रीरोगास्तु केचित् कौमारभृत्यान्तर्गता एव, सौश्रुतोत्तरतन्त्रीयविभागदर्शनात् । तत्र हि योनिव्यापत्प्रतिषेधाध्यायान्ते दृश्यते पाठः—“इति सुश्रुताचार्यविरचिते आयुर्वेदशास्त्रे उत्तरतन्त्रे कौमारभृत्यं समाप्तम्”—इति

[अथ अगदतन्त्राणि] ।

निखिलस्थावरजङ्गमविषचिकित्सा (Toxicology) खल्विह अगदतन्त्रमित्युच्यते । तच्च सम्प्रति सौश्रुतकल्पस्थाने चरकचिकित्सास्थानीयत्रयोविंशाध्याये तन्मूलकनिबन्धेषु च परिसमाप्यते । विलुप्तप्रायाः पुनरिदानीं प्राचीनाः संहितास्तद्विषयाः । तास्वेता अस्माभिर्लब्धपरिचयाः—

३६ । काश्यपसंहिता* । काश्यपो नामर्षिर्महाराजपरीक्षितश्चिकि-

* बृद्धकाश्यपतन्त्रमिति कश्चिद् विपुलो ग्रन्थः अस्मत्सुहृदा प० यादवजी त्रिकमजी महाशयेनाधुना नेपालदेशे आविष्कृतः सम्प्रति प्राकाश्यं नीयते, स तु पृथगेव प्रतिभाति ।

त्सार्थमागतो मध्येपथि प्रतिनिवर्तितश्च तक्षकेणेति प्रसिद्धा महाभारतीया वार्त्ता ।
काश्यपसंहितोद्धृतानि प्रमाणानि च डल्लन-चक्रपाणि-श्रीकण्ठेः प्रदर्शितानि ।

तत्र डल्लनः—

“ननु काश्यपेन मुनिना सिरादिष्वग्निर्म प्रतिषिद्धं, तथाच तद्वचनम् —

‘न सिरास्त्रायुसन्ध्यस्थिमर्मस्वपि कथञ्चन ।

दंशस्योत्कर्त्तनं काश्य दाहो वा भिषजाऽग्निना ।’

—इति” (सु० सूत्र० १२ अ० व्याख्याने)

चक्रपाणिश्च—

“उक्तं हि काश्यपीये—

भूयो वर्षति पर्जन्यो गङ्गाया दक्षिणे जने ।

तत्र वर्षाप्रवृद्धाख्यौ ऋतू तेषां प्रकल्पितौ ।”

अथ श्रीकण्ठोऽपि—

“यदाह वृद्धकाश्यपः—

संयोगजं च द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते ।

गरः स्यादविषं तत्र सविषं कृत्रिमं मतम् ॥”

इति (निदानटीकायां विषाधिकारे)

केचित्तु काश्यपीयं तन्त्रं कायचिकित्सापरं मन्यन्ते, अपरे च शल्यतन्त्रपरम् ।
अस्माभिस्तु महाभारतसंवादात्, “दंशस्योत्कर्त्तनं”मित्यादि बाहुल्येन विषतन्त्रीय-
पाठोद्धारदर्शनाद्, वृद्धवैद्यप्रसिद्धेश्च अगदतन्त्रविषयाऽसौ संहितेति निरणायि ।

३७ । अलम्बायनसंहिता ।—तत्प्रमाणञ्च यथा निदानटीकायां
विषाधिकारे श्रीकण्ठः—

“तदुक्तमलम्बायने—

नैति रक्तं क्षताद् यस्य लताघाते न राजिकाः ।

न लोमहर्षः शीतान्निर्वर्जयेत्तं विषादितम् ॥ इति ।”

३८ । उशनःसंहिता । उशनसा कृतेयमगदतन्त्रीया संहितेति वृद्ध-
वैद्यप्रसिद्धिः । उशनःपथानुसारिणा कौटिल्येन च कृतेयशस्त्रे विषादिप्रतीकारोप-
देशस्य आशुमृतकपरीक्षायाश्च दर्शनादनुमीयतेऽस्याः संहितायाः पूर्वसत्ता । (दृश्यतां
कौटिलीयार्थशास्त्रस्य कण्टकशोधनाधिकरणम्) ।

१ । आशुमृतकपरीक्षा हि साम्प्रतिकानां Post Mortem Examination इति
प्रसिद्धम् । एवञ्च नव्यानां व्यवहारायुर्वेद- (Medical Jurisprudence) संज्ञमायुर्वेदाङ्गमुशनः-
संहितादीनामङ्गमभूदिति । २ । एष ग्रन्थः सम्प्रति दक्षिणापथे (Mysore) मुद्रितः प्रकाशितश्च ।

३९। सनकसंहिता । (शौनकसंहिता वा ?)— सेयमगदतन्त्रविषया-
ऽतिप्राचीना संहिता, यां स्वभाषयाऽनूदितवन्तः पुरा यवनाः । तत्प्रमाणानि च भूम्ना
समुद्धृतानि डा० प्रफुल्लचन्द्ररायमहाभागैः स्वकीयरसायनशास्त्रेतिहासे, दर्शितञ्च तत्र
तैरेव चरकसुश्रुतोद्धृतविषाधिकारप्रसङ्गानामेतत्संहितानुवादेन यावनभाषास्थेन
सादृश्यम् । (तच्च मुलराख्येन पाश्चात्यविदुषाऽऽविष्कृतम्) ।

४०। लाट्यायनसंहिता । तत्प्रमाणञ्च डल्लनेन समुद्धृतं यथा—
“अथ लाट्यायनोक्तः सामान्यज्ञानोपायो लिख्यते—

कटुभिर्विन्दुलेखाभिः पक्षैः पादैर्मुखैर्नखैः ।

शूकैः कण्टक लांगूलैः संश्लिष्टैः पक्षरोमभिः ॥”

स्वनैः प्रमाणैः संस्थानैर्लिङ्गैश्चापि शरीरगैः ।

विषवीर्यैश्च कीटानां रूपज्ञानं विभाव्यते ॥”

(इति सौश्रुतकल्पस्थानव्याख्याने) ।

तदेवमगदतन्त्रीयं संहिताचतुष्टयमस्माभिर्लब्धाभिज्ञानमिदानीं सर्वथा प्रनष्टं
प्रतिभाति ।

अथ रसायनतन्त्राणि ।

अथ रसायनाख्यमिदमायुर्वेदाङ्गं जराव्याधिविनाशन-भेषजप्रयोगक्रमोपदेश-
परायणमार्यचिकित्साशास्त्र एव दृश्यते, नान्यत्र । तथाचाऽस्याङ्गस्याऽतिविलक्षणा
समुन्नतिरभूदायुर्वेदमध्यन्दिने, तदनन्तरं बौद्धयुगे चेति प्रागवोचाम । केचित् पुनराहुः
आर्षा हि रसायनोपदेशाः प्रायो वनौषधिप्रयोगपराः, क्वचिदेव लोहादिप्रयोगपरा वेति
कृत्वा रसतन्त्राणि सर्वथाऽयुर्वेदतः पृथग्भूतानि । तन्न समञ्जसम् । रसायनाख्य-
स्याङ्गस्य सर्वथा वैद्यकाङ्गतयैव प्रसिद्धेः । “यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायन-
मिति” लक्षणव्याप्तेश्च । दृश्यते च सुश्रुते अन्नपानविध्यध्याये लोहानां गुणवर्णनम्,
तत्रैव कुष्ठप्रमेहादिचिकित्सिते लौह-शिलाजतु-माक्षिकधात्वादिप्रयोगोपदेशश्च । अथ
चरकेऽपि लोहानां रसस्य च दृश्यते क्वचिद् व्यवहारः । एवञ्च आर्षयुगेपु लोहानां

२। Vide Dr. P. C. Roy's History of Hindu Chemistry, Vol. I
(Introduction) CXII. But “Asankar” (Probably a corrupt form of
अगदङ्कर) a book on poisons by Sanaq the Indian can not be the
same as Astanga of Vagbhata as supposed by Dr. Roy. सेयं
सनकसंहितैव पूर्वोक्ता ।

प्रयोगेषु सन्स्वपि बौद्धयुगारम्भे रसादिपार्थिवभेषजोपचारबाहुल्यादतिपुष्टं रसायनाङ्गं पृथगिव सिद्धतन्त्रमिति प्रतीयते स्म, न तु वस्तुतः पृथगेवाभूदित्यवसेयम् । नहि व्यायामविशेषादुपचितमङ्गमनङ्गं पृथगङ्गं वा नाम भवति ।

द्विविधानि च श्रूयन्ते रसायनतन्त्राणि—आर्षाणि अनार्षाणि चेति । तत्रार्ष-तन्त्रेण्वेतान्यस्माभिर्लब्धाभिज्ञानानि—

४१ । पातञ्जलतन्त्रम् । तदेतत् पतञ्जलिमहर्षिप्रणीतं तन्त्रं बहुधा व्याख्यानकारैरुद्धृतपाठम् । तत्र शिवदासोद्धृतं किञ्चित् प्रमाणं दर्शितपूर्वम् (६ पृष्ठे), अन्यानि चक्रदत्तटीकायां रसायनाधिकारव्याख्याने द्रष्टव्यानि ।

४२ । व्याडितन्त्रम् ।

४२ । वशिष्टतन्त्रम् ।

४४ । माण्डव्यतन्त्रम् । तदेतत्तन्त्रत्रयं रसतान्त्रिकाणामाश्रयभूत-मतिप्राचीनमिति बृहद्वैद्यप्रसिद्धिः । व्याडि-माण्डव्ययोरभिज्ञानं रसरत्नसमुच्चयकार-लिखितायां रसाचार्यसूच्यामधुनाऽपि द्रष्टव्यम् । वशिष्ट-माण्डव्ययोस्तन्त्रकारत्वं पुन-र्नागाज्जुनकृते रसरत्नाकरे दृश्यम् । यथा—

“शास्त्रं वशिष्ट-माण्डव्यं गुरुपाश्वे यथा श्रुतम् ।

तदहं संप्रवक्ष्यामि साधनञ्च यथाविधि ॥”

४५ । नागाज्जुनतन्त्रम् । नाम नागाज्जुनाख्येन केनचिन्मुनिना बौद्धा-चार्येण वा प्रणीतं रसतन्त्रम् । चक्रपाणिस्त्वाह—

“नागाज्जुनो मुनीन्द्रः शशास यल्लोहशास्त्रमतिगहनम् ।”

इत्यादि (चक्रसंप्रहे रसायनाधिकारे) ।

एतत्प्रामाण्यबलेन नागाज्जुनाख्यो लोहशास्त्रप्रवक्तृसौ मुनिरिति केचित् । अपरे तु चक्रपाणिना नेत्ररोगाधिकारे श्रीनागाज्जुनाञ्जनप्रसङ्गे—

“नागाज्जुनेन लिखिता स्तस्मै पाटलिपुत्रके”—

इत्येवमादिवाक्तादर्शनात्, पाटलिपुत्रस्य बौद्धमहानगरतया प्रसिद्धेः, नागाज्जुनस्य बौद्धाचार्यतया सुविज्ञातत्वाच्च बौद्धनागाज्जुनमेवैनमाहुः ।

१ । एतद्व्यन्थांशश्च डा० प्रफुल्लचन्द्ररायैः स्वग्रन्थसमाप्तौ उद्धृतः (Vide Dr. Roy's History of Hindu Chemistry, Vol. II. Sanskrit Texts, P. 14).

सम्भावयन्ति चान्ये नागार्जुनकृतं रसरत्नाकराख्यं ग्रन्थमेव नागार्जुनतन्त्र-
मिति ।

सुश्रुतप्रतिसंस्कृतं विचारे चास्माभिर्नागार्जुनप्रसङ्गो वर्णितपूर्वः ।

कक्षपुटतन्त्रम्, आरोग्यमञ्जरी चेति ग्रन्थद्वयं नागार्जुनकृतमेवेति
प्रसिद्धिः । आरोग्यमञ्जरीप्रमाणन्तु विजयेन दर्शितं निदानटीकायाम् । यथा—

“उद्गारेऽपि विशुद्धतामुपगते कांक्षा न भक्तादिषु, स्निग्धत्वं वदनस्य सन्धिषु रुजां
कृत्वा शिरोगौरवम्” — इत्यादि — (अग्निमान्द्याधिकारे) ।

इयञ्च रसतन्त्राचार्याणां सूची रसरत्नसमुच्चयकारेण सूचिता सूचयत्यन्यानपि
रसतन्त्रकारान् —

“आदिमश्चन्द्रसेनश्च लङ्केशश्च विशारदः ।

कपाली मत्तमाण्डव्यौ भास्करः शूरसेनकः ।

रत्नघोषश्च शम्भुश्च तथाकौ नरवाहनः ।

इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिव्याडिरेव च ।

नागार्जुनः सुरानन्दो नागबुद्धिर्यशोधनः ।

चण्डः कपालिको ब्रह्मा गोविन्दो लम्पको हरिः ।

सप्तविंशतिसंख्याका रससिद्धिप्रदायकाः ।

रसाङ्कुशो भैरवश्च नन्दी स्वच्छन्दभैरवः ।

मन्थानभैरवश्चैव काकचण्डीश्वरस्तथा ।

वामदेव ऋष्यशृङ्गः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ।

रसेन्द्रतिलको योगी भालुकिर्मलयाह्वयः ।

महादेवो नरेन्द्रश्च वासुदेवो हरीश्वरः ।

एतेषां क्रियतेऽन्येषां तन्त्राण्यालोच्य संग्रहः ।” इति*

अथ वाजीकरणतन्त्राणि ।

अथ वाजीकरणं नाम “अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यायनं प्रहर्षजननाथ”
शास्त्रमायुर्वेदचरमाङ्गम् । वाजीकरणतन्त्रेषु च साम्प्रतं नावशिष्यते प्राचीनः संहिता-
लेशोऽपि । विलुप्ताश्च नूनमखिला आर्षसंहिताः सहस्रवर्षतोऽपि प्राक्, यतः पुराणटीका-

* एष पाठोऽस्मदीयपुस्तकालयस्थाद्वस्तुलिखितपुस्तकाद् गृहीतः । मुद्रितपुस्तके तु
बहुधा दृश्यानि पाठान्तराणि ।

कृद्भिरपि नोद्धृतानि तन्प्रमाणानि । न चैतावता सर्वथा तासामभावः शङ्कनीयः । दृश्यन्ते हि वात्स्यायनीये कामसूत्रे औपनिषदिकाधिकारे नानाविधा वाजीकरणा योगाः प्राचीनाः, श्रूयते च तत्रैव—

“महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच । तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरौद्दालिकः श्वेतकेतुः संचिक्षेप । तदेव तु पुनरध्यर्द्धेनाऽध्यायशतेन साधारणसांप्रयोगिक-कन्यासंयुक्तक भार्याधिकारिक-पारदारिक-वैशिकौपनिषदिकैः सप्तभिरधिकरणैर्वाभ्रव्यः पाञ्चालः संचिक्षेप । तस्य षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगादुक्तकः पृथक् चकार । तन्प्रसङ्गाच्चापरायणः साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच । सुवर्णनाभः साम्प्रयोगिकम् । घोटकमुखः कन्यासंप्रयुक्तकम् । गोमर्दो भार्याधिकारिकम् । गोणिकापुत्रः पारदारिकम् । कुचुमार औपनिषदिकमिति ।”

एवञ्चानुमीयते पुरा कामसूत्रकारैरेव ऋषिभिः प्रणीतं कामशास्त्राङ्गभूत-मौपनिषदिकाख्यमेतत्तन्त्रमायुर्वेदे वाजीकरणतन्त्रमिति संज्ञया पृथक् प्रतिष्ठापयामीति । एवञ्च वात्स्यायननिर्दिष्टमिदम्—

४६ । कुचुमारतन्त्रं—नाम प्राचीनं वाजीकरणतन्त्रं कदाचित् सुप्रसिद्ध-मभूदिति शक्यमसंशयं वक्तुम् । किञ्चैवमौद्दालकिवाभ्रव्यकृतयोरतिमहतोः काम-शास्त्रयोरौपनिषदिकाधिकारद्वयमपि पुराणं वाजीकरणतन्त्रद्वयमेवेत्यपि सुवचम् ।

वात्स्यायनश्चासौ महाराजचन्द्रगुप्तस्याचार्यभूतः कौटिल्य एवेति केचित् । तदाख्यो मुनिरित्यपरे । उभयथाऽपि द्विसहस्राधिकवर्षपुराणत्वमस्य न व्याहन्यते । तथाचामूनि वात्स्यायनोद्दिष्टानि औद्दालकि-वाभ्रव्य-कुचुमारादिकृतानि तन्त्राणि ततोऽपि भृशं प्राचीनतराणीति निर्विवादः सिद्धान्तः ।

वाजीकरणतन्त्रावशेषस्तु सम्प्रति चरके चिकित्सास्थानस्य द्वितीयाध्याये सौश्रुत-चिकित्सास्थानस्य षड्विंशतितमाध्याये च दृश्यते इति दिक् ।

गजाश्वचिकित्सितादिविषये पुनरभूवन्नैकसंख्याः प्राचीनाः संहिताः, तास्तु—

(१) **शालिहोत्रसंहिता**—अश्वायुर्वेदविषया । सेयमिदानीं दुर्लभाऽपि सुप्रसिद्धैव । सा च पुरा आरवदेशीयैः स्वभाषयाऽनूदिता “शालाटोर” इति संज्ञया प्रख्यापिता बभूवेति प्रसिद्धिः पुरावृत्तविदाम् ।

नकुलकृतं जयदत्तसूरिकृतश्चाश्ववैद्यकमिदानीं वङ्गदेशीयैः सियाटिक-समाजेन प्रकाशितं प्रसिद्धमेव । तत्र नकुलकृते ग्रन्थे दृश्यते—

“जयति स पाण्डवनाथो धर्मसनाथो युधिष्ठिरो नृपतिः ।

भीमार्जुनसहदेवास्तदनुचरो वाजिशस्त्रतत्त्वज्ञः ॥

दृष्ट्वा सम्यङ् नकुलः शास्त्रं कृत्स्नं च शालिहोत्रीयम् ।

ब्रूते शास्त्रार्थमन्यच्छास्त्रं कृत्वा समासेन ॥” इति ।

(२) **पालकाप्यसंहिता** — गजायुर्वेदविषयः सुमहान् ग्रन्थः । स चेदानीं पुण्यपत्तनस्थानन्दाश्रमाध्यक्षैर्मुद्रितः । तत्र अङ्गाधिपरोमपादनृपतिं प्रति भगवता पालकाप्यमुनिना समुपदिष्टं कृत्स्नं गजायुर्वेदशास्त्रम् ।

(३) **गोतमसंहिता** — गजायुर्वेदविषया । तदुद्धृतपाठाः कचिदुपलभ्यन्ते, ग्रन्थस्तु विलुप्तप्राय एव । तदेतदद्यापि पट्चत्वारिंशत्संख्यानां विलुप्तार्पग्रन्थानामभिज्ञान-सूचितमष्टाङ्गमानुषचिकित्सासमन्वितमतिप्रौढिमुपागतं शास्त्रमायुर्वेदाख्यमर्णव-वदगाधमिदानीं दुर्दैवागस्त्यचुलुकीकृतं कस्य न शोकमावहति ? को नु वा समर्थः प्राचीनगौरवमनुस्मरन् पुनस्तदुद्धारपूरणार्थं न प्रयतेत ?

वभूव च किलास्मिन्नेव समये वैद्यकस्य बहुलप्रचारो दक्षिणापथेऽपि प्राधान्यतो द्राविडभाषाद्वारेण । द्राविडभाषाश्च चतस्र एव मुख्याः—आन्ध्री (तैलङ्गी), तामिली, कार्णाटी, केरली (मलयाली) चेति । तासु ‘आन्ध्र’भाषालिखिताः संग्रहग्रन्थाः सन्त्यनेके ‘केरल’भाषालिखिताश्च । ‘तामिली’भाषालिखितास्तु न केवलं लभ्यन्ते संग्रहग्रन्थाः, किन्तु मूलग्रन्था अपि अगस्त्यादिमहर्षिप्रणीताः । सिद्धतन्त्रीयग्रन्थाश्च प्राधान्यतस्तद्रभाषालिखिता एव दक्षिणापथे प्रसिद्धाः ।

श्रूयते चास्मिन् विषये किंवदन्ती यद् भरद्वाजात्रेयप्रमुखा महर्षयो यथा स्वत्वार्यावर्ते वैद्यकप्रचाराय संहिता रचयाम्बभूवुस्तथैव दक्षिणापथे अगस्त्य-पुलह-पुलस्त्य-लोमश-मत्स्यादिभिरारचिता बहवः संहिताग्रन्थाः संस्कृतभाषया, द्राविडभाषया च । तत्र संस्कृतग्रन्थकर्तृणामाचार्याणां सम्प्रदायः—“वनसम्प्रदाय” इति, द्राविडभाषाग्रन्थकर्तृणाञ्च सम्प्रदायः “तेन-सम्प्रदाय” इति प्रसिद्धिं लेभे । तेषाञ्च साम्प्रदायिकानां केचन ग्रन्थाः वर्षसहस्रद्वयीतोऽपि पुराणतरा इति दक्षिणापथीयभिषजं प्रवादः ।

एषा च उभयसम्प्रदायप्रवर्तकानामाचार्याणां नामसूची या वैद्यलोकदुर्भाग्यवशादकाले दिवंगतैरस्मत्परममित्रैर्वैद्यरत्नगोपालाचलैर्महाभागैरस्मदुपकाराय संगृहीता । यथा—

अगस्त्यः, पुलस्त्यः, पुलहः, प्युहमुनिः, वैखरिः, तिरुवान्, भोगरः, लोमशः, पुलिप्पाणिः, तेरप्परः, हस्तचारिः, विशालः, विभाण्डकः, वाग्बलिः, नञ्जराजः, मृगशर्मा, सुरेन्द्र-मुनिः, देवेन्द्रमुनिः, वैदर्भनरः, नृसिंहभट्टः, मङ्गराजः, अभिनवचन्द्रः, उपादित्यः, पूज्यपादः इति । संप्रहकाराः सिद्धतान्त्रिकाश्चान्ये यथा—वैखरिमुम्, शिरट्टनमुम्, जेविमुम्, पेव्वान्तोमुम्, तेक्कादुमुम्, आलत्तुरुनम्बिः, विज्ञानेश्वरः, वसवराजः, गङ्गाधरः, मन्थानभैरवः, त्रिमल्लभट्टः, नागनाथः, मङ्गवगिरिसूरिः, श्रीनाथपण्डितः, श्रीकण्ठपण्डितः, वल्लभेन्द्रः—इत्यादयः । एषु च वसवराजीयसंग्रहो दक्षिणापथेऽनीव प्रसिद्धः संप्रहग्रन्थः संस्कृतभाषाविरचितः । मन्थानभैरवकृत आनन्दकन्दाख्यग्रन्थश्च सिंहल (लङ्का)-द्वीपे । अस्ति चापरः शोभननिर्माणः संप्रहग्रन्थो योगरत्नाकरो नाम ग्रन्थकर्तृनामविरहितः, स सिंहलीय-मयूरपादभिश्चुरचितः षट्शतवर्षपुराणश्चेति प्रत्ययः सिंहलवासिनां केषाञ्चिद् भिषजाम् । प्रसिद्धञ्चापरं विशालं वैद्यकग्रन्थद्वयं सिंहले सारार्थसंग्रह-भैषज्यमंजूपाख्यम् ।

अगदतन्त्रीयाश्च केचन रमणीया ग्रन्था मुद्रिताऽमुद्रिताः केरलेषु (पश्चिमार्णवकूले कोचिन्-त्रावांकोरादिप्रदेशेषु) वर्तन्ते । तेषां केचनाऽस्माभिर्दृष्टाः । सत्यपि च तत्र वाग्भटीयस्य अष्टाङ्गहृदयस्य बहुलप्रचारे केरलभाषारचिताः संस्कृतमिश्रकेरलभाषा- (“मणिप्रवाल”भाषा)-रचिताश्च अगदतन्त्रादिग्रन्था असंख्यप्रायाः । पठ्यन्ते च केरलीयैरगदतन्त्रमधिकृत्येयं ग्रन्थसूची—

“लक्ष्णामृतमुडुशमुत्पलं हरमेखला ।

नारायणीयमष्टाङ्गहृदयं कालवन्नकम् ॥” इति ।

तेषु लक्ष्णामृतं नारायणीयमष्टाङ्गहृदयञ्च संस्कृतभाषारचितं मुद्रितञ्च । हरमेखला त्रावांकोरराजकीय-ग्रन्थागारे वर्तते । अपराणि तु मृग्याणि । कालवञ्चनं, ज्योत्स्निका, प्रयोगसमुच्चयश्चेति केरलभाषारचितं ग्रन्थत्रयं विशेषेण विषतन्त्रीयचिकित्सोपयोगि ।

इदञ्चात्र प्रसङ्गे स्मर्तव्यम् । वङ्गसेनाख्येन केनचिद् भिषजा रचितस्य वङ्गसेन-संग्रहाख्यग्रन्थस्यान्ते लभ्यतेऽयं पाठः—

“अगस्त्यसंहितेयं प्राक् ख्याता मज्जनमतस्ततः ।

गदाधरगृहे जन्म लब्ध्वा मे प्रतिसंस्कृता ॥

वङ्गसेनेति नाम्नाऽसौ विख्यातस्तदनन्तरम् ।

ग्रन्थोऽयं सर्वसिद्धान्तसारः शीघ्रफलप्रदः ॥”

सत्यमेव “अगस्त्यसंहितेयं” न वेति तामिलभाषारचितामगस्त्यसंहितामधीत-

वन्तः सुधिय एव वक्तुमलम् । किञ्च परहितसंहिता-धन्वन्तरिविलास-वीरभट्टीय-वृषराजीय-खगेन्द्रमणिदर्पणाद्या अपि सन्त्यनेके रमणीयाः संस्कृतभाषारचिता आन्ध्र भाषारचिताश्च ग्रन्था दक्षिणापथे प्रसिद्धाः, येषां नामान्यपि अश्रुतचराणि उत्तराखण्ड-वास्तव्यैरित्यलमतिविस्तरेण !*

अथामुष्मिन्नायुर्वेदमध्यन्दिनसमये निखिलभूमण्डले भारतस्यैवासीदुज्ज्वल-ज्ञानालोकप्रकाशता, तदितरेषाञ्च देशानां सन्तमसाच्छन्नतेति सुविदितं पुरावृत्तविदाम् । तदानीञ्च आर्यावर्तवहिष्कृतैः कैश्चन ब्रात्यक्षत्रियैर्नादेशोपनिविष्टैः समुन्मेषिता

भारतीया ज्ञानालोकच्छटा तत्तद्देशेषु । क्रमशश्च परस्ताद्
आयुर्वेदमध्यन्दिने हीयमानेऽप्यार्षज्योतिषि नवाभ्युदितैर्वौद्धाचार्यैश्चिरन्तनार्प-
समग्रभूमण्डले ज्ञानाधिकारिभिर्नवीनधर्मप्रचारोत्सुकैः प्रचारिताऽभूदधिकाधिकं
आयुर्वेदस्य प्रचारः भारतीय ज्ञानसम्पद् दूराहूरतरेषु प्राच्यप्रतीच्यप्रदेशेषु ।
निखिलचिकित्सा- भारतिया एवञ्च क्रमात् परम्परया समुद्भासते स्म प्रतीच्याम् आरवदेशो
शास्त्रबीजता च । (Arabia), मिश्रदेशो (Egypt), ग्रीस-रोमाद्याश्चापरे

देशाः ; प्राच्यामुदीच्याञ्च जापानादिदेशाश्चीनाख्यो महादेशश्च, दक्षिणस्याञ्च यवद्वीपाद्याः^१ केचन द्वीपाः । ग्रीसदेशीयाश्च विद्वांसः पुरा समग्रस्य यूरोपखण्डस्य गुरुपदमधिरूढाः—इत्युरीकुर्वन्ति सर्व एव यूरोपीयाः । यथाच परम्परया साक्षाद्वा भारतशिष्या ग्रीसदेशीयास्तत्र बहुधा समुन्नेयानि प्रमाणानि । तेषु कानिचित् प्रदर्शयामः—

(१) ‘पोकक्’—इत्याख्येन पाश्चात्यपण्डितेन^२ शतशो दृष्टान्तप्रदर्शनपुरःसरं सम्यक् प्रतिपादितमेतद् यथा—न केवलं ग्रीसभाषा संस्कृतभाषातः समुद्भूता, किन्तु ग्रीसदेशीयानां नगर-दैवतनाम-कथावस्त्वादीन्यपि भारतीयनगरदैवतनामादीनां सर्वथाऽनुकारीणीति ।

* केरलेषु च अगदतन्तस्याद्यापि बहुलप्रचारोऽस्माभिः प्रलक्षीकृतः । विशेषतश्च सफला केरलीयानाम् ‘अष्टवैद्य’संज्ञया प्रसिद्धानां मिषजां सर्पविषचिकित्सा, आलर्कविषचिकित्सा च ।

१ । यथा विष्णुपुराणे—‘स (सगरः) तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेशान्यत्वमकारयत् । यवनान् मुण्डितशिरसः, अर्द्धमुण्डान् शकान्, प्रलम्बकेशान् पारदान्, पल्हवांश्च इमश्नुधरान् निःस्वाध्यायवपट्कारानेतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार’—इत्यादि । (विष्णुपुराणे ४ अंश ३ अ०) ।

२ । यवद्वीपवासिषु केचिदद्यापि आर्यधर्मीनुयायिन इति सम्प्रत्याविष्कृतं नाम । ३ । Vide Pocock’s India in Greece.

(२) पुरातनचित्रेषु ग्रीसरोमदेशीयानां वेशविन्यासः सर्वथा भारतीय-
वेशानुकार्येवाङ्कितः—इति च स्फुटं चक्षुष्मताम् ।

(३) अतिविशदञ्चान्यत्र प्रदर्शितमस्माभिर्यन्त्रिखिलान्यपीदानीन्तनानि
यूरोपीयशल्यतन्त्रोक्तयन्त्रशस्त्राणि (—किमुत तानि ग्रीसदेशीयानि !) आयुर्वेदोक्तयन्त्र-
शस्त्रैः प्रायेणाऽभिन्नरूपाणि । संवदन्ते च सर्वथा ग्रीसदेशीययन्त्रशस्त्राणां लक्षणान्यपि
स्वल्पतरलभ्यमानैरपि पुराणटीकाकारोद्धृतैर्यन्त्रशस्त्रलक्षणैः ।

(४) स्वीकृतञ्चेदं प्राचीनैतिहासिकैर्ग्रीसदेशीयैर्यद् भारत-मिश्रदेशादिलब्धैरेव
ज्ञानैरभून् ज्ञानिनः ‘पिथागोरस्’-‘हिपोक्रेटिसाद्या’ ग्रीसमिषगाचार्याः । मिश्रदेशश्च
आर्य-वर्वरजात्योर्मिश्रीभूतयोर्निवासात्तथासंज्ञ इति सम्भाव्यते ।

१ । मदीये “आयुर्वेदोक्त यन्त्रशस्त्रादि ओ पाश्चात्य सज्जरी” —इत्याख्ये वङ्गभाषामये
निबन्धे । निबन्धश्चायं बहुयन्त्रशस्त्रप्रतिकृतिसहितः कलिकातास्थसाहित्यसभया मुद्रितः ।

२ । Cf. “The Greeks themselves did not lay claim to the
honour—which is now often claimed for them by modern writers—
of originating culture generally or the Science of Medicine in parti-
cular. Nearchus and Arrian inform us that ‘the Grecian physicians
found no remedy against the bite of snakes but the Indians cured
those who happened to incur that misfortune. Arrian tells us that
the Greeks when indisposed applied to the Sophists (Brahmans),
who by wonderful and even more than human means cured whatever
would admit of cure, Dioscorides who lived in the first century A. D.
is the most copious author on the *Materia Medica* of the ancients
and Dr. Royle has in an exhaustive inquiry shown how much of
his *Materia Medica* was taken from the more ancient *Materia
Medica* of the Hindus. The same remark holds good with regard
to Theophrastus, who lived in the 3rd century B. C., while even
Ktesias who lived in the 5th century B. C., wrote an account of
India, which Dr. H. H. Wilson has shown contains notices of the
Natural products of India. But the chain of evidence is complete,
when Hippocrates, called ‘the father of medicine’ because he first
cultivated the subject as a science in Europe, is shown to have
borrowed his *Materia Medica* from the Hindus. We refer our
readers for evidence to Dr. Royle’s excellent essay. “It is to the

(५) वातपित्तकफशोणितानां सर्वदेहधारणहेतुता सर्वरोगकारणता^१ च दृश्यते ग्रीसदेशीयभिषग्विद्याग्रन्थेषु । मत्तच्चेदमतिपुराणं धन्वन्तरिसाम्प्रदायिकानाम् ।

(६) अलिक्सन्दराख्यश्च ग्रीसदेशीयसम्राट् दिग्विजयाय प्रस्थितो भारतं समागत्य सर्पदष्टचिकित्सार्थं भारतीयान् वैयानाजुहाव, विसिष्मिये च तन्नैपुण्यदर्शनेनेति सुप्रसिद्धा वार्त्ता^२ । समनन्तरञ्च टिसियस् मेगास्थिनिसाख्यौ ग्रीकभिषजौ भारतमध्यूपतुः ।

(७) नव्यैरपि बहुभिर्गम्भीरदर्शिभिरुत्कृतं^३ यद् भारतीयचिकित्साशास्त्रमेव निखिलचिकित्साशास्त्रमूलमिति ।

अथ चेदत्रापि विवदेरन् केचित् ग्रीसदेशत एवाविर्बभूव भारतीयज्ञानज्योति-
रित्यभिधानास्तर्हि सुखमिह मोदन्तां तादृशा आरूढशाखाच्छेदिनः ।

आरबदेशीयानाञ्च भारतीयज्ञानकणाधिकारिता अल्वरुण्याख्येन^४ प्राचीना-
ऽरव्यैतिहासिकेन सम्यक् स्वीकृता । सुप्रथिता चैयं चिरन्तनी वार्त्ता यद् “हरुण्
उल् रशीद्”—इत्याख्यस्य नरपतेः राज्याधिकारसमये ख्रीस्तीयाष्टमशतके आरब-
भाषयानूदितं ‘शरक्’ (चरक), ‘सस्रद्’ (सुश्रुत)—इत्याख्यं ग्रन्थद्वयम्, माधवीय-
निदानञ्च, अपरे च केचिद् ग्रन्था अगदतन्त्र-कौमारभृत्यादिविषयाः । श्रूयते च—

Hindus”, says Dr. Wise, “that we own the first system of medicine” (R. C. Dutt’s Ancient India Vol. II, p. 249—50). For the testi-
monies of Pythagoras, Herodotus &c. see Ibid, pp. 17-19. For the
debt of Hippocrates to India, also see Royle’s “Essay on the
Antiquity of Hindu Medicine”—p. 109.

१ । Cf. Dr. Allan Webb—“In the days of Hippocrates, the
elementary theory was the only one known in Greece. His views
and those which Pythagoras entertained of health and disease
precisely accord with Plato’s and the Hindu Sushruta’s” (Histori-
cal Relations of Ancient Hindu with Greek medicine. p. 9).

२ । Vide V. A. Smith’s Early History of India.

३ । e. g. Dr. Wise (Commentary on Hindu Medicine), Dr.
Royle, Dr. Allan Webb &c.

४ । Vide Dr. P. C. Roy’s Hindu Chemistry, vol. I, Introd.
Ch. VI which contains a full description of “The Indebtedness of
Arabians to India.”

आयुर्वेदस्य प्राचीनगौरवम्

४७

मङ्गनामा कश्चन भारतीयो भिषक् तमेव नृपतिं दारुणरोगमुक्तं विधाय तत्सदसि महतीं प्रतिष्ठां गतो वनोपधि विद्याविषयं कश्चन संस्कृतग्रन्थमारवभाषयाऽनूदितवानिति ।

यावनचिकित्सा चेदानीं यूनानीति तिब्बीति संज्ञया वा प्रसिद्धा । सेयं पुरा भारतादारवदेशं गता ततश्च पुनर्भारतविजयिभिर्महम्मदीयनृपतिभिर्भारते समानीतेति नात्र कस्यापि विमतिः । तत्र यावनचिकित्सायामायुर्वेदवीजान्यद्यपि दृश्यन्ते बहुशः । तथाह्यत्र स एव सौश्रुतमतानुसारी वातपित्तकफशोणितवादः, सैव सिराव्यधप्रणाली, स एव सिराव्यधस्य बहुलप्रचारः^१, तान्येव मरिच-मधुक-लाक्षा गुग्गुल्वादीनि शतशो भारतीयानि भेषजानि, क्वचित् स एव रसादिप्रयोगक्रमः, सर्वत्र च सैव शैली भेषज-प्रयोगस्य । वाजीकरणञ्चेदानीं सर्वस्वभूतं यावनचिकित्सायाः । तथाच सर्वथा निःसंशयं ब्रूमो यावनचिकित्सेयमायुर्वेदस्यापभ्रंशरूपेति ।

चीनदेशीयचिकित्साशास्त्रेऽपि बहुधा दृश्यमायुर्वेदवीजम् । तथाहि तत्र स एव पुनर्वातपित्तकफशोणितवादः इन्सिङ्गाख्येन^२ चैनिकपरित्राजकेन निर्दिष्टः । भेषजानि च बहुशो भारतोद्भवान्येव ।

तस्मान्निखिलचिकित्साशास्त्रवीजभूतोऽयमायुर्वेद इत्यत्र न युज्यते धीमतां मनागपि संशयः । स चायमायुर्वेदमध्यन्दिनकालीनो वृत्तान्तो यं स्मरन्तोऽपि धन्या वयमिदानीन्तनीं निजाधन्यतां सुतरामाकलयामः ।

अथ आयुर्वेदस्य ध्वंसवृत्तान्तवर्णनीयस्तृतीयः पादः ।

अथेदानीं द्विसहस्रवर्षाधिककालीनमायुर्वेदस्य (अथवा—सर्वार्यविद्याया एव) ध्वंसवृत्तान्तं संक्षेपादालोचयामः^३ ।

१ । यूनानीशब्दोऽसौ यवनानीशब्दस्यापभ्रंश एव । यवनानां भाषा यवनानी— इति हि वैयाकरणाः । २ । एतत्प्रमाणार्थं दृश्यतां यः कोऽपि यूनानीग्रन्थः यथा—“इलाज् उल् गुर्वा,” “तिब्ब अक्वरी” इत्यादि । तत्र यावनभाषया वायुपित्तकफाः “सौश सफरा वलगम्” इत्यारूपाभिः प्रसिद्धाः । ३ । तथा हि सुश्रुते—“सिराव्यधचिकित्साद्धं शल्यतन्त्रे प्रकीर्तितः ।” (सु० शा० ८ अ०) । ४ । Vide Itsing's Record of Buddhistic practices (Translated by Prof. Takakusu), Ch. 27—29. ५ । अत्रत्या ऐतिहासिकवाक्ताः प्रायैर्नैतेभ्यो ग्रन्थेभ्यः संगृहीताः—V. A. Smith's Early History of India ; R. C. Dutt's School History of India ; H. Shastri's History of India, Elphinstone's History of India &c. वैद्यकाचार्याणां कालनिर्णयस्त्वस्माभिर्बहुभिर्हेतुभिरन्यत्र कृतः ।

इह खलु क्रमेण दुर्दैवशास्त्रीयमाने चिरन्तनवैदिकाचारगौरवे, क्षीयमाण-
 अथ भारतीयानां ज्योतिषि बौद्धदुर्दिनाच्छत्रे च भारतप्रभावदिनकरे प्रादुर-
 ज्ञानार्जनविघ्नाः भूवन्नकालवज्रनिर्घाता इव शक-हूण-यवनादिजातीनामुत्पाताः
 शास्त्रलोपहेतवश्च । शतधा ज्ञानार्जनविघ्नभूताः । तेष्वप्युत्पातो भारताक्रमण-
 (१) मलिक्सन्दराख्येन ग्रीकभूपतिना । स हि महाबलः परः-
 तत्राद्यो विघ्नः— सहस्रचतुरङ्गसेनासमृद्धिः ख्रीस्तपूर्वसप्तविंशत्यधिकत्रिशतमिते
 ग्रीसदेशीयाना- वर्षे (327 B. C.—अर्थात् प्रायः सपादद्विसहस्रवर्षतः प्राक्)
 माक्रमणम् । राहुरिव करालो भारतसूर्यमग्रसीत् । तदाक्रमणजन्ये च

महति विप्लवे विध्वस्तप्राय आसिन्धुपञ्चनदावधिर्महादेशो येन गृहदाहदुर्भिक्षादिना
 सहस्रशो विनष्टाः प्रजाः, शतशः ग्रन्थरत्नानि । प्रतिनिवर्त्तमानेन च तेन
 ग्रीकभूपतिना तत्तत्प्रदेशशासनाय विनियुक्तः सेल्युकसाख्यो ग्रीकवीरः, स्वदेशं
 प्रापिताश्च केचन भारतीया ग्रन्थाः, विशेषतश्च चिकित्साग्रन्थाः भारतीयचिकित्सा-
 नैपुण्यविलोकनविमुग्धेन चेतसा । ततो मगधाधिपेन महाराजचन्द्रगुप्तेन पराजितोऽसौ
 सेल्युकस्वीरः सन्धाय प्रतिनिवर्त्तमानोऽपि भारतीयविद्यार्जनाय मेगास्थिनिसाख्यं
 ग्रीकभिक्षुं चन्द्रगुप्तसदसि पाटलिपुत्रे स्थापयाम्बभूव । तदेतदखिलं भारतीय-
 ज्ञानालोकस्य यावनदेशप्रचारस्य द्वारमभूदिति पुरावृत्तविदां वार्त्तया सुप्रतिपन्नं
 चक्षुष्मताम् । न च शङ्क्यम्—ग्रीसदेशीयज्ञानत एव भारतस्यासीद् विज्ञानसमृद्धि-
 रिति । न हि मुष्टिमेयैर्विताडितावशिष्टैश्च ग्रीकसैनिकैः शिक्षयन्ते स्म भारतीया
 ज्ञानर्द्धिसमृद्धाः सुधियः, न च सत्येवं ग्रीसदेशीयैरितिहासिकैस्तथा नाभविष्यल्लिखितम् ।
 दर्शिताश्चास्माभिरनेकधाऽन्येऽपि भूतार्थप्रतिपादका हेतवः ।

ततः प्रशान्तप्राये नन्दकुलधूमकेतोर्महाराजचन्द्रगुप्तस्य शौर्येण ग्रीकाख्य-
 (२) यवनानां प्रभावे चन्द्रगुप्तस्य तत्सूनोर्विन्दुसारस्य च राज्या-
 द्वितीयो विघ्नः— वसाने क्रूरप्रकृतिरशोकनामा विन्दुसारपुत्रो राजवंश्यान्
 नन्दवंशध्वंसविप्लवः, बहुधा विनिपात्य सिंहासनमारुहो (264 B. C.) । तेन
 राज्यारम्भे अशोककृतो च क्रोधभयानकेन 'चण्डाशोक' इति पुरा ख्यातिं गतेन कलिङ्गेषु
 महान् प्रजाध्वंसश्च । वर्षत्रयं सुमहान् युद्धविप्लवः समारब्धस्तेन लक्षशो विनष्टाः
 प्रजाः, न किमुत शतशो ग्रन्थरत्नानि ? ततोऽसौ उपगुप्ताख्येन बौद्धाचार्येणोपदिष्टो
 बौद्धधर्ममग्रहीत्, प्रसिद्धश्चानन्तरं धर्मिष्ठो भवन् 'धर्माशोक' इति बौद्धेषु । प्रचारितश्च
 तेन नानादिगन्तेषु प्रेषितैर्बौद्धश्रमणैश्चीन-ग्रीसादि सुदूरदेशेषु बौद्धानां धर्मो ज्ञानालोकश्च

भारतीयः । आयुर्वेदश्च पुनस्तदानौ किञ्चिन्मन्दप्रभोऽपि परहितव्रतैर्वौद्धश्रमणै-
रूपासितश्चीन-यवनादिदेशेषु प्रचारविशेषं लेभे । तथापि राजाज्ञया शक्वेच्छेदादि-
निषेधात्ततः प्रभृति शारीरशास्त्रस्यावनतिरेवाभूत्, नष्टप्रायशारीरस्य च वैद्यकस्य कथङ्कारं
समुन्नतिः ?

ततो विनष्टपराक्रमे मौर्यवंशे (183 B. C.) पार्थिनामानो प्रीकयवनाः
(३) शकाख्यवर्वराश्च पुनःपुनर्भारतमाक्रम्य आसिन्धु-साकेतपुरा-
तृतीयो विघ्नः— वधिप्रदेशेषु निरन्तरं विप्लवं जनयामासुः । तदा मिलिन्दाख्यो
पार्थिनाम्नां यवनानां यवनः पञ्चनदप्रदेशं बुभुजे, सं च नागार्जुनेन बौद्धधर्मे उपदिष्ट
शकानाञ्च इति मिलिन्द्रप्रश्नीया^२ कथा बौद्धानाम् । मगधेषु च तदैव
भारताक्रमणम् । पुष्पमित्रः शुङ्गवंश्यो मौर्यवंश्यं बृहद्रथं विनाश्य राज्यमप्रहीत्,
विताडितश्च तेन मिलिन्दाख्यो यवनः साकेतपुरीं रुन्धानः । भगवान् पतञ्जलिश्च
तदानीन्तन पवेति ऐतिहासिकाः^३ ।

एवञ्च मनाक् प्रशान्ते विप्लवे चरकापरपर्यायेण तेन भगवता पतञ्जलिना प्रति-
[ततः संस्कृता विशीर्णप्राया अग्निवेशसंहितेति प्रागदर्शयाम । बौद्धा-
शुगवंश्येन पुष्पमित्रेण चार्येण नागार्जुनेन च तस्मिन्नेव काले सुश्रुतसंहिताऽपि प्रति-
स्थापितायां शान्तौ संस्कृतेति केचित् । अमुष्य च प्रायो वर्षसहस्रद्वयी समतीता
चरकस्य प्रादुर्भावः ।] वृत्तान्तस्य ।

अथ पुनः पुनः शकजातीयानामाक्रमणेन क्षीणदीनवलेषु सकलराजकेषु कुशाण-
[शकनरपतेः कनिष्कस्य वंशीयः कनिष्कनामा महाप्रतापः शकनरपतिराहिमाद्रिविन्ध्य-
अधुना १८३५ — पर्यन्तं भारतस्य उत्तरपश्चिमाद्ध बहुभिर्युद्धैर्जिगाय । तस्य
शकाब्दाः । शकनरपतेरतीताब्दाश्च साम्प्रतं १८३५ संख्याः । परस्ताद्वर्ष-
ततः परम् शतत्रयं कथञ्चिदिव प्रशान्ता रणलीला । अस्मिन्श्चावसरे
काश्मीरे दृढबल- शतत्रयं कथञ्चिदिव प्रशान्ता रणलीला । अस्मिन्श्चावसरे
प्रादुर्भावः । चरकसंहितापूरकः^४ सम्भवूव काश्मीरेषु दृढबलचार्यः ।

१ । Vide Journal of Asiatic Society, Vol. vii. P. 261.
२ । मिलिन्द्रप्रश्नश्चासौ पालिभाषया लिखितो “मिलिन्द्रपञ्चो”—इति संशया प्रसिद्धो बौद्धग्रन्थः ।
मिलिन्द्र = Meander (Greek) । ३ । Vide Mabel Duff's Chronology
of Ancient India ; also, Goldstuecker and Bhandarkar (referred to
on page 10 of text), अतएव “अरुणद् यवनः साकेत”मिति महाभाष्ये प्रयोगः ।
४ । दृढबलकालनिर्णयहेतुः (११ पृष्ठे) दाशैतपूर्वः ।

ततो हूणैः काम्बोजीयैश्च पुनर्भारतमाक्रम्य शलभैरिव शतकोटिसंख्यैर्वर्षशतं
 (४) समारब्धो विप्लवः सुमहान् । हूणाश्च शका एव भिन्नप्रान्तीयाः
 चतुर्थो विघ्नः— इति केचित् । तांश्च सर्वान् मालवाधिपो विक्रमादित्यो यशो-
 हूणजातिकृतः धर्मदेवाख्यो महता शौर्येण विजित्य शकारिसंज्ञां लेभे,
 सुमहान् राज्यविप्लवः । विस्तारयामास च सुमहत् साम्राज्यमुज्जयिनीत आ-हिमाद्रि-
 ततः शकारिविक्रमा- मूलम् । ततश्च प्रभृति (ख्रिस्तीय ५३३ अब्दतः)—सर्वथा
 दित्यस्य प्रादुर्भावः । विताडितेषु शकहूणादिवर्षेषु सार्द्धचतुःशतवर्षं पञ्चशतवर्षं
 वा कथञ्चित् प्रतिष्ठिता शान्तिः । विक्रमादित्यश्चायं कालिदासादिनवरत्नोपासितो
 विद्याब्धिकर्णधार इति प्रख्याप्यते पुरावृत्तवेदिभिः । सोऽयं संवत्प्रवर्त्तको विक्रमो न
 वेति नास्मद्विचार्यम् ।

अत्र च सार्द्धचतुःशतवर्षान्तः पञ्चशतवर्षान्तर्वा विक्रमादित्यवंश्येषु भारतं
 [महाराजविक्रमादित्या- शासत्सु पुनरपि समुद्रासते स्म म्लानज्योतिरपि भारतीय-
 दीनां राज्यकालेषु ज्ञानसमृद्धिः । अत्रैव खलवाविर्वभूवुर्विक्रमकाले कालिदासा-
 पञ्चशतवर्षान्तः भारतीय- मरसिंह-वररुचि-वराहमिहिराद्या विद्वांसः, ततश्च परं क्रमेण
 विद्यानां पुनरुद्धारः । दण्डि-वाणभट्ट-भवभूत्यादयः केचन कवयः, आर्यभट्ट-ब्रह्म-
 तत्र गुप्तादयो ज्योतिर्विदश्च । स च भगवान् शङ्कराचार्योऽपि
 कालिदासादीनां वाग्भट- ख्रिस्तीयनवमशतके प्रादुर्भूतः एतत्कालाभ्यन्तरीण एव ।
 वृन्द-माधव-चक्रपाणि- आयुर्वेदे च एतत्समयान्तरेव प्रादुरासीद् वाग्भटाचार्यो नाम
 डलनादीनाञ्च प्रादुर्भावः] अष्टाङ्गवैद्यकसंग्रहीता, वृन्दमाधवादायश्चापरे संग्रहकाराः,
 जेज्जट-गायदास-भास्कर-ब्रह्मदेवाद्या वैद्यकव्याख्यातारश्च । चक्रपाणिदत्तस्तु वङ्गेषु
 नयपालनृपतेः प्रियभिषगासीदिति तदुक्त्या ज्ञायते । नयपालकालश्च ख्रिस्तीय
 १०४०—१०६० वर्षाणि । तस्माद् भारतीयविद्यानां पुनरभ्युदयकालस्य शेषतः

१ । संवत्प्रवर्त्तको विक्रमादित्यस्तु १९७० वर्षैः पुराणः स्यात्, किन्तु तत्काले कस्यापि
 विक्रमस्य प्रादुर्भावः साम्प्रतिकैरैतिहासिकैर्न शक्यो निर्णेतुम् । तथा चात्र बहुधा प्रवर्तन्ते वादाः ।
 तद्विचारस्तु अप्रासङ्गिकत्वाद्विस्तरमिमां नेह क्रियते । वराहमिहोक्तगणनया तु कालिदासादि-
 नवरत्नोपासितो विक्रमादित्यो यशोधर्मदेव एव पूर्वोक्तः । २ । तत्र वाग्भटकालनिर्णये
 हेतुरुक्तपूर्वो वक्ष्यते च । वृन्दमाधवादीनां कालनिर्णये हेतवस्त्वनुपदमेव वक्ष्यन्ते । ३ । तदुक्तं
 चक्रसंग्रहसमाप्तौ—‘गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपालेत्यादिप्रसङ्गस्य शिवदासकृतव्याख्याने द्रष्टव्या ।

प्रादुरासीद् वैद्यकाचार्यश्चक्रपाणिः । उल्लनाख्यः^१ सुप्रसिद्धसुश्रुतटीकाकारश्च चक्रपाणेः समकालीनः किञ्चित्पूर्वतनो वा ।

मालवराज्याधिपो नानाशास्त्ररसिकः प्रसिद्धतमो भोजनरपतिश्च एतत्कालान्ते खृ० १००६ अब्दे सम्बभूवेत्यैतिहासिकाः । मालवदेशश्च विन्ध्याद्रिश्रेणीरक्षित्वाद् नाभूद् महम्मदीयाक्रमणविषयस्तदानीम् ।

अथ पुनर्भारतीयानां मन्दभाग्यवशात् प्रवृत्ते महम्मदीयानां घोराक्रमणप्रवाहः ।

(५) तत्रायमाक्रमणं महम्मद-विन्-कासिम-कृतं सिन्धुदेशेषु (ख्री० पंचमो विघ्नराशिः— ७१२ वर्षे) श्रूयते । ततः परं यदा एकादशशतके गान्धार-महम्मद गज्जितो प्रान्तीयाद् ‘गज्जि’नगरादागतेन दुर्द्धर्षेण मल्लुदाख्येन दस्युना बहुवर्षव्यापी बहुसहस्रदुराचारसैनिकसहायेन पुनः पुनराक्रम्य लुण्ठिताः भारतकीर्त्तिध्वंसः । सोमनाथपत्तनादिषु भारतीयसम्पदः, कुट्टितास्तीर्थस्थानेषु देवमूर्त्तयः, व्यापादिताः सहस्रशो ब्राह्मणाः, निर्दग्धाश्च प्रतिदिनं शतशो गृहाः, तदा सर्वथा धनजनधर्मरक्षणव्याकुलैः परित्यक्तो नवीनज्ञानाज्जनप्रयत्नो लोकैः । न विद्वमः — कियन्ति नाम तदा ततः प्रभृति च भस्मीभूतानि लुप्तावशिष्टानि प्राचीनग्रन्थ-रत्नानि !!

ततोऽनुपदमेव सुघोरकर्मणा घोराख्येन महम्मदेन स्वदेशद्रोहिणो जयचन्द्राख्यस्य

(६) कान्यकुब्जाधिपस्य साहाय्यात् समास्कन्द्य पातिता क्षत्रकुल-पष्ठो विघ्नः— सूर्यस्य देहलीपतेर्महाराजपृथ्वीराजस्य राज्यश्रीः (ख्रीस्तीय० महम्मदघोरकृतं ११९१) । देहलीराजधान्याश्चाद्यापि तत्कीर्त्तिस्तम्भमन्दिर-घोरमाक्रमणम् भग्नावशेषास्तत्तत्कुत्स्यसाक्षिभूताः । ततश्च दशवर्षाभ्यन्तरत एव महम्मदीयैर्दुर्वृत्तैर्निर्जिता समग्रा आर्यावर्त्तभूमिर्मालव-पृथ्वीराज-दाक्षिणात्यवर्जम् । मालव-दाक्षिणात्ययोस्तु ‘अल्लतामास’ राज्यापहारश्च ।

इत्याख्येन तदासपुत्रेण, ‘अलाउद्दीन’ इत्याख्येन च तत्परवर्त्तिना महम्मदीयेन ख्रीस्तीय-त्रयोदशशतकेऽभूदाक्रमणम् । तयोश्च कुत्स्यशतैर्भारतदक्षिणाद्धस्था अपि विध्वस्तप्रायाः प्रायेण सर्वा एवाऽर्यकीर्त्तयः । उज्जयिनीस्थानि महाकालमन्दिरादीनि तु—अल्लतामास इत्यनेनैव विध्वस्तानि ।

वङ्गेषु तु महम्मदीयाक्रमणाद् दूरतरं स्थितेषु, ख्रीस्तीयसप्तमशतके अष्टमशतके वा

१ । उल्लनाकालनिर्णयहेतुश्चाग्रे वक्तव्यः ।

६२

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः

निदानसंग्रहकार इन्दुकरात्मजो माधवस्ततश्च परम् एकादशशतके चक्रपाणिनाम् नयपालराजस्य वैद्यवरः प्रादुर्बभूव । ततो द्वादशशतके त्रयोदशशतके वा किञ्चित्

[वङ्गेषु माधव- प्रवृत्तेऽपि मुसलमानाक्रमणे विजयरक्षित-श्रीकण्ठदत्ताभ्यां चक्रपाण्योरनन्तरं विजय- टीकाकाराभ्यां पुनरपि किञ्चित् समुदीपितं वैद्यकज्योतिः । रक्षित-श्रीकण्ठदत्तयोः तयोश्चान्तिके तदानीमप्यासन्ननेके प्राचीनवैद्यकग्रन्था इति प्रादुर्भावः] तदुद्धृतप्रमाणशतैरनुमीयते । ततश्च हन्त महम्मदीयैः कष्ट-नीत्या निर्जिता वङ्गराजलक्ष्मीरपि ।

ततस्त्रयोदशशतकमध्यभागे 'चेङ्गिजखान्' इत्याख्येन मुगलजातीयमहादस्युना

(७) पुनरपि विलुण्ठिता भारतीयाः सम्पद आ-हिमाद्रिमध्यदेश-सप्तमो विघ्नराशिः— पर्यन्तम् । नृशंसाधमेन च तेन बहुलक्ष्मणरघातकेनानुष्ठिता-चैंगिजखान्-तैमूर-न्यतिघोराणि कुकृत्यानि । ततः परावृत्तेऽपि चेङ्गिजखानाख्ये लंगाभ्यां भारत- मुगले पुनः पुनः समागतैर्मुगलैः सह पाठान नरपतीनां प्रावर्तत समुद्धिलुण्ठनं जनपद- चिराय दारुणा रणलीला बहुजनपदध्वंसिनी । अन्तरा च विध्वंसनञ्च । 'तैमूरलङ्का'ख्यो घोरकर्मा मुगलदस्युराजः ख्रीस्तीयचतुर्दश-शतकान्ते समापतितो मासद्वयं यावदप्रतिहतप्रसरो लक्षशः प्रजा विनिहत्य, प्रज्वाल्य च तद्गृहान् विलुण्ठ्य च तत्समृद्धीः समग्रमार्यावर्तं हाहाकारमयमकरोत् ।

दाक्षिणात्ये त्वेवंविधेऽपि समये वीरबुक्को नामाऽभून्महाविक्रान्तो नरपतिर्येन [दाक्षिणात्ये वीरबुक्क- विजयनगरराज्यमधिपतिष्ठता न केवलं सुरक्षिता दाक्षिणात्य-नृपतिकृता राज्यरक्षा राज्यश्रीरेव, किन्तु भगवता मत्स्यावतारेणेव समुद्धृता व्याख्या-सायण-माधव-कृतो पिताश्च वेदाः स्वसभासदः सायणमाधवादीन् प्रोत्साह्य वेदोद्धारश्च । तत्- शाङ्गधरो नाम स्वसंहिताख्यवैद्यकसंग्रहकारश्च दाक्षिणात्ये समकालं च एतत्कालाभ्यन्तर एव समभूदिति शाङ्गधरपद्धत्यां निर्दिष्टेन शाङ्गधराख्यस्य वैद्यक- संग्रहकारस्य प्रादुर्भावः] कालेन (सं० १४२०) प्रतीयते ।

अथ षोडशशतकारभमे बावराख्येन मुगलराजेन विजितेषु पाठानराजकेषु (८) मुगलराज्याधिकारः प्रवृत्ते । ततः कतिपयवर्षाणि बाबर-अष्टमो विघ्नः मुगल- पुत्रो हुमायूनी दिग्विजयविप्लवं समारेभे, शेरशा इत्यनेन पाठानानां रणलीला- वङ्गेषु पराजितोऽसौ क्रमादुपहतसिंहासनश्चाभूत् । अन्तरा कृतो राज्यविप्लवः । च मुगलपाठानानां सुदुर्द्धर्षाणां युध्यमानानां संघर्षेण महानभूत् प्रजाविध्वंसः षोडशवर्षाणि । ततः षोडशवर्षान्ते पुनर्मुगलराज्यं

प्रतिष्ठाप्य उपरते हुमायूते तत्पुत्रः प्रथितनामा अकव्वरशाहाख्यो नरपतिर्बाहुवलेन सिंहासनमध्यास्य विजितवान् प्रायः समग्रमपि भारतं वर्षम् ।

ततः सुप्रतिष्ठितायां शान्तौ नानाविद्यारसिकोऽसौ नरपतिर्बाहुया समाहृत्य
[अथ अकव्वरशाह- भारतीयान् विदुषः शास्त्राणि च, “दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो
समये प्रतिष्ठितायां वेति” महतीं यशोगाथाभर्जयाञ्चकार । ईदृशे च समयेऽभूवन्
शान्तौ विदुषां प्रादुर्भावो तानसेनाद्या भारतीयसङ्गीताचार्याः, टोडरमल्लाद्या राजनीति-
विद्योन्नतिश्च । तत्र कोविदाः, अपरे च केचिन्नानाशास्त्ररसिका विद्वांसः ।
कान्यकुब्जेषु वैद्यका- अस्मिन्नेव च काले षोडशशतकपराद्धे सप्तदशशतकपूर्वाद्धे वा
चार्यो भावमिश्रः] कान्यकुब्जेषु प्रादुर्बभूव भावमिश्राख्यः प्रसिद्धवैद्यकसंग्रहकारः ।

ततः अकव्वरशाहानन्तरं तत्पुत्रे जहाङ्गीरवादशाहे राज्यं भुक्त्वा उपरते
[अथ शाहजहानराज्य- जहाङ्गीरपुत्रो शाहजहान् नरपतिर्भारतसाम्राज्यं बुभुजे ।
काले भट्टोजिदीक्षितादीनां स चासौ देहलीदुर्ग-ताजमहलादिनिर्मापकः स्थापत्यादि-
विदुषां प्रादुर्भावः] नानाकलाप्रियः सुप्रसिद्धकीर्तिरद्यापि । तद्राज्यकाले च
भट्टोजिदीक्षित-जगन्नाथपण्डितराजादीनां, समनन्तरञ्च नागेशभट्टादीनां प्रादुर्भाव
इत्यैतिहासिकाः ।

ततः अवरङ्गजेवनामा शाहजहानस्य कनिष्ठपुत्रः कपटशतेन स्थविरं पितर-
(९) मवरुध्य भ्रातृंश्च हत्वा राज्यमधिक्रमे । ततश्च पुनः प्रावर्त्तत
नवमो विघ्नः— यतस्ततः सुमहानार्यकीर्तिध्वंससंरम्भः । तेन हि ‘हिन्दु’नाम-
अवरंगजेवकृतः द्वेषिणा विनाऽपि क्रोधकारणं शतशश्चूर्णीकृतानि देवमन्दिराणि,
सुमहानार्यकीर्ति- निर्दग्धाः सहस्रशो ग्रन्थराशयः, व्यापादिताश्च बहुशः स्वधर्म-
ध्वंससंरम्भश्च । निष्ठाः प्रजा नानाविधमिषशतेन । एवञ्च भूयः कथञ्चिदु-
ज्जीवितप्रायाऽपि शोच्यां दशमाजगाम पुनरपि भारतीया विद्यासमृद्धिः । आयुर्वेदश्च
यावनवैद्यैर्हृतसर्वस्वस्ततः प्रभृति कथञ्चित् प्राणिति स्म ।

सोऽयमायुर्वेदस्य,—अथवा समस्तभारतीयविज्ञानदिनकरस्य—अपराह्कालः,
नूतं वा सन्ध्यारम्भ एव । तादृशे च काले प्राचीनविज्ञानारुणरागसंग्रहणपरा
एवाभूवन्नाचार्या इत्यपि भागधेयमेव भारतस्य । नवीनविज्ञानाविष्करणी तु
प्रतिभा न समुन्मिमेष्ट तादृशराज्यविप्लवैर्कार्णवीभूते भारते इति किमत्र विस्मयपदं
नाम ?

एवंविधे च काले महाराष्ट्रवीरैः शिवाजीप्रमुखैः पुनरपि धर्मसाम्राज्य-
 (अथ महाराष्ट्रवीरैः स्थापनाय समारब्धः सुमहान् प्रयत्नो लब्धश्च कथञ्चित्
 शिवाजीप्रमुखैः कृतो साफल्यमपीति चिराय स्मरणार्हम् । परं तत्परवर्त्तिभि-
 धर्मसाम्राज्यस्थापन- महाराष्ट्रराजकैः परस्परं विवदमानैः प्रकामं विलुण्ठनपरैश्च
 प्रयत्नस्तन्निष्फलता च निर्मूलिता स्वल्पेनैव कालेन महाराष्ट्रसाम्राज्यस्थापनस्याऽ-
 आत्मद्रोहकृता) ऽशालता । तथापि पुण्यश्लोकानां शिवाजीराजारामादीनां
 सुकृतप्रभावादद्यापि इन्दौर-बडौदा-गवालियरादिराज्येषु सावशेषं महाराष्ट्रज्योतिरिति
 महद्दिदं हर्षस्थानं भारतीयानाम् ।

अथ दुर्विषहपापभाराक्रान्ते मुगलसाम्राज्ये, अवरङ्गजेवराज्यावसाने (स्त्री०
 (१०) १७०७) अतिदुर्वलप्रभावेषु तत्पुत्रपौत्रादिषु पुनरपि
 [दशमो विघ्नोत्पत्तः “नादिरशाह” इत्याख्येन महादस्युना नवधा देहलीराज-
 “नादिरशाह”— धानीमाक्रम्य महती संहारलीला प्रवर्त्तिता (स्त्री० १७३६) ।
 “महम्मदशाह” इत्ये- ततश्च पुनर्नववर्षान्ते ‘अहमदशाह अवदली’—इत्याख्येन
 ताभ्यां कृता संहारलीला] दुर्द्धर्षदस्युना चतुर्धा विलुण्ठिता देहलीमथुराद्या नगराः,
 अनुष्ठितानि च पुनःपुनस्तानि तानि गृहदाहादिकुकृत्यानि ।

ततः सद्यहृदयेन वेधसा एतावतीभिरत्याचारपरम्पराभिरपि अविनश्यन्तीमिव
 ततः सद्येन वेधसा प्रति- भारतीयविद्यासमृद्धिमाकलयता तद्रक्षणाय सम्प्रेषिता उदार-
 क्षितं ब्रिटिशसाम्राज्यम् । हृदयाः श्वेतद्वीपपुरुषब्रिटिशनामानः । तैश्च वाणिज्यार्थमार्गतै-
 रपि भारतीयप्रजानां दुर्दृशाविमोचनार्थमिव क्रमाद् वङ्गेषु च
 दाक्षिणात्ये च राज्यभित्तयो निर्मिताः, स्थापितश्च वर्षशतेन बहुरक्तपातं विनैव
 सुमहत् साम्राज्यमखिलभारतव्यापि । ततः (स्त्री० १८५७ वर्षे) प्राप्तेऽपि सैनिक-
 विद्रोहकृते विप्लवे गुणलुब्धेव राज्यश्रीर्न मुमोच तेषामेवाङ्कारोहणसुखम् । ततः
 प्रभृति क्रमात् सुप्रतिष्ठायां शान्तौ सुरक्षिते च प्रजालोके, प्रतिदिनमादीप्यते
 भारतीयं ज्ञानज्योतिः । न च स्वयं सुविमलज्ञानाधिकारिणोऽपि प्रकामं नोत्साहयन्ति
 राजपुरुषाः सम्प्रति सर्वा अपि भारतीया विद्याः—इति सर्वथा धन्यवादाहर्हा एते
 भारतीयानाम् ।

सोऽयमेतावानतिदारुणोऽपि सम्प्रति प्राप्तावधिर्वैद्यकविद्यायाः (प्रत्युत सर्वार्थ-
 विद्यानां) ध्वंससमयः । अथेदानीमेतत्कालान्तः प्रादुर्भूतानां वैद्यकाचार्याणां
 कालनिर्णये हेतवः केचिदुपन्यस्यन्ते प्रसङ्गात् संक्षेपेण ।

वद्यकप्रत्यङ्गतां कालनिर्णये हेतवः

५५

तत्र चरकदृढवलयोः कालो निर्णीतपूर्वः । वाग्भटश्च दृढवलस्यावरज एव
चरकसुश्रुतयोः प्रति- न पूर्वजः, इति निश्चयोऽस्माकम् । यतो वाग्भटेन अष्टाङ्ग-
संस्कारकालो दृढ- संप्रहशेपे दृढवलीयकल्पस्थानमेव गद्यमयेन वचसाऽनूदितं,
बलस्य वाग्भट- अष्टाङ्गहृदये “ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चे”दित्यादिवचनेन स्पष्टं
पूर्वजत्वञ्च लक्षितञ्च दृढवलकृतं चरकापूर्णम् ।

सुश्रुतसंहितायाः प्रतिसंस्कारस्तु चरकसंहितारचनादनन्तरजः प्रतिभाति । दृश्यन्ते
ह्यत्र बहुधा चरकीयाः पाठाः, विषयसन्निवेशक्रमश्च साधीयान् । तत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियते—

चरके—“सूक्ष्माणि हि दोष-भेषज-देश-काल-बल-शरीराहारसात्स्य-सत्त्वप्रकृति-
वयसामवस्थान्तराणि यान्यनुचिन्त्यमानानि विमलविपुलबुद्धेरपि बुद्धिमाकुलीकुर्युः
किं पुनरल्पबुद्धेः ।” (च० सूत्र १५ अ०) इति । सुश्रुते—“सूक्ष्मा हि द्रव्य-रस-
गुण-वीर्य - विपाक-दोष-धातु - मलाशय-मर्म-सिरा-स्नायु-सन्ध्यस्थिगर्भसम्भवद्रव्यसमूह-
विभागा * * * ये विचिन्त्यमाना विमलविपुलबुद्धेरपि बुद्धिमाकुलीकुर्युः किं
पुनरल्पबुद्धेः । (सु० सूत्र० ४ अ०) इति ।”

पुनः सुश्रुते कासाधिकारे—“अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहै”रित्यारभ्य
“कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम्” इत्यन्तः सन्दर्भः (सु० उत्तर०
५२ अ०) चरकीयकासाधिकाराद् गृहीतः (च० चिकि० १८ अ०) । सुश्रुतीय-ऋतु-
चर्याध्यायश्च (सु० सू० ६ अ०) चरकीयकालविभागानुवादपुरःसरमारब्धः । सुश्रुत-
प्रतिसंस्कर्ता चासौ न माध्यमिकाचार्यो नागार्जुनो भवितुमर्हति, तन्नामः प्रसिद्ध-
बौद्धाचार्यस्य चरकसमकलीनत्वात् । न हि समकालीनानामाचार्याणां वचांसि तथावद्
गृह्यन्ते प्रसिद्धैराचार्यैर्विनैव तन्नामग्रहणम् । अथासौ कश्चनान्यो बौद्धाचार्यो
नागार्जुनाख्यः स्वीक्रियते, तदवरजः सुश्रुतप्रतिसंस्कर्तेति, तथास्तु—का क्षतिः ?

अथ वाग्भटकालनिर्णये त्रयो हेतव उपलभ्यन्ते । तत्र इत्तिस्झाख्येन चैनिक-
वाग्भटकालनिर्णये परिव्राजककृतः “अष्टाङ्गवैद्यकसंप्राहको नवीनाचार्यः”—
हेतुत्रयम् इत्यादिनिर्देशो दर्शितपूर्वः प्रथमो हेतुः । तेन ख्रीस्तीयपञ्चम-

१ । न च सुश्रुतस्यैव सन्दर्भश्चरके समुद्धृत इति वैपरीत्यं शङ्क्यम्, यतो वाग्भटेन—
“यदि चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः किमिव खलु करोतु व्याधितानां वराकः”—इति स्पष्टमेव
वदता सुश्रुते केषाञ्चित् कायचिकित्सावर्गनीयानां रोगाणामभावो लक्षितः । अरुणदत्तश्च “व्याधितानाम्”
इति पदस्य कासश्वासाद्यभिभूतानां”मित्यर्थं व्याचक्षणस्तथैवामिसन्धिमाविष्करोति । तदेतत् सांशु
दर्शितमस्मन्मित्रेण “वनौषधिदर्पण”कारेणापि स्वकीयोपोद्घाते ।

शतकारम्भे वाग्भटकालोऽस्माभिः स्थापितः । अथ चक्रपाणिडल्लनादिभिः प्रायो वर्षसहस्र-
पुराणैराचार्यैर्वाग्भटपाठोद्धारो द्वितीयो हेतुर्येन तत्कालादपि बहुपुराणः (अन्धूत-
पञ्चशतवर्षप्राक्तनः) सम्भाव्यते वाग्भटसमयः । महम्मद-विन् कासिमकृतं
(ख्रीस्तीयाष्टमशतकारम्भे) सिन्धुदेशाक्रमणं तृतीयो हेतुर्येन तत्पूर्वतन एव स्यात्
सिन्धुदेशजो वाग्भट इति प्रतीतिः । न हि तदारभ्य प्रवृत्ते सिन्धुराजविप्लवे कथमपि
अष्टाङ्गसंग्रहाष्टाङ्गहृदयारख्ययोर्महाग्रन्थयोर्निर्माणं सम्भवति नाम । यत्तु अष्टाङ्गसंग्रहकारो
वाग्भटः अष्टाङ्गहृदयकाराद् वाग्भटाद् भिन्न इति कस्यचित् पाश्चात्यविदुषो^१ मतम्,
तत् सर्वथा निर्मूलमतिविस्मयकरञ्च नः । ग्रन्थद्वयस्य सर्वत्रैव भाषासादृश्यात्,
ग्रन्थकर्त्रोः पितृनामसादृश्यात्, क्वचिदपि मतभेदस्यादर्शनाच्च । वाग्भटेन हि महान्तं
ग्रन्थमष्टाङ्गसंग्रहाख्यं विरचय्य तत्संक्षेपो “हृदयमिव हृदयमेतत्” निरमायीति स्वय-
मेवाभिहितं तेन सुस्पष्टया गिरा ग्रन्थसमाप्तौ ।

‘रसरत्नसमुच्चय’कारो वाग्भटस्तु कश्चनार्वाचीनो भिन्न एवाचार्यस्तुल्य-
नामा, यतः समुद्रवदगम्भीरे अष्टाङ्गसंग्रहेऽपि न लभ्यते रसतन्त्रोक्तविषयाणां
रसरत्नसमुच्चयकारो रससंस्कारादीनां गन्धोऽपि, लभ्यन्ते च समुच्चये प्राचीन-
वाग्भटस्तु भिन्न एव वाग्भटापेक्षया भृशमवरजानां सोमदेव-गोविन्दभगवत्पादा-
दीनां ग्रन्थेभ्यः पाठोद्धारः । तत्र सोमदेवग्रन्थात् समग्रं
रसपरिभाषाप्रकरणं गृहीतं रसरत्नसमुच्चये (१० १० सं०
६ अ०) । गोविन्दभगवत्पादकृतात् रसहृदयतन्त्रात् गृहीतानि — “सुकृतफलं
तावदिदम्” इत्यादीनि “भ्रूयुगमध्यगतं यत्” — इत्यादीनि च कानिचित्
पद्यानि । गोविन्दभगवत्पादाश्च भगवतः शङ्कराचार्यस्य गुरव इति प्रसिद्धा
एव, नान्ये — इति सुप्रतिपादितं विद्वद्वरैः श्रीमद् गुरुनाथ त्र्यम्बक काले इत्येतैः
रसहृदयोपोद्घाते^२ । न च शङ्क्यं — कथं तर्हि “सूनुना सिंहगुप्तस्ये”ति
रसरत्नसमुच्चयादौ परिचय इति, यतो बहुषु हस्तलिखितग्रन्थेषु “सूनुना
सङ्गुप्तस्ये”त्येव पाठः साधीयान् दृश्यते । तेन “सिंहगुप्तस्ये”ति पाठः
कस्यचित् पण्डितम्मन्यस्य संशोधनप्रसूतो मन्तव्यः । असौ च रसतान्त्रिको वाग्भटः
ख्रीस्तीयत्रयोदशशतके प्रादुरासीदिति डा० प्रफुल्लचन्द्ररायस्य मतं^३ युक्तियुक्तमेव ।

१. Vide Dr. Horneli's "Medicine of Ancient India" pt. I, P. p. 10-5. २. रसहृदयश्च समग्रं मुम्बय्यां निर्णयसागरयन्त्रात् प्रकाशितम् । ३. Vide Dr. P. C. Roy's 'History of Hindu Chemistry', Vol. I, P. liii.

वैद्यकग्रन्थकृतां कालनिर्णयः

६७

अथ माधवकरो नाम प्रसिद्धवैयाचार्यो निदानकार इन्दुकरात्मजो वङ्गेषु प्रादु-
रासीदिति सुप्रथिता किंवदन्ती । कर इत्युपाधिश्चास्य
माधवकारस्य कालनिर्णयः
वङ्गीयतां स्फुटं व्यनक्ति । स च वाग्भटादवरजः, निदाने
“निदानं पूर्वरूपाणि”—इत्यादि “तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्”—इत्यन्तस्य
समग्रसन्दर्भस्यान्येषाञ्च वाग्भटपद्यानां बहुधा ग्रहणात् । वृन्दचक्रपाण्योः पूर्वजश्च सः,
ताभ्यां स्व-स्व-चिकित्सासंग्रहयोः “गदविनिश्चयो” तत्क्रमेण चिकित्सोपदेशात् । चक्र-
पाणिश्च ख्रीस्तीयैकादशशतकमध्यभागे वङ्गभूमिमलञ्चकारेति सहेतुकमवोचाम । स च
वृन्दकृत “सिद्धयोगा” ख्यग्रन्थमुपजीव्य स्वकीयं चिकित्सासंग्रहं रचयाम्बभूवेति
तदुक्त्या चक्रपाणे रन्यूनवर्षशतद्वयेन प्राक्तनः स्याद् वृन्दः । तेनासौ वृन्दाचार्यो
नवमशतकेऽभूदिति उन्नीयते । माधवश्च तत्पूर्वजः ख्रीस्तीयसप्तमशतके सम्बभूवेति
सम्भाव्यते । इतश्च अष्टमशतके “हरूण उल् रसीद” समये माधवीयनिदानस्य पारस्य-
भाषानुवादोऽभूदित्येतिहासिकवार्त्तयाऽपि तत्पूर्वज एव माधवः पर्यवस्यति । तस्माद्
वाग्भटपरवर्त्तित्वाच्च सप्तमशतके किञ्चित्पूर्वं वा माधवप्रादुर्भावः सिध्यति । माधव
करश्चासौ रुग्विनिश्चयाख्यनिदानग्रन्थप्रणेता रत्नमालाख्यद्रव्यगुणकारश्चेति प्रसिद्धः ।
डल्लनादिनिर्दिष्टः सुश्रुतटिप्पणकारः श्रीमाधवस्तु भिन्न एवास्मात् प्रतिभाति, तस्य
कुत्रापि माधवकर इति निर्देशादर्शनात् ।

सायणापरनामा वेदभाष्यकृन्माधवाचार्यस्तु माधवकरात् सर्वथा भिन्नः पूर्वोक्त-
सायणमाधवस्तु भिन्न एव हेतोः, पर्षपञ्चशत्या तदवरजश्चेति तयोरभेदः कथमपि
न शङ्कनीयः ।

डल्लनो नाम सुप्रसिद्धः सुश्रुतव्याख्याता तु चक्रपाणेः समकालीनः समीप-
कालीनो वेति शक्यं निश्चयेन वक्तुम्, यतोऽसौ सहनपालदेवनृपतेर्वल्लभमात्मानं
ख्यापयामास । पालनरपतयः खल्विह भारते ख्रीस्तीय-
डल्लनस्य कालनिर्णयः ।

दशमैकादशशतकयोरेव मगधेषु गौड़ेष्वन्यत्र च प्रादुर्बभूवुः ।
तत्र नयपालनृपतेर्गौड़ाधिपस्य वैद्योऽभूच्चक्रपाणिरिति तदुक्त्या ज्ञायते, तत्पूर्वजस्य
“पाल”वंशीयनृपस्य नृपद्वयस्य वा नाम न सम्यङ्निरूपितमद्यापि । तदूर्ध्वार्धस्तनान्तु
नारायणपालादयो नरपतयः सुविदितनामान इतिहासविदाम् । तदभ्यर्णकालजाश्च ‘गया’-

१ । तदुक्तिश्च “यः सिद्धयोगलिखिताधिकसिद्धयोगानि”त्यादिरूपा चक्रसंग्रहसमाप्तौ ।

२ । तदुक्तिश्च तत्कृतचिकित्सासंग्रहावसाने दृश्या । ३ । Vide R. C. Dutt's
History of Civilization in Ancient India, Vol. III' p. 243 et. seq.

‘भागलपुरा’दिस्थानेषु कृतराज्या गोविन्दपालदेवमदनपालदेवाख्या भूपतयः “पाल-देवा”न्तसंज्ञा इत्यपि सम्प्रत्येवाऽविष्कृतं ताम्रशासनाद्युद्धनेन^१ । तस्मादुच्यते चक्रपाणेः समकालीनः समीपकालीनो वाऽभूद्भूलन इति । डलन-चक्रपाणिभ्याञ्च लभ्यमानसुश्रुतटीकयोस्तत्प्रणीतयोः कचिदपि परस्परस्य नाम न गृहीतं, गृहीतानि तु डलनेन जेज्जट-गयदासब्रह्मदेवादीनां नामानि । तस्मादितौऽपि तयोः परस्परप्रतिद्वन्दिता शङ्क्यते । तदेवं ख्रीस्तीयदशमशतकशेषार्द्धे एकादशशतकपूर्वार्द्धे वा समभूद् डलन इति नः प्रत्ययः ।

चक्रपाणिकालश्च ख्रीस्तीयैकादशशतकमध्यभाग इति सर्व-
चक्रपाणिकालः वादिसम्मतः सिद्धान्तः पूर्वोक्तेतुः ।

विजयरक्षितस्तु निदानटीकामुखे चक्रपाणिं नामतो निर्दिदेशः, श्रीकण्ठश्च विजयरक्षित-श्रीकण्ठ- तच्छिष्य एव । कालश्चानयोस्त्रयोदशशतकस्य द्वितीयः पादः, दत्तयोः कालनिर्णयः । आतङ्कदर्पणाख्य-निदानटीकाकृता वाचस्पतिना त्रयोदशशतक-मध्यजेन तन्निर्देशात् । कृतश्च विजयरक्षितेन योगरत्नमाला-कारस्य गुणाकरस्य मतोद्धारः । योगरत्नमालाकारकालश्च त्रयोदशशतकस्याद्यः पादः, —इत्यपि हेतोः स एव निश्चयः । तदेतत् सर्वं साधु निर्णीतं डा० हर्नलि इत्याख्येन पाश्चात्यविदुषा ।

अरुणदत्तकालः अरुणदत्ताख्यः^२ प्रसिद्धवाग्भटटीकाकारस्तु त्रयोदश-शतकस्य प्रथमे पादे समभूदित्यपि तत्कृत एव निर्णयः ।

शार्ङ्गधरपद्धति-शार्ङ्गधरसंहितादिग्रन्थकारः शार्ङ्गधरस्तु चतुर्दशशतकस्य प्रथमार्द्धे प्रादुरासीदिति शार्ङ्गधरपद्धतिप्रस्तावनायां लिखितेन परिचयेन समुन्नेयम् ।

शिवदाससेनो नाम चक्रसंग्रहस्य चरकसंहितायाश्च प्रसिद्धटीकाकारस्तु अरुणदत्त-शिवदासकालः श्रीकण्ठदत्तयोरर्वाचीनः, गौडावनीपालाश्रितभिषग्वरस्य सुतः, इति कृत्वा वङ्गदेशीयवैद्यब्राह्मणः पञ्चदशशतकीयश्च प्रतीयते ।

१ । दृश्यतां बरेन्द्रानुसन्धानसमितिप्रकाशितायां “गौडराजमालायां” गोविन्दपालदेवादीनां विवरणम् (५०-५० पृष्ठेषु) । ग्रन्थोऽयं वङ्गभाषायां विरचितः । २ । यथा—“भट्टार-जेज्जट-गदाधर वाप्यचन्द्र-श्रीचक्रपाणि-वकुलेश्वरसेनभव्यैः” इत्यादि । ३ । यथा चक्रदत्तव्याख्यायां ग्रहण्यधिकारे कपित्थाष्टकचूर्णव्याख्याने—“अरुणस्तु वाग्भटटीकायां षड्गुणसितै”रित्यादि । तृष्णाधिकारे च—“श्रीकण्ठस्तु—धृतस्योपरि च्छिन्नभागो धृतमण्ड”मित्यादि ।

गौड़ावनीपालश्चासौ महम्मदीय एव स्यादिति तत्प्रदत्तपरिचयभंग्या ऐतिहासिकविचारेण च समुन्नेयम् ।

भावमिश्रस्तु शार्ङ्गधरवङ्गसेनयोरवरजः कान्यकुब्जश्च—इत्यत्र नास्ति संशयः, यतोऽसावनयोः पाठानुद्धरति स्वग्रन्थे भावप्रकाशाख्ये, निर्दिशति भावमिश्रकालः च परिचयं स्वकीयं तत्रैव । किञ्च तत्र फिरङ्गरोगस्य वर्णनान् पोडशशतकस्य प्रथमपादादवाचीनोऽसौ निश्चीयते । फिरङ्गरोगो हि प्रथमं पोर्तुगीजाख्य-फिरङ्गीयैस्तस्मिन्नेव काले स्वाङ्गसम्पर्केण भारतीयपण्यङ्गनासु प्रसारितः— इति सुप्रथितेयं वार्त्ता । चोपचीन्यहिफेनादीनां गुणाख्यानश्चास्य नवीनतां व्यनक्ति ।

वङ्गसेनस्तु शार्ङ्गधरभावमिश्रयोर्मध्यस्थे समये समभूत् । स च वङ्गदेशीय एव संप्रहकारः । सेनोपाधिश्चास्य वङ्गीय-वैद्याख्यब्राह्मणतां प्रकाशयति । तत्संप्रहस्तु जीर्णप्रतिसंस्कृता अगस्त्यसंहितैवेति स स्वयमेवाह ।

त एते वैद्यकापराहकालसम्भवा अतिप्रसिद्धवैद्यकाचार्याः, यैः खलिवह संप्रहैकत्रतैः समूहिताः परमयत्नेन हीयमानदीप्तेरायुर्वेदभास्करस्य ज्योतिश्छटाः । राज्यविप्लवसमये अधुनाविलुप्तेषु च तावदेवाभूत् पर्याप्तमित्यकामेनापि स्वीकरणीयं बुद्धिमता । आयुर्वेदाङ्गेषु शारीर- तथाप्यत्र सर्वथा विलुप्तप्रायाणि न केवलमसंख्येयप्रायाणि मेवादौ समुद्धर्तव्यम् प्राचीनार्षतन्त्राणि, किन्तु कायचिकित्सावर्जं सर्वाण्यप्यायु-वेदाङ्गानीति सशोकं स्मर्त्तव्यं नाम । किञ्चात्र कथं कथमपि प्रियमाणस्यास्य काय-चिकित्साङ्गमात्रस्यापि प्रधानपूर्वाङ्गम्—शारीरविद्या वनौषधिविद्या चेति विद्याद्वयं विलुप्तप्रायमेव । तत्राप्याद्या शारीरविद्या तु साम्प्रतमशरीरिणीव प्रायः संवृत्तेति हन्त को नाम सहृदयो नात्र दीर्घं निःश्वसिति ? कश्च वा समर्थः सम्प्रति सुप्रतिष्ठितशान्तिके देशे विद्योत्साहिषु च महानुभावराजकेषु पुनरपि समग्रभारत-शरण्यमिदमायुर्वेदशास्त्रं तथा संबर्द्धयितुं न प्रयतेत, विपहेत वा दुर्देवहतकप्रापिता-मायुर्वेदस्याऽपूर्णतां परैर्विहस्यमानाम् ?

अथ शारीरविचारणीयो नाम

चतुर्थः पादः ।

तत्रेह शारीरं नाम सकलनरशरीरवाह्याभ्यन्तरवस्तुविवरणपरायणं प्रधान-
पूर्वाङ्गमायुर्वेदस्य यदिदमाचक्षते द्वारभूतं चिकित्साविद्यायाः,—व्याकरणमिव
निखिलवाङ्मयस्य, तर्कशास्त्रमिव च सर्वार्थावबोधस्य । शरीरं हि खल्वधिकृत्य
शारीरस्य वैद्यके प्रवर्तन्ते तास्ताः क्रियाः स्वाभाविक्यः श्वसनान्नविपचन-रक्त-
प्रधानपूर्वाङ्गता संवहन-विषयग्रहण-चेष्टनाद्याः नानाशयसिराधमन्यादिसमाश्रयाः
यास्विव विकृतिमापद्यमानासु प्रभवन्ति रोगा नैकप्रकारास्तत्तदाशयाद्यधिष्ठानाः । न
चाज्ञातेषु आशयादिविशेषेषु सर्वथा स्थानसंस्थानादिभिर्विज्ञायन्ते शारीरक्रियाः
स्वाभाविक्यः, रोगा वा तद्विकृतिभूताः ।

चिकित्सा हि चिकित्स्यमपेक्ष्य प्रवर्तते, चिकित्स्यश्च पुरुषस्तत्तदाशयादि-
गतविकारशतैः क्लिश्यमानः । पश्यंश्च शारीरशास्त्राख्यज्ञानचक्षुषा सर्वानातुरगतान्
विकारांस्तत्तदाशयादिसंश्रितानलं भिषग् भेषजैः प्रतिकर्तुम् । आहुश्च—

“आतुरस्यान्तरात्मानं यो नाविशति रोगवित् ।

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन न स रोगान् चिकित्सति ॥

इति (च० वि० ४ अ०)

अथ ये तु पुनर्व्याधयो मनोमात्राधिष्ठानास्तेऽपि शरीरक्रियाविकृतिविशेषैरेव
लक्षणीयाः शारीरोपक्रमसाध्याश्च भूम्ना दृश्यन्ते—इत्यप्रतिहतं सर्वथा शारीरविद्याया
वैद्यकप्रधानपूर्वाङ्गत्वं मन्यन्ते परमर्षयः पुराणाः । उपदिशन्ति च—“शरीरविद्यया
शरीरोपकारार्थमिष्यते, भिषग्विद्येयम् । ज्ञाते हि शरीरतत्त्वे शरीरोपकारकेषु भावेषु
ज्ञानमुत्पद्यते । तस्मात् शरीरविचयं प्रशंसन्ति कुशलाः ।” इति (च० शा० ६ अ०) ।

एष पुनरितरेभ्यः शास्त्रेभ्यो विशेषः शारीरशास्त्रस्य यन्नियतप्रत्यक्षपरत्वात्
न केनचिदुन्मत्ततरेण शक्यमस्य सत्यतायां संशयितुम् । विप्रतिषिद्धं ह्यत्र शास्त्रे

यदुपदिष्टञ्च प्रत्यक्षविरुद्धञ्चेति । न वा सर्वथा प्रत्यक्षविरुद्धमिहोपलभ्यमानं ब्रह्म-
 शारीरस्य प्रत्यक्ष- वचोऽपि समाद्रियेरन् सम्यग्दृशः । “नहि युक्तयः सहस्रमपि
 परत्वात् प्रामाण्यम् । घटं पटयितुमीशते” । आह च भगवान् धन्वन्तरिः सुश्रुताय
 —“प्रत्यक्षानुमानोपमानागमै-रविरुद्धमुच्यमान-मुपधारयेति ।”

प्रशंसन्ति चेह प्रत्यक्षसमर्थितस्यैव शास्त्रोपदेशस्य प्रामाण्यं प्राञ्चः । तथा ह्युक्तम्—

“शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः ।

दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः ॥

प्रत्यक्षतश्च यदृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद् भवेत् ।

समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम् ॥” इति (सु० शा० ६अ०)

न च वाच्यं—शल्यतान्त्रिकाणामेव समुपादेयमिदं शास्त्रं न कायचिकित्-
 सकानाम्, ते हि तावत् सुपरिज्ञातैर्वातपित्तकफतत्त्वसूक्ष्मानुसूक्ष्मविशेषैरलं रोगान्निर्णेतुं

न च शारीरम्
 शल्यतान्त्रिकाणामेव
 उपादेयम्

प्रतिकर्तुञ्च सर्वथेति किमनेन बहुपरिश्रमसाध्येन नव्य-
 शास्त्रेणेति । पूर्वोक्तप्रयोजनानां नियतजागरूकत्वात् । न च
 शारीरक्रियाणां प्राकृतवैकृतीनां सम्यगवबोधो वातपित्तकफ-
 तत्त्वैरेव शारीरज्ञानविरहितैः सम्भाव्यते । वातपित्तकफैर्हि

खलु व्यक्ताव्यक्तस्वरूपैः प्रग्रहभूतैः प्रवर्त्यन्ते प्रगृह्यन्ते च शारीर्यः क्रियास्तत्तदाशयाद्य-
 धिष्ठानाः—इत्यनवगतशारीरवस्तु-क्रियास्वरूपस्य वातपित्तकफविवेक एव न पुष्कलः
 सम्पद्यते, किमुत रोगावबोधः । न वा क्वचित् प्रग्रहपरिज्ञानादेव प्रगृह्यमाणपरिज्ञानं
 सम्भवति,—न खलु रश्मिषु परिज्ञातेष्वेव ज्ञायन्ते वाजिनः स्वरूपेण, चिकित्स्यन्ते
 वा सम्यक् तद्रोगाः । न च निदानोक्तरोगाणां सम्प्राप्तिविशेषावबोधः शारीरज्ञान-
 मन्तरेण सम्भवति । तथाहि श्रूयते ज्वरसम्प्राप्तावेव—“दोषा ह्यामाशयाश्रया वहि-
 निरस्य कोष्ठानि ज्वरदाः स्यू रसानुगा”—इति । तत्र चेन्न ज्ञायते भिषजा कस्ताव-
 दामाशयः क्व च कीदृशश्च, कथङ्कारं वा कोष्ठाग्नेर्वहिनिरसनं रसानुगमनञ्चेति,—
 तर्हि किमसौ बुध्येत, किं वा परान् बोधयेत् ? एवं “भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्”
 इत्यत्र ग्रहणीस्थान-संस्थानबोधः, “दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः” इत्यत्र
 रसस्य हृदयप्रवेशक्रमादिवोधश्च सर्वथा शारीरज्ञानापेक्ष इति पदे पदे सन्ति शतशो
 दृष्टान्ताः । तस्मात् शल्यतान्त्रिकाणामेव समुपादेयं शास्त्रमित्यालस्यपरं वचो न युज्यते

१ । अथाऽपरे केचिद् दृष्टान्ताः यथा—“आमपकाशयचरः समानो वह्निसंगतः” (सु० नि०
 १ अ०) । “मूत्रवेगनिरस्ताभिः प्रशमं याति वेदना । यावदस्याः पुनर्नैति गुडिका स्रोतसो मुखम्”

सद्वैद्यमुखेषु । यत्तु “शल्यज्ञानाद्दते नैष वर्ण्यतेऽङ्गेष्वि”ति वचनं, तत् शारीरज्ञान-
प्रदत्वेन शल्यतन्त्रस्योपादेयतां प्रतिपादयति, न पुनः कायचिकित्सकानां शारीराऽनु-
पादेयताम् । यतः खलु सर्वयुर्वेदप्रधानपूर्वाङ्गमिदं शास्त्रं शल्यतन्त्रे विशेषतो दृश्यते
वर्णितं, ततः कायचिकित्सकैरप्यवश्यमध्येतव्यं शल्यतन्त्रमित्ययमस्य ह्यभिसन्धिः ।
कायचिकित्साप्रधाने अग्निवेशतन्त्रेऽपि प्राणाभिसरसद्वैद्यगुणवर्णने दृश्यते—“ते ज्ञेयाः
प्राणानामभिसरा हन्तारो रोगाणां ; तथाविधा हि केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिर्वृत्ति-
ज्ञाने प्रकृतिविकारज्ञाने च निःसंशयाः,” (च० सू० २६ अ०) । तस्मादवहेलित-
व्याकरणस्य वैदुष्यमिव मा तावद्विज्ञातशारीरवस्तुतत्त्वस्य ते वैद्यत्वं विवेकिजनोपहास्यं
भूदित्यलमतसरलेऽपि वस्तुनि वृथावादविस्तरेण ।

एवञ्च प्राञ्चोऽपि परमाद्रियन्ते स्म शास्त्रमिदमायुर्वेदभित्तिभूतम् । तथाह
चरकोऽपि सुश्रुतवत् संशयच्छेदिना वचनेन —

“शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक् ।

आयुर्वेदं स कार्तस्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥” (च० शा० ६ अ०)

न चासीदायुर्वेद एवादरविशेषः शारीरशास्त्रस्य । शतपथ-गोपथ-ब्राह्मणादिषु,
पुराणेषु, पातञ्जलादियोगशास्त्रेषु, विष्णु-याज्ञवल्क्यादिस्मृतिषु,
शारीरे प्राचामादरः । रुद्रयामलादितन्त्रेषु च शारीरविवरणविस्तरस्य स्फुटमभि-
दृश्यन्तां वेदपुराण-धानात् । तथाहि शतपथब्राह्मणे,—“शिर एवास्य त्रिवृत्,
तन्त्रादीनि तस्मात् त्रिविधं भवति,—त्वगस्थिमस्तिष्काः । प्रीवाः

पञ्चदश चतुर्दश वा एतेषां कारुराणि”—इत्यादिर्महान् प्रसङ्गः ।

यास्ककृतनिरुक्तेऽपि—

“अष्टोत्तरं सन्धिशतमष्टाकपालं शिरः सम्पद्यते, षोडश वपावहनानि, नव स्नायु-
शतानि, सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणा”मित्यादि (निरुक्तपरिशिष्टे १४ अ०) ।

(सु० शा०) । “स्थानाच्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः । शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्र-
मश्मरी” (माधव० अश्मरी नि०) । “वृक्कयोः प्लीहि यकृति हृदि वा क्लोमिनि वाऽप्यथ ।
तेषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिर्लक्षणैः (माधव० विद्रधि नि०) । “यदा तु धमनीः सर्वाः
कुपितोऽभ्येति मारुतः” (सु० नि० १ अ०) । पाणिप्रत्यङ्गुलीनां तु कण्डरा याऽनिलादिता । सक्थनः
क्षेपं निगृह्णीयाद् गृध्रसीति हि सा स्मृता” (सु० नि०) । “मन्ये संश्रित्य वातोऽन्तर्यंदा नाडीः
प्रपद्यते । मन्यास्तम्भं तदा कुर्यादन्तरायामसंक्षितम्” (च० चि० २८ अ०) । “आरुह्य-
धमनीर्गत्वा सर्वान् धातून् नयन् रसः (वाग्भटः) । तस्य च हृदये स्थानं स हि हृदयाच्चतुर्वैशति
धमनीमनुप्रविश्य” इत्यादि (सु० सू० १४ अ०) ।

विष्णुधर्मोत्तरे च,—“अस्थनां त्रिभिः शतैः पञ्च्यधिकैर्धार्यमाणम् । तेषां विभागः * * * *”—इत्यादि ।

अग्निपुराणेऽपि—“श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वेत्यादिना” समप्राध्यायेन संक्षेपतः प्रायः सर्वेऽपि शारीरावयवा वर्णिताः ।

याज्ञवल्क्योऽपि^१ स्दसंहितायाम्—“तस्य षोढा शरीराणि षट् त्वचो धारयन्ति च”—इत्युपक्रम्य साङ्गोपाङ्गं शरीरं समासतो व्याचक्षे ।

किञ्चैवं विष्णुस्मृतावपि शेषार्द्धे व्याख्यातं समग्रं शरीरं संक्षेपेण ।

एवञ्च भगवता पतञ्जलिनोपदिष्टं—“नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानमिति”, तदिदं विस्तारयाञ्चक्रे योगिलोको हठयोगप्रदीपिकादिषु ग्रन्थेषु ।

तन्त्रशास्त्रेऽपि रुद्रयामलदौ सविस्तरमाकलयामः सहस्रार-सुषुम्णेऽपिङ्गला-दिस्वरूपं निखिलसंज्ञाचेष्टामूलम् । तथाच सम्प्रति विलुप्तप्रायस्याप्यस्य शास्त्रस्य पूर्वं समादरातिशयः प्राचां नासीदिति न मनागपि शङ्कनीयम् । विलोपः पुनरस्य शास्त्रस्य दुर्दैवकृत इति न तावद् बुद्धिमता हृतधनेन पुनर्नार्ज्जनीयं सर्वार्थसाधनं द्रविणं नवीनम् ।

न च लिप्तप्रायेष्वपीदानीमायुर्वेदमहाजलधिरत्नेषु न लभ्यते परिचयः प्राचीना-
ऽर्वाचीनशारीरनिबन्धानाम् । तथाह्यत्र—

(१) भोजकृतसंहितायाः शारीरस्थानं प्राचीननिबन्धेषु प्रधान-

मभूदिति प्रतिभाति । भोजश्चासौ सुश्रुतसतीर्थो महर्षिरेव प्राचीनार्वाचीनशारीर-
निबन्धानां परिचयः न तु तन्नामा नृपतिरित्यवोचाम, तथाचास्य प्राचीनता निर्विवादैव । भोजकृतशारीरोद्धृताः पाठास्तु बहुधा दृश्यन्ते

डल्लन-चक्रपाणिभ्यामुल्लिखिताः । दिङ्मात्रमिहोदाहरामः ।

तथाच भोजः—

हस्तपादाङ्गुलितले कूर्चेषु मणिवन्धयोः ।

वाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु ॥” इति—

(सु० शा० ५ अ० टीकायां डल्लनः)

पुनश्च तत्रैव “यथाह भोजः—

१ । अग्निपुराणे ३७० अध्याये । २ । याज्ञवल्क्यस्मृतौ यतिधर्मप्रकरणे ।

संघाताः सञ्चिता येस्तु सीमन्तांस्तान् प्रचक्ष्महे” — इत्यादि ।
अवयववर्णनविस्तरश्च तत्रैव भोजकृतो यथा—

“विपुलपिप्पलपत्रसमाकृते-रवयवस्य शिरस्तलमाश्रितम् ।

सकलकामसिरामुखचुम्बितं निगदितं मदनातपवारणम् ॥” इति ।

(२) श्रूयते च प्रायः सहस्रवर्षपुराणः शारीरनिबन्धो—भास्करभट्टकृतः
“शारीर-पद्मिनी” संज्ञः सम्प्रति पाश्चात्यपण्डितैराविष्कृतः । तत्र वर्णितानि
शारीरवस्तूनि प्रायः प्रतिसंस्कृतसौश्रुतमतानुसारेण । तत्पाठाश्च बहुशः समुद्धृताः
श्रीमता डा० हर्नलि समाख्येन पाश्चात्यविदुषा स्वकीये ग्रन्थे । यथाच शवच्छेदादिना
अप्रत्यक्षीकृतशारीरस्य संप्रहमात्रमेतत्, तथाऽस्य शिष्योपयोगितां नाकलयन्ति धीमन्तः ।

(३१४) अस्ति चान्यदपि ग्रन्थद्वयं शारीरविवरणपरं पाश्चात्यदेशेषु
वर्तमानमद्यापि । तच्च—

श्रीमुखकृतं शारीरशास्त्रं, शारीर-वैद्यकञ्च—नाम (केनचिदपरेण
कृतम्) ।

अनयोश्च ग्रन्थयोर्विवरणं Aufrecht's Catalogue इत्याख्यायां संस्कृत-
ग्रन्थसंग्रहसूच्यां द्रष्टव्यम् ।

एषाञ्च शारीरपद्मिन्यादीनां ग्रन्थानां प्राचीनटीकास्वनुद्धारदर्शनादनुपादेयता
नातिप्रसिद्धता वा शङ्क्यते इत्यलमितोऽधिकं सम्भाव्य ।

तदेवं पुरा स्थितेऽपि कदाचित् सुमहति शारीरशास्त्रे सर्वायुर्वेदमूलभूते, प्रायः
अतीत-सपाद-द्विसहस्र-
वर्षेषु शवच्छेदस्या-
ऽशक्यत्वात् शारीर-
शास्त्रस्य दशा-
विपर्यासः ।
सपादद्विसहस्रवर्षतः प्राक् प्रसिद्धबौद्धनृपतेरशोकस्याज्ञया
प्रतिपिद्धे शवच्छेदे, विलुप्तेषु चानन्तरप्रवृत्तराज्यविप्लवशतेन
प्राचीनग्रन्थरत्नेषु शनैः शनैरहीयत शारीरज्ञानं भिषजाम् ।
एवञ्च बौद्धयुगेषु शवच्छेदाद्यशक्तानां निबन्धूणां कल्पना-
कल्पतरोः संरुरोह भ्रान्तशरीरवस्तुविस्तरः प्रत्यक्षविरुद्ध इति

किमत्र चित्रं नाम ? जीर्णबलाभ्यामेव ह्यत्र दृश्यन्ते भूतवेताला निवसन्तः !

अथैवं बौद्धयुगेषु विपर्यस्तवस्तुकं शारीरं यथेच्छं विवृण्वन् सुश्रुतप्रतिसंस्कृता
जीर्णप्रतिसंस्कृतावशेषां सुश्रुतसंहितामापूरयामास स्तोक्-
मात्रेण शारीरस्थानेन । तत्र ह्यसौ दशाध्यायीमात्रमिति
शारीरे सांख्यञ्च गर्भादानादिविधिञ्च गर्भावक्रान्तिञ्च गर्भिणी-
चर्याञ्च कुमारभरणञ्चेति नानाविधप्रासङ्गिकाऽप्रासङ्गिक-

विपर्यस्तशारीरस्य
प्रतिसंस्कृर्तुमिस्तदनु-
वर्तिभिरपरैश्च ग्रहणं
विपर्ययवर्द्धनं च

शारीरशास्त्रस्य उपादेयत्वम्

६६

विषयान् सङ्कलयन् कथमपि ग्रन्थपुष्टिं विदधे, सन्देहे च यथार्थशारीरविवरणे विलुप्तप्राये बहुधा प्रत्यक्षविरुद्धं कल्पनाविजृम्भितं प्रामादिकञ्च वचः । मृतकपरीक्षायास्तदानी-मशक्यत्वाच्च न कोऽपि तन् परीक्षितुमलमासीत् परवर्ती आचार्यः । प्राचीनमहोप-देशस्त्वद्यापि जागर्ति सुश्रुते—

“शोधयित्वा मृतं सम्यग् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः” इति (सु० शारीर० ५ अ०) यथा पुनर्मृतकपरीक्षा न केवलं बहुधा प्रत्यक्षविरुद्धं किन्तु स्वग्रन्थविरुद्धमपि दृश्यते शारीरविवरणं सौश्रुतशारीरे तथाऽपि विशदं दर्शयिष्यामः । एवञ्च योऽसौ “शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठ” इति प्राचीनः प्रवादः, स बृद्धसुश्रुतमधिकृत्य प्रचलितो नेदानीन्तने सुश्रुते भग्नप्रक्षिप्तभूयिष्ठे प्रयोक्तव्य इति निःशङ्कं ब्रूमः । इदानीन्तु हन्त लभ्यमान सुश्रुतमधिकृत्य “शारीरे सुश्रुतो नष्टः”—इत्येव युज्यते विलपितुम् ।

वाग्भटाचार्योऽप्यष्टाङ्गसंग्रहेऽष्टाङ्गहृदये च यथामति वर्णयामास शारीर-वस्तूनि । स च स्वयं बौद्धाचार्यः शक्तेच्छेदाऽशक्तश्च सुश्रुत-चरकयोरवशिष्टं शारीरं बहुधा स्वकपोलकल्पनया पुनर्विपर्यासयाञ्चकार तृतीयेनैव मार्गेणेति सुवेदं शारीर-विद्भिः ।

शार्ङ्गधरस्तु चरकसुश्रुतवाग्भटानां शारीरवर्णनेभ्यः सारमिवार्कषन् स्वल्पैरेव वचोभिः स्वग्रन्थे शारीरलेशं सञ्जग्राह । किञ्चासौ दक्षिणापथे राज्यविप्लवस्याल्पीय-स्त्वादवशिष्टेभ्यः प्राचीनसंहितांशेभ्यो नवीनमपि किञ्चिदन्यत्र दुर्लभं वस्तुजातमुपाहरत् । तद् यथा—आकृष्टश्वासवायोर्गुणकथनप्रसङ्गे—

“नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् ।

कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥

पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः ।

प्रीणयन् देहमखिलं जीवयन् जठरानलम् ॥” इति—

(शार्ङ्ग० पूर्व० ५ अ०)

—तदेतदम्बरपीयूषं विष्णुपदामृतं वा आकृष्टश्वासवायोः सारभूतः प्राणदवायु-विशेषः शोणितशोधनादिसहायः पाश्चात्यबुधैः “अक्सिजेन्” (Oxygen) इति संज्ञया व्यपदिष्ट—इत्यत्र न संशयः । पुराणमपि नवीनायितमिदं तत्त्वमन्यत्र वैद्यकग्रन्थेषु दुर्लभमेव ।

१.॥ आन्तयोऽपि पुनः शार्ङ्गधरे न दुर्लभाः, शक्तेच्छेदसहकृतपरीक्षाविरहात् ।

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः

भावमिश्रोऽपि स्वप्नन्थे गतानुगतिकरीत्या वर्णयति स्म शारीरवस्तुविस्तरम् ।
स च बहुधा प्रमादसङ्कुलः तदीयकल्पनऽनल्पीकृतश्च प्रतीयते विदितवेदितव्यानाम् ।

सोऽयं हन्त वैद्यके साम्प्रतिकः शारीरावशेषः शारीरविपर्ययो वा लभ्यमानः ।
तत्राद्यो विपर्ययक्रमः संज्ञानां व्याकुलीभावादवगन्तव्यः ।
दर्शयितव्ये विपर्यये वस्तु- दर्शयितव्ये च तस्मिन् वस्तुपरिचयस्तावदुपक्रम्यते संक्षेपतः,
परिचयः परिभाषाबीजञ्च । प्रदर्श्यन्ते च बीजान्यस्मत्परिभाषितार्थेषु कासाञ्चित् संज्ञानां
व्यवहारस्य ।

सन्ति खल्विह नानाविधप्रणाल्यर्थेषु प्रयुज्यमानाः संज्ञाः—सिराः, धमन्यः,
तत्राद्यो विपर्ययक्रमः स्रोतांसि, रसायन्यो, नाड्यश्चेति । तासु नाडीतिसंज्ञायाः
संज्ञानां व्याकुलीभावात् । प्राचुर्येण व्यवहारस्तन्त्रशास्त्रेष्वेव, इतरासान्तु सिरादिसंज्ञानां
चरक-सुश्रुत-वाग्भटादिषु बहुधा । न चासां संज्ञानां सर्वथा
पृथगर्थप्रयुक्तानामेकार्थता कथमपि सम्भाव्यते, निखिलशास्त्रार्थव्याकोपप्रसङ्गात् ।
इदञ्चेदञ्च नः प्रत्यक्षं मृतकपरीक्षया, यत् सन्तीह काये चतुर्विधाः प्रणाल्यः प्राधान्येन,
या नामरूपकर्मभिः सर्वथा विभिन्नाः । तासु द्विविधाः शोणितवहाः, एकविधा-
स्तन्वच्छजलवहाः, अपराश्च संज्ञाचेष्टावहाः ।

द्विविधासु च शोणितवहासु काश्चिन्नीलाः प्रायेण त्वचोऽधस्तादाभासमानास्ताः
श्यामाभं रक्तं वहन्ति हृदयाभिमुखम् । अन्यास्त्वरुणाभा गम्भीरावस्थिताश्च । ता

उज्ज्वलारुणं रक्तं वहन्ति हृदयतो वहिर्मुखं सर्वधातुपोषणाय ।
सिरा-धमनीसंज्ञयोः तत्राद्यासु नीलाभप्रणालीषु सिरापदं प्रयुक्तमाचार्यैः स्फुटमेव
परिचयः सिराव्यधाधिकारे, तस्मात् तासां सिरैति संज्ञा स्वीकरणीया ।

अतश्चास्माभिरत्र सिरापदमस्मिन्नेवार्थे निरुद्धम् । अरुणाभासु पुनः शोणितवहासु
प्रणालीषु दृश्यते स्फुटमेव शास्त्रे धमनीपदप्रयोगः सार्थकः, तद्यथा—“तस्य च हृदयं
स्थानं, स हृदयाच्चतुर्विंशतिं धमनीरनुप्रविश्योर्ध्वगाः दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्र-
स्तिर्यग्गाः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयति धारयति यापयति जीवयति
चादृष्टहेतुकेन कर्मणा” इति (सु० सू० १४ अ०) । अस्माभिश्च ईदृशमेव धमनीपद-
प्रयोगं यथार्हमुपलभ्य अस्मिन्नेवार्थे संज्ञेयमिह परिभाषिता ।

तन्वच्छजलवहासु पुनः प्रणालीषु चरके रसायनीति संज्ञा प्रसिद्धा, निरुद्धा च
सा तस्मिन्नेवार्थेऽस्माभिः । स्रोतांसीति संज्ञा तु सुश्रुते पृथक्
परिभाषिताऽपि प्रायो यथेच्छमेव प्रयुक्ता । चरके तु स्रोतांसीति

सर्वविधप्रणालीषु निरुक्ता साधारणी संज्ञा, प्रयुक्ता च साऽस्माभिश्चरकानुवृत्त्या मलमूत्र-
वीर्यादिवाहिषु निखिलेष्वपि मार्गेषु ।

अथ या स्पर्शादिसंज्ञावहा अवयवसङ्कोच-प्रसारणादिचेष्टावेगवहाश्च प्रणाल्यः

नाडीसंज्ञापरिचयः

शरीरे, ताः पीताभतन्तुमध्यो नीरन्त्रास्तन्त्र्यः । तासु हि
विद्युद्ब्रह्मातुमयतन्त्रीष्विव प्रवहन्ति संज्ञाचेष्टाप्रदा वेगाः ।

तासाञ्च समूहितमूलानां प्रधानायतनं पृष्ठवंशान्तरस्थस्तादृशतन्तुगुच्छभृयिष्ठः कमल-
नालाकारः काण्डः सुषुम्णाख्यः, स च शिरोगुहान्तरस्थेन मस्तिष्केणोर्ध्वं संलग्नः ।
अन्यासाञ्च तन्त्रीणां सूक्ष्मतराणां मूलभूते द्वे स्थूलतन्त्र्यौ पृष्ठवंशमुभयतः स्थिते
धनुर्वक्त्रे इडा-पिङ्गलाख्ये । तदेतदखिलं प्रत्यक्षदृश्यम् । परीक्षाशतसिद्धञ्च तासां
संज्ञा-चेष्टावहत्वम् । एतेन च बीजभूतेन परिचयेन सम्यक् संवदति वक्ष्यमाणतन्त्र-
शास्त्रोक्तो नाडीचक्रवर्णनविस्तरः । नाडीचक्रवर्णनञ्च योगियाज्ञवल्क्ये, रुद्रयामले,
निरुत्तरतन्त्रे, शारदातिलके, षट्चक्रनिरूपणादौ च सृयम् । प्रसङ्गविस्तरभिया त्विह
दिङ्मात्रमुदाहरामः ।

एष हि तन्त्रोक्तविस्तरस्य सारः । “नाड्योऽनन्ताः” समुत्पन्नाः सुषुम्णापञ्च-

तन्त्रोक्तविस्तरस्य

सारोद्धारः

पर्वसु”-इत्यनन्तानां नाडीनां मूलभूता मुख्यास्ति एव

नाड्यः—ईडापिङ्गले पृष्ठवंशमुभयतः पुरःस्थे धनुराकारे, सुषुम्णा

तु पृष्ठवंशमध्यस्था ‘चव्यवल्लीव’ बहुसूत्रसंघातमयीति । सा

च “प्रीवान्तं प्राप्य गलिता तिर्यग्भूता” शिरसि सहस्रदलपद्मेन संलग्ना । सहस्रदलञ्चेदं
मस्तिष्कमेव, नान्यत् । तन्त्रोक्तं चक्रषट्कञ्च न काल्पनिकं, न वाऽप्रत्यक्षमूलम् ।
तथाहि पूर्वोक्तप्रधाननाडीत्रितयसंयुक्तैः सूक्ष्मनाडीप्रतानैरारचिताश्चक्राकारनाडीसङ्घाताः
सुषुम्णाकाण्डान्तस्तद्वहिश्च कोष्ठान्तः प्रत्यक्षदृश्याः । तानिहाप्ते यथास्थानं सम्यग-
वर्णयिष्यामः । कर्णिकान्तरीयाः सूक्ष्मतमवर्णादिविशेषास्तु ध्यानगम्या योगिनामेव,
नास्मादृश्याम् । तथाप्येतत् सुस्पष्टं प्रचुरञ्च बीजमुपलभ्यास्माभिस्तन्त्रशास्त्रोक्तार्थानु-
सारेण परिभाषिता नाडीति संज्ञा । किञ्च, परिभाषितार्थे नाडीपदप्रयोगश्चरकेऽपि

१ । इदं शारदातिलकीयं वचनम् । २ । एष निर्देशः “मेरोर्वाहप्रदेशे शशिमिहिरसिरे
संव्यदक्षे निपण्णे मध्ये नाडी सुषुम्णे”ते वचनव्याख्याने षट्चक्रनिरूपणटीकायां दृश्यते । वचनं हि
“सुषुम्णा चव्यवल्लीव मेरुमध्ये परिस्थिता” इत्यादि । अतिमनोहरञ्चेदं स्वरूपानुगतं सादृश्यं,
चव्यवल्ली हि सूत्रगुच्छसंघातमयी भवति । पृष्ठवंशमध्यस्थश्च सुषुम्णाकाण्डस्तादृगेव लक्ष्यते
सूक्ष्मशारीरपरीक्षया । ३ । एषोऽपि पाठस्तन्त्रान्तरात्तत्रैवोद्धृतः ।

दृश्यते, यथा—“मन्ये संश्रित्य वातोऽन्तर्यदा नाडीः प्रपद्यते । मन्यास्तम्भं तदा कुर्या-
दन्तरायामसंज्ञितम् ।” इति (च० चिकि० २८ अ०) इति दिक् ।

नाडीशब्दतश्च लाटिनभाषायां “न्युरन्” इति, पारस्यभाषायां ‘नर्ह’ इति, आंग्ल-
भाषायां ‘नर्भ’ इति च संज्ञाः समुद्भूता इत्यस्माकं सुदृढः प्रत्ययः ।

नाड्यर्थे स्नायुपदप्रयोगस्तु विपर्यस्तेऽपि शारीरशास्त्रे कचिदपि न दृष्टः,
नाड्यर्थे स्नायुपदप्रयोगः प्रचलितस्तु हन्त सोऽय कस्यचिदज्ञानादादौ वङ्गभाषायां
प्रामादिकः परिहर्तव्यश्च तदनुकारेण च कासुचिदन्यास्वपि भारतीयभाषासु । स
चैतर्हि विज्ञैः सर्वथैव वर्जनीयः । स्नायुपदार्थस्त्वस्माभिः परिभाषाध्याये सम्यक्
प्रतिपादितः ।

अथैवमतिसंक्षेपेण सिराधमन्यादिवस्तूनां यथार्हं परिचयमारचय्य सम्प्रति प्रति-
संस्कृतृणां, निबन्धूणाञ्च निरङ्कुशप्रयोगानुदाहरामः ।

तत्र सिरापदस्य सुश्रुते सिराव्यधाधिकारेऽन्यत्र च बहुशो यथायथप्रयोगे
वैद्यके शारीरसंज्ञा- दृश्यमानेऽपि, परिभाषितधमन्यर्थे प्रयोगो यथा—“असृग्-
विप्लवस्य उदाहरणानि वहास्तु रोहिण्यः सिरा नात्युष्णशीतलाः”—इत्यत्र
(सु० शा० ७ अ०)

वाग्भटे धमन्यर्थे सिरापदप्रयोगो यथा—

“दश मूलसिरा हृत्स्थास्ताः सर्वाः सर्वतो वपुः । रसात्मकं वहन्त्योजः”—
इत्यादौ । रसायन्यर्थे सिरापदप्रयोगो यथा—

“शीता गौर्यः स्थिराः कफात्” (सु० शा० ७ अ०) ।

परिभाषितनाड्यर्थे सिरापदप्रयोगो यथा तत्रैव—

“कर्णयोर्दश, तासां शब्दवाहिनीनामेकैकां परिहरेत्” इति—

“व्याप्नुवन्त्यभितो देहं नाभितः प्रसृताः सिराः ।

प्रतानाः पद्मिनीकन्दाद्विसादीनां यथा जलम् ॥”—इति च ।

अत्र हि शेषोक्ते पक्षे मणिपूराख्यचक्रात् समन्ततः प्रसृता नाड्यो लक्ष्यन्ते
विसतन्तुसदृशाः, न पुनः रक्तवाहिन्यः प्रणाल्य—इति स्फुटमेव सूक्ष्मदृशम् ।

अथ कण्डरार्थे सिरापदप्रयोगो यथा सुश्रुते—

“अंसदेशस्थितो वायुः शोषयित्वाऽसवन्धनम् ।

सिरास्त्वाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयत्यववाहुकम् ॥” इति (सु० निदान० १ अ०)

सर्वथा सिरापदार्थव्याकुलीभावः सुश्रुते, यथा—

“धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम् ।

स्वाः सिराः सञ्चरद्रक्तं कुर्याच्चान्यान् गुणानपि ॥” इति (सु० शा० ७ अ०)
न हि सिरासु सञ्चरद्रक्तं स्पर्शज्ञानं साधयति, तद्धि स्पर्शसंज्ञावादिभिर्नाडीप्रतानैः
सम्पद्यते ।

संप्रहृकृतस्तु स्रोतःसाधारणेऽर्थेऽपि कचित् सिरापदं प्रयुज्यते, यथा—

“वीर्यवाहिसिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ” इत्यादौ । (शाङ्ग० पूर्व० ५ अ०)

अथ क्रमादीदृशमपि हास्यास्पदं शारीरमाविर्बभूव यथा, तत्रैव—

“सन्धिवन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः सिराः” इति ।

सन्धिवन्धनकारिण्यो हि स्नायवः, न सिराः । दृश्यतां सुश्रुते सन्ध्यध्यायः ।

एवं धमनीपदस्य सुश्रुते शोणितवर्णनीयाध्याये, चरके चार्थेदृशमहामूल्येऽन्यत्र
च परिभाषितधमन्यर्थे सुप्रयोगेऽपि कचित् परिभाषितसिरार्थे धमनीपदप्रयोगो यथा—

“अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः ।

कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी ॥” इत्यादि

(सु० शा० ४ अ०)

अत्र धमनीततत्वं हि नीलाभसिरावहुलत्वमिति स्फुटमेव ।

परिभाषितनाड्यर्थे धमनीपदप्रयोगाश्च दृश्यन्ते बहुशः । यथा—

“ऊर्ध्वगाः शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-प्रश्वासोच्छ्वास-जृम्भित-क्षुद्रसित-कथित-
रुदितादीन् विशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति ।—इति (सु० शा० ६ अ०) ।

अथ नानाविधस्रोतोऽर्थेषु धमनीपदप्रयोगा यथा—

“मूत्रवस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे, शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे, द्वे च विसर्गाय,—ते एव
रक्तमभिवहतो नारीणामार्तवसंज्ञम्” इति (सु० शा० ६ अ०) ।

अथ पूर्वदर्शितोदाहरणे चरके नाडीपदस्य यथार्हप्रयोगेऽपि नानार्थेषु तत्प्रयोगा

नाडीपदस्य न विरलाः । यत् सत्यं, नाडीपदस्य नानाविधप्रणाल्यर्थे

प्रयोग एव वैद्यके प्रचुरतरो दृश्यते, अस्मत्परिभाषितार्थे तत्-
प्रयोगस्तु तत्रशास्त्रेष्वेव भूम्ना । तत्र परिभाषितधमन्यर्थे

नाडीपदं नाडीविज्ञानग्रन्थेषु दृश्यम् । विस्मयपदञ्चेदं यत् चरक-सुश्रुत-वाग्भटेषु

नाडीपरीक्षाया गन्धोऽपि नोपलभ्यते । न च वाच्यं, नाडीविज्ञानेऽपि धमन्यर्थे

नाडीपदमेव प्रयुक्तमिति, “धमनी जीवसाक्षिणी”—इत्यादौ धमनीपदस्यान्वर्थस्यापि तत्रैव
श्रवणात् ।

किञ्च सुश्रुतेऽपि—‘मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाडी प्रतिबद्धां, साऽस्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति’, (सु० शा० ३ अ०)—इत्यत्र परिभाषित-
धमन्यर्थ एव प्रयुक्तमाद्यं नाडीतिपदं द्रष्टव्यं, सिराधमनीसमष्टयर्थे तु द्वितीयम् । परं
तत्रैवानुपदं धमनीपदस्यान्वर्थप्रयोगोऽपि सुलभः, यथा—“असञ्जाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमा
निषेकात् प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो
जीवयति” इति (सु० शा० ३ अ०) ।

नाडीपदस्य प्रणालिकार्थे प्रयोगास्तु वैद्यके काव्यादिषु च शतशो दृश्यन्ते । तत्र
दिक्—

“द्वारमलभमानः पुनः स्वमाश्रयमवदीर्योत्सङ्गं महान्तमवकाशं कृत्वा नाडीं
जनयित्वा कृच्छ्रसाध्यो भक्त्यसाध्यो वेति” (सु० सू० १७ अ०) । ‘नाडीत्रणं’ इति
प्रयोगश्चेदृश एव, “नाडीन्धम”—इति पदञ्च तथा स्वर्णकारार्थे लोके ।

“सद्यश्छिन्नासु सिरासु रक्तातिप्रवृत्तिः, पकासु च तोयनाडीभिरिव तोयागमनं
पूयास्त्रावश्च”—इत्यत्र च तादृश एव प्रयोगः (सु० सू० २२ अ०) ।

एवं नाडीपदस्य दुग्धवहस्रोतोऽर्थे प्रयोगोऽपि दृश्यते, यथा सुश्रुते स्तनपाक-
चिकित्सायाम्—

“पक्वे च दुग्धहरिणीः परिहृत्य नाडीः

कृष्णञ्च चूचुकयुगं विदधीत शस्त्रम्”—इत्यत्र ।

(सु० चि० १७ अ०)

ननु अमरेण “नाडी तु धमनिः सिरा” इति—नाड्यादिपदत्रयस्य पर्याय-
अमरकोपीयभ्रमः त्वेनाभिधानाद् यथेच्छप्रयोगे को दोष इति चेत् । मैवम् । ईदृश-
तन्निरसनञ्च पारिभाषिकपदानां पृथगर्थतया शारीरेऽवश्यग्रहणीयत्वात्, गृहीत-
त्वाच्च । तथाहि सुश्रुते सिरावर्णनाध्यायः सर्वथा पृथगेव
धमनीव्याकरणाध्यायात् । श्रूयते च तत्र—“अन्या एव हि धमन्यः स्रोतांसि च सिराभ्यः,
कस्माद् ? व्यञ्जनान्यत्वान्मूलसन्नियमात् कर्मवैशेष्यादागमाच्च ।” इति (सु० शा०
६ अ०) । युगपत्प्रयोगश्च सिरादिपदानां दृश्यते यथा—“तासां प्रथमा मांसधरा नाम,
यस्यां मांसे सिरा-स्नायु-धमनी-स्रोतसां प्रताना भवन्ति” (सू० शा० ४ अ०)—इत्यादौ ।
न हि पर्यायशब्दानां कचिद् युगपत्प्रयोगो भवतीदृशः । तस्मादमरसिद्धौ
पर्यायवचनं शारीराऽज्ञानमूलमित्यवसेयम् । एवं वैद्यकेऽपि संज्ञात्रयस्य यथेच्छप्रयोगः

शारीरसंज्ञानां व्याकुलीभावः

७१

प्रतिसंस्कृताणां प्रमादजन्य इति चाऽकामेनापि स्वीकरणीयम् । परमर्षिकृतानां यथार्ह-
प्रयोगाणां विभागानाञ्चाद्यापि बहुधा जागरूकत्वात् ।

स्वोक्तिविरोधश्च संज्ञार्थव्याकुलीभावनिमित्तः सुश्रुते, यथा—सूत्रस्थाने
‘हृदयश्चतुर्विंशति धमनीरनुप्रविश्य’ इत्याद्यभिधाय पुनः शारीरे “चतुर्विंशतिर्धमन्यो
नाभिप्रभवा अभिहिता”—इति सूचनम् । वस्तुतस्तु अन्योः प्रयोगयोराद्ये
परिभाषितधमन्यर्थे, द्वितीये तु नाड्यर्थे धमनीपदस्य प्रयोग इति शारीरानुगतः समाधिः ।

न च वाच्यं—वैद्यके द्विविधास्वपि रक्तवहप्रणालीषु सिरापदं प्रयुक्तं, त्वदुक्त-
नाड्यर्थे तु धमनीपदमिति । सिरापदस्य दर्शितोदाहरणेषु
रसायन्यादिनानार्थेषु प्रयोगदर्शनात्, क्वचित् स्पर्शज्ञानसाधनता-
भिधानात्, वाग्वह-शब्दवहत्वादिसूचनाच्च । धमनीपदस्य च
रसवह-रक्तवहादि-प्रणाल्यर्थेऽपि दर्शितदिशा प्रयोगशतदर्शनात् । तस्मात् सर्वथा
व्याकुलीभूतमिदं संज्ञात्रितयं प्रतिसंस्कृतादोषात्, तद्दर्शनाच्च कोपादौ पर्यायाभि-
धानमित्यलमतिविस्तरेण ।

अन्यो विपर्ययक्रमः अथान्यः शारीरविपर्ययक्रमः शास्त्रनिर्दिष्टानामाशयादीनां
आशयादिवर्णना-
वर्णनाविलोपात् परिचयविरहाच्च दृष्टव्यः । श्रूयन्ते हि शास्त्रे
विलोपात् तत्परिचय-
आशयादीनां संज्ञाः, न च लभ्यन्ते तत्परिचयकानि
विरहाच्च वर्णनानि । तत्र दिङ्मात्रं यथा—

“स्थानान्यामग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।

हृदुण्डुकः फुस्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥” इति

(सु० चिकि० २ अ०)

—इत्यत्राभिहितानामाशयादीनां वर्णनविस्तरः शारीरे यथास्थानं न दृश्यते,
दृश्यते तु किञ्चित् कुत्रचित् प्रसङ्गतः । यथा आमाशयवर्णनं हृद्वर्णनञ्च सुश्रुते
पञ्चमाध्याये नोपलभ्यते, मर्माध्याये तु—“स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायाऽमाशयद्वारं स्त्वरज-
स्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम, तत्र सद्य एव मरणम् ।” (सु० शा०, ६ अ०) इति
निर्देशः । पुनरन्यत्र गर्भव्याकरणे च दृश्यते—“पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्”
इति (सु० शा० ४ अ०) ।

मूत्राशयपरिचयः सौश्रुतशारीरस्थाने नास्त्येव, अस्ति तु प्रासङ्गिको निदान-
स्थाने । यथा—

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः

“नाभि पृष्ठ-कटी-मुष्क-गुद-वंक्षण-शेफसाम् ।

एकद्वारस्तनुत्वको मध्ये वस्तिरधोमुखः ।

अलाव्वा इव रूपेण सिरास्नायुपरिग्रहः ॥” — इति

(सु० निदान० ३ अ०)

‘फुस्फुस’-परिचयश्च सुश्रुते नैव लभ्यते, न वा कचित्तस्य श्वासयन्त्रमित्यभिधानम् । शार्ङ्गधरे तु दृश्यते—“उदानवायोराधारः फुस्फुसः प्रोच्यते वृधै”रिति । न च “शोणितफेनप्रभवः फुस्फुसः” इत्यनेन सौश्रुतवचनेन फुस्फुसस्य स्वरूपज्ञानं सम्भवति । तत्स्वरूपावबोधस्त्वद्यापि कथञ्चिद् गतानुगतिकश्रुतेरेव ।

एवञ्च ‘क्लोम’पदार्थव्याकुलीभावोऽपि स्फुट एव । तथाहि—केचिदामाशयपञ्चाद्वर्तिनि अग्न्याशयाख्ये यन्त्रे ‘क्लोमपदं प्रयुज्यते साम्प्रतिकाः, तत् प्रामादिकम् । यतः “शुष्कक्लोमगलाननः”—इत्यादिप्रयोगदर्शनात् (सु० ३० तन्त्रे ४१ अ०), टीकाकृद्भिः क्लोमनः पिपासास्थानत्वेन निर्देशाच्च गलसमीपवर्ती कोऽप्यवयवः क्लोमेति शक्यमुच्येतुम् । “क्लोम स्याद् गलनाडिका”—इति देवयाज्ञिकभाष्यदर्शनात् सुश्रुतेन मण्डलाख्यस्यास्थिसन्धीनां क्लोमिनि (सु० शा० ५ अ०) दृष्टान्तप्रदर्शनाच्च तरुणास्थिचक्रपरिवेष्टितः श्वासपथः एव कण्ठपुरःस्थः क्लोमेति निश्चयोऽस्माकम्^१ । श्वासपथश्चायं फुस्फुसद्वये प्रविशन् द्वेधा विभक्त इति उरोमध्यतोऽस्य स्थानम् । यत्तु “हृदयस्याधो वामतः प्लीहा फुस्फुसश्च दक्षिणतो यकृत् क्लोम चे”ति सौश्रुतः पाठः, तत्र लिपिकरप्रमाद एव दरीदृश्यते । “हृदयस्याधो वामतः प्लीहा दक्षिणतो यकृदुभयतः क्लोम फुस्फुसौ चे”ति तु साधीयान् पाठः । अन्यथा न केनापि कथमपि शक्यं समाधातुम् ।

‘उण्डुक’—परिचयश्च कापि स्पष्टं न वर्णितः, न च ‘शोणितकिट्टप्रभव उण्डुक’—इत्युक्तेस्तत्स्वरूपावबोधः । समुन्नेयन्तु तत्स्वरूपं कथञ्चित् मलधराख्य-कलाख्यानप्रसङ्गे “उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला”—इत्यभिधानात् । उण्डुको हि नाम बृहदन्नस्याधो भागश्चरके ‘पुरीषोण्डुक’ इति प्रतिपादितः ।

आशयपदार्थाऽज्ञानादर्थव्याकुलीभावश्च प्रतिस्फुटकृतः प्रसङ्गाद् यथा—“तस्य

आमाशयार्थाऽज्ञानात् पुनः संख्यानं—त्वचः कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहानौ
सुश्रुते अर्थ- फुस्फुस उण्डुको हृदयमाशया अत्राणि वृक्कौ स्रोतांसि”—
व्याकुलीभावः इत्याशुपक्रम्य तत्रैव—“आशयास्तु—वाताशयः पित्ताशयः
श्लेष्माशयो रक्ताशय आमाशयः पक्वाशयो मूत्राशयः स्त्रीणां

१। Pancreas. २। Trachea or Tracheo-bronchial tree.

३। प० कृष्णशरित्र कवडे महाशयास्तु क्लोमपदेन गलविलावेष्टनमवयवं (Pharynx) साधयति, क्लोमनिर्णयाख्ये निबन्धे । तच्चाग्रे क्लोमवर्णनप्रसङ्गे विचार्यम् । अन्यानि तु मतानि तुच्छानि ।

शारीरसंज्ञानां व्याकुलीभावः

७३

गर्भाशयोऽष्टम इति” — पुनरुक्तौ । इह हि हृदय-फुस्फुसान्त्रादिभ्यः पृथङ् न सन्ति रक्ताशय-इलेष्माशय-पक्वाशयाद्या आशयाः कचिदपि लभ्यमानवैद्यके, प्रत्यक्षदर्शने वेति नूनमर्थाऽज्ञानमूलोऽयं पृथङ्निर्देशः । अथ यकृतप्लीहानौ रक्ताशयं मन्यसे तत्र रसस्य रक्तीभावोपदेशान् ? तथापि यकृतप्लीहव्यतिरिक्तोऽसौ रक्ताशयः कथमभिहितः ? वस्तुनस्तु — “त्वचः सप्त, कलाः सप्त, आशयाः सप्त” — इत्यादौ ‘समास’वचने यकृतप्लीहादेरन्तर्भाव एवाशयेषु प्राचामभिप्रेतः, तथाचोक्तप्रसङ्गे पाठ-संस्कारः करणीय एव, अन्यथा स्वोक्तिविरोधस्य दुर्वारत्वात् ।

सन्ति च खल्विहाद्यापि लभ्यमाने शास्त्रावशेषे नानाविधाः शारीरसंज्ञा-स्तासामर्थावबोधो दुष्करप्रायः । तदुदाहरणानि यथा — सुश्रुते अश्मरीनिदाने —

‘वस्तिर्वस्तिशिरश्चैव पौरुषं वृषणौ गुदम् ।

एकसम्बन्धिनो ह्येते गुदास्थिविवरस्थिताः ॥”

(सु० नि० ३ अ०)

— इत्यत्र पौरुषं वस्तिशिरश्चेति पदद्वयं दुर्बोधम् । तत्र हि वस्तिशिरस्तावद् तथापीह प्राचीनशारीर- वस्तेः शीर्षभागो वा मूलभागो वेति सन्देहः । पौरुषन्तु संज्ञा अद्यापि बहुशो वर्तन्ते वस्तिमूलस्थो ग्रन्थिविशेषः प्रत्यक्षदृष्टः स्यादिति प्रतीतिः दुर्बोधप्रायाः शारीरविदाम् । न चात्र डल्लोक्तः “पौरुषं मेढ्रम्” — इत्यर्थः सङ्गच्छते, पौरुषस्येह गुदास्थिविवरस्थितत्वाभिधानात् ।

किञ्चैवमश्मरीचिकित्सिते —

सेवनी शुक्रहरणी स्रोतसी फलयोर्गुदम् ।

मूत्रसेकं मूत्रवहं मूत्रवस्तिस्तथाष्टमः ॥”

(सु० चिकि० ७ अ०) इत्यत्र —

निर्दिष्टानां पदानामर्थग्रहोऽपि अज्ञातशारीराणां सुदुष्कर एव । वयन्तु उक्तप्रसङ्गस्य निपुण-विचारविशेषतः प्रतीमः — शुक्रहरणी शुक्रप्रसेचनमार्गद्वयं शिश्रूमूलस्थं मूत्रप्रसेकान्तर्निगूढं शुक्रप्रसेकसंज्ञम् । सामान्ये एकवचनम् । स्रोतसी फलयोः फलकोपयोर्निर्गते वीर्यवाहिन्यौ

१ । हृदयमेव रक्ताशयः, फुस्फुसः इलेष्माशयः, अन्त्राणि पक्वाशयश्चत्यादेः सुप्रसिद्धत्वात्तद्व्यतिरिक्तानां तत्तदाशयानामदर्शनाच्चैत्यमिसन्धिः । २ । Prostate gland — इत्यारूपया प्रसिद्धः । ३ । यद्यपि वृषणावपि न गुदास्थिविवरस्थौ तथापि गर्भावरस्थानकाले बालस्य श्रोणिविवरान्तरेव तयोर्वस्थानात् तथाभिधानं सङ्गच्छते । मेढ्रन्तु तदापि श्रोणिविवरादहिरेव तिष्ठति ।

प्रत्यक्षशारीरस्य उपोद्घातः

मूत्रवहमिति वृक्षाभ्यां विनिर्गतं मूत्रवहस्रोतोद्वयं गवीनीसंज्ञम् । मूत्रसेको मूत्रप्रसेको नाम मूत्रक्षरणमार्गः वस्तितो विनिर्गतः, यः पुंसां शिश्राभ्यन्तरस्थः । (एतत्समुदायस्य विवरणमस्य ग्रन्थस्य आशयखण्डे प्रजननयन्त्रप्रसङ्गे द्रष्टव्यम्) ।

एवं सौश्रुतनेत्रवर्णनप्रसङ्गोऽपि कचित् कचिदतिदुर्बोधः शारीरविदाम्— यथा—“तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत् पिशिताश्रितम् । मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम् ।” इत्यत्र (सु० उत्तर० १ अ०) पूर्वोक्तपक्षमवर्त्मादिपदानामर्थग्रहेऽपि अत्र वक्तुरभिसन्धिर्न सुवेदः । टीकाकृतां तु हन्त सन्देह एवात्र नास्ति ।

अथापरो विपर्ययक्रमः काल्पनिकशारीरसम्भवाद् दृश्यते । इह हि प्रतिसंस्कृतृणां संप्रहृताश्च कल्पनाकल्पतरोरुदियाय नानाविधः शारीर-
अथ तृतीयो विपर्ययक्रमः विवरणविस्तर—इत्यवोचाम । सोऽसावनार्पश्च प्रत्यक्ष-
काल्पनिकशारीरसम्भवात् विरुद्धश्चेति सर्वथा वर्जनीय एव । यथा चैतत्, तथा साम्प्रत-
मुदाहरणैः प्रतिपादयामः ।

तत्रैकमुदाहरणं वस्तौ मूत्रागमनविषयम् । मूत्रं हि नाम वृक्षयोः सहस्रशो-
ऽवस्थितेष्वतिसूक्ष्मेषु आन्त्राख्येषु मूत्रसाविसूक्ष्मप्रणालीमुखेषु नियतं सञ्चयीयते, ततश्च
वृक्षद्वयविनिर्गताभ्यां “गवीनी”संज्ञाभ्यां स्रोतोभ्यां प्रक्षरति मूत्राशये वस्त्यपरपर्याये—
इत्येतदसन्दिग्धं सत्यं प्रत्यक्षसिद्धं परीक्षासिद्धञ्च । यत्तु सुश्रुतेऽश्मरीनिदाने श्रूयते—

“पक्काशयगतास्तत्र नाड्यो मूत्रवहास्तु याः ।

तर्पयन्ति सदा मूत्रं सरितः सागरं यथा ॥

सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मुखान्यासां सहस्रशः ।

नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयान्तरात् ॥

जाग्रतः स्वपतश्चैव स निःस्यन्देन पूर्यते ।

आ मुखात् सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः ।

घटो यथा तथा विद्धि वस्तिर्मूत्रेण पूर्यते ॥” इति—

(सु० निदान० ३ अ०) ।

तत् सर्वथा प्रामादिकम् ।

मा चैवं संस्थाः—परमर्षीणामेवैष मतिभ्रमो, नात्र प्रतिसंस्कृतरपराध- इति ।
यतः, अग्निपुराणे सर्वायुर्वेदमहाकरेऽथर्ववेदे सुश्रुते चान्यत्र च दृश्यते मूत्रनिर्माण-
विषयकस्य यथार्थशारीरज्ञानस्य पुष्कलं प्रमाणम् । तद् यथा—

शारीरसंज्ञानां व्याकुलीभावः

७५

अथर्ववेदे मूत्ररोधप्रसङ्गे शरशलाकया मूत्रसंस्त्रावणप्रसङ्गे मन्त्रः—

“यद् आन्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रितम् ।

एवा ते मूत्रं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥” इति—

अत्र गवीन्योरित्यनेन निःसंशयं वृक्षाभ्यां विनिर्गते मूत्रवहे स्रोतसी लक्ष्येते ।
व्याख्यातश्च सायनाचार्येणापि—“मूत्रस्य मूत्राशयप्राप्तिसाधने पार्श्वद्वयस्थे नाड्यौ
गवीन्यौ इत्युच्येते” इति ।

सुश्रुतेऽपि धमनीव्याकरणे—

“मूत्रवस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे” इति स्पष्टं गवीन्योरेव निर्देशः ।

किञ्चाश्मरीचिकित्सितेऽपि श्रूयते सुश्रुत एव—

“मूत्रवह-शुकवह-मुष्कस्रोतो-मूत्रप्रसेक-सेवनी-योनि-गुद-वस्तीन् परिहरेत् । तत्र
मूत्रवहच्छेदान्मरणं मूत्रपूर्णवस्तेः^१ । शुकवहच्छेदान्मरणं क्लृप्तं वा । मुष्कस्रोत-
उपघाताद् ध्वजभङ्गः । मूत्रप्रसेकक्षणनान्मूत्रक्षरणम् ।” इत्यादि

(सु० चिकि० ७ अ०) ।

अत्रापि मूत्रवहे गवीन्यावेव । मूत्रप्रसेकः शिश्वस्थो मूत्रमार्ग इत्युक्तपूर्वम् ।

अतएव मन्यामहे, पूर्वोद्धृतसन्दर्भे “सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मुखान्यासां
सहस्रशः” इत्युक्त्या परमर्षिणा वृक्षाभ्यन्तरस्थाः सूक्ष्मतमाः प्रणाल्योऽभिलक्षिताः,
ताभिर्हि शनैर्मूत्रं सञ्चिन्वतीभिर्बृक्कद्वये प्रथमं ततश्च वृक्षाभ्यां विनिर्गतयोर्गवीन्योर्मूत्र-
मर्प्यते, गवीनीभ्यान्तु मूत्रस्य मूत्राशयप्राप्तिः । प्रतिस्संस्कर्त्ता पुनरिह शारीराऽज्ञानान्
स्वक्कपोलकल्पनया मूत्राशय एव मूत्रवहा नाड्यः सहस्रशो योजिताः—इति सर्वथा
हास्यास्पदमेवेदं विदितशारीराणाम् ।

अथवा लिपिकरप्रमाद एवात्र स्वीक्रियताम् । तथाहि प्रथमश्लोके ‘तर्पयन्ति

१ । एष मन्त्रः अथर्ववेदस्य प्रथमकाण्डे प्रथमानुवाके तृतीयसूक्ते लभ्यते । अस्य चेदं
सायणभाष्यम्—“आन्त्रेषु उदरान्तर्गतेषु पुरीतवसु । अधि सप्तम्यर्थानुवादे । यत् मूलं संश्रितं
समवस्थितं रोगवशाद् बहिरनिर्गच्छन्निरुद्धमभूत् । तथा गवीन्योः,—आन्त्रेभ्यो विनिर्गतस्य मूत्रस्य
मूत्राशयप्राप्तिसाधने पार्श्वद्वयस्थे नाड्यौ गवीन्यौ—इत्युच्येते । तयोरपि यत् मूत्रं संश्रितम् । तथा
वस्तौ—धनुराकारो मूत्राशयो वस्तिरुच्यते, तत्रापि यत् मूत्रं संश्रितमस्ति । ते तव उक्तस्थानेषु
निरुद्धं तत् मूलं, एवा एवम् यथापूर्वं मुच्यतां निर्गच्छतु । निर्गमनप्रकारमेवाह, सर्वकं सर्वं तन्मूत्रम् ।
वाल—अनुकरणशब्दोऽयम् । इति एवमात्मकं शब्दं कुर्वत् । बहिः शरीराद् बाह्यप्रदेशे । मुच्यता-
मिति सम्बन्धः । २ । गवीन्यौ = Ureters. ३ । अत्र वस्तिपदेन वस्तिदेश उच्यते, अन्यथा
अर्थासङ्गतेः ।

सदा मूत्रं” इत्यत्र “तर्पयन्ति सदा वृक्कौ”— इति पाठ एव साधीयान् प्रतिभाति, “सरितः सागरं यथा तथा मूत्रं तर्पयन्ती”त्युक्तौ सागरमूत्रयोरुपमानोपमेयभावासङ्गतेः । शेषतश्च “घटो यथा तथा विद्धि वस्तिर्मूत्रेण पूर्यते” इत्यस्य स्थाने “घटो यथा तथा वृक्कौ ततो वस्तिश्च पूर्यते” इति पठनीयम्, “विद्धि” इति पदस्य वृथागर्भितत्वादन्यथाऽर्थासङ्गतेश्च ।

अपरश्च शारीराऽज्ञानजन्यः सार्वजनीनप्रायो भ्रमो यथा —

“यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा —

शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद् भिषग्वरः” ।—(सु० शा० ४ अ०)

इति प्राचीनसौश्रुतपद्यदर्शनात् शुक्रस्य स्थानमेव नास्तीति मन्यन्ते केचिद् भिषजः । वस्तुतस्तु शुक्रं नियमेन फलकोपयोर्निर्मायते, सञ्चीयते च शुक्राधारयोर्वस्तिपाद्वर्गतयोः शुक्रवहाभ्यां स्रोतोभ्याम् । अतएव चरके —

“शुक्रवहानां स्रोतसां वृषणौ मूलम्” इत्यादि (च० विमान० ५ अ०) । सुश्रुतेऽपि—“शुक्रवहच्छेदान्मरणं क्लैव्यं वे”ति स्पष्टमुच्यते । न च शुक्राधारयोर्ज्ञानाभावः परमर्षीणां सम्भवति, यतश्चरके वाजीकरणपादे नक्रशुक्रं व्यवस्थितम्, न च तत् शुक्रधारच्छेदमन्तरा लभ्यते ।

“यथा पयसि सर्पि”रित्याद्यभिधानन्तु सर्वशरीरचरं सूक्ष्मतरं शुक्रसारं लक्षयति । अस्ति हि स्थूलं शुक्रं व्यवायादौ प्रच्यवन्—“स्फाटिकाभं द्रवं स्निग्धम्”, —इतिलक्षणम् । अस्ति चापरं सूक्ष्मतरं परमसारभूतं शुक्रं, यस्मात् पुंस्त्वव्यञ्जकश्मश्रु-पौरुषाकृतिविशेषः सम्भवन्ति, यदभावाच्च कृतकनपुंसकानां वलीवर्दादीनां च नाविर्भवन्ति श्मश्रु-ककुदादीनि पुंस्त्वलिङ्गानि । तदेवं शुक्रद्वैविध्ये सिद्धे सूक्ष्मतरं शुक्रमभिप्रेत्य “यथा पयसि सर्पि”रित्यादि प्राचां वचनं व्याख्येयम् ।

अथ चतुर्थः शारीरविपर्यासक्रमो लिपिकरप्रमादजन्य इति निर्विशङ्कं ब्रूमः । तदुदाहरणानि यथा —

चतुर्थः शारीरविपर्ययक्रमो “पित्तपकाशयमध्ये गर्भाशयो यत्र गर्भस्तिष्ठति” (सु० शा० ५ अ०) इत्यत्र “वस्ति पकाशयमध्ये” इति पाठो भवितुमर्हति, शरीरे तथैव दर्शनादन्यथा प्रत्यक्षविरोधाच्च ।

किञ्च — “द्वयङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ।

मूत्रस्रोतः पथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते” । (सु० शा० ४ अ०)

१ । इदं पाश्चात्यशरीरे—Internal secretion of the Testicles—इत्याख्यया प्रसिद्धम् ।

शारीरसंज्ञानां व्याकुलीभावः

७७

—इत्यत्र “द्वयङ्गुले दक्षिणे वामे”—इत्येव साधीयान् पाठः । अन्यथा प्रत्यक्ष-
विरोधान् स्वोक्तिविरोधाच्च । श्रूयते हि “शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय, द्वे शुक्रविसर्गाय
चे”ति सुश्रुत एव (सु० शा० ६ अ०) ।

तदेतत् क्रमचतुष्टयं वैद्यके शारीरविपर्यासस्य । इदन्तु परमत्र विस्मयपदं
यदित्थं विपर्यस्तेऽपि शारीरे न केवलमुपलभ्यन्ते सत्यसिद्धान्त-
सन्ति च विपर्यस्तेऽपि शारीरे प्राचां सत्यसिद्धान्त-
ज्ञावसूचकानि प्रमाणानि बोधकानि प्रमाणानि, काश्चिन् संज्ञाश्चाद्यापि, किन्तु रक्त-
ज्ञावसूचकानि प्रमाणानि संवहनादिशारीरक्रियावर्गनसूत्राण्यपि बहुशः । रक्तसंवहनक्रिया
यथा रक्तसंवहनक्रिया-
वर्गनम् । हि नाम सार्वकायिकस्य रक्तस्य उत्तराधर-महासिराभ्यां
संगृहीतस्य हृदयदक्षिणाद्धे प्रवेशस्ततो हृत्पेशीपीडनान्
फुस्फुसयोगत्वा तत्र ‘विष्णुपदामृत’-संयोगान् परिशोधितस्य तस्य पुनर्हृदयवामाद्धे
प्रत्यागमेनं, ततस्तस्य सर्वशरीरप्रचारो धमनीभिस्ततश्च पुनः सिरामी रसायनीभिश्च
संगृहीतस्य तस्य महासिराभ्यां हृदयदक्षिणाद्धे पुनःप्रवेशः—इति सुपरीक्षितं परीक्षकैः ।
तदेतत्तत्त्वमाविष्कुर्वतां प्रतीच्यकोविदानां नाद्यापि वर्षशतत्रयमत्यगात्, परमधुनाऽपि
प्राचीनशारीरशेषे श्रूयते—

“दश मूलसिरा हृत्स्थास्ताः सर्वं सर्वतो वपुः । रसात्मकं वहन्त्योज” इति—
(अष्टाङ्गहृदय० शा० ३ अ०)

सुश्रुतेऽपि “तस्य च हृदयं स्थान”—मित्यादिपूर्वोद्धृतः सन्दर्भ एतदेव लक्षयति,
धमनीभिः सर्वशरीरे रसप्रचारस्य वर्णनात् । चरकेऽपि -

“यत् सारमादौ गर्भस्य यत्तद्गर्भरसाद्रसः ।

संवर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत् पुनः ।”—

(च० सूत्र० ३० अ०)

इति पाठोऽपि गर्भस्थशिशोः रक्तसंवहनसूचक एव । श्वासवायुना “विष्णुपदामृत”ग्रहणं
तु शाङ्गधरोक्तं दर्शितपूर्वम् ।

तन्त्रोक्तः पट्चक्रविस्तरश्च प्राचां शारीरज्ञानमपूर्वं बोधयति । तत्र दिगिहैव

दर्शितपूर्वा । दृश्यते चापरं किञ्चित् । तथाहि श्रूयते—

(२) पट्चक्रविज्ञानञ्च

पट् चक्राणि शरीरे मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूराऽनाहत-

विशुद्धाऽज्ञासंज्ञानि । तत्र मूलाधारस्तावत् “ध्वजाधो गुदोर्ध्वम्”, “खगाण्डवद्” उच्यते

—तदेतत् ग्रन्थ्याकारं दृश्यते मृतके गुदास्थिपुरस्ताद् ईडापिङ्गलाख्यनाडीद्वयमूलभूतम् ।

तच्च पाश्चात्यानां—Ganglion Coecygeum Impar—इत्याख्यया प्रसिद्धमित्यस्माकं निर्णयः । स्वाधिष्ठानचक्रं “ध्वजमूले”ऽवस्थितं, तच्च पाश्चात्यानां शारीरे—Hypogastric Plexus इत्याख्यया प्रसिद्धं नाडीचक्रमिति प्रतिभाति । मणिपूरचक्रं नाम “तस्योर्ध्वे नाभिमूले” स्थितं नाडीचक्रं प्राचां,^१ स च पाश्चात्यानां—Solar Plexus—इति प्रसिद्धश्चक्राकारो नाडीसंघात एव । “तस्योर्ध्वे हृत्प्रदेशे”ऽवस्थितं पुनरनाहताख्यं चक्रं पाश्चात्यनये—Cardiac Plexus—इत्याख्यया प्रथितो नाडीजात-विशेषः प्रतीयते । विशुद्धाख्यं तु चक्रमभिन्नं—Carotid Plexus—इत्याख्येन नाडी-चक्रेणाकण्ठदेशावस्थितेन । आज्ञाचक्रं पुनर्भ्रूमध्यानुपूर्व्याऽवस्थितं पाश्चात्यनये—Cavernous Plexus—इत्यनेन तुल्यार्थमिति नः प्रतीतिः* । सर्वोर्ध्वं च शिरसि विन्यस्तं सहस्रारं सर्वज्ञानायतनं, तच्च मस्तिष्कमेवेत्यत्र न सन्देहः । तदेतदखिलं सूक्ष्मानुसूक्ष्मविशेषविवेकेन सम्यग् बुबुधिरे प्राञ्चः—इति षट्चक्रनिरूपणाद्यालोचनया दृढं प्रतीमः । कालवशात्तु हन्त प्रविलुप्तप्रायमार्षज्ञानमाविर्भूतानि च ज्ञानार्जनकण्ट-कानि शतशः—इति नैषा प्राचां वचनीयता ।

अथैतर्हि सम्पादनीये शारीरप्रतिसंस्कारे द्विविधमिहोपकरणमुपलभामहे—
 कर्तव्ये शारीर-
 प्रतिसंस्कारे द्विविधं
 साधनम्
 प्राचीनशारीरञ्च प्रत्यक्षविज्ञानञ्चेति । तत्र प्राचीनशारीरं तावद् बहुधा विपर्यस्तमपि नानाविधज्ञाताऽज्ञातसंज्ञाना-माकरभूतमद्यापि वरीवर्त्ति । वस्तुपरिचयसाधनानि चात्र नैकधा दृश्यन्ते यतस्ततः प्रासङ्गिकानि, भग्नावशेषहर्म्येषु महार्घरत्नानीव रजोधूसराणि । प्रत्यक्षविज्ञानं पुनर्मृतकपरीक्षयाऽर्जितमिदानीमपरं साधनं सर्वसन्देहनिराकरणम् । न चेदमायत्तं नव्यानामेव, नवैतत् तेषामेव शास्त्रं, प्रत्यक्षज्ञानस्य सर्वजनसम्पाद्यत्वात् । न च नाकलयामः प्राचामुपदेशं प्रत्यक्षपरीक्षण-विधायकं बहुधा । यत्र यत्र तु पुनरुपलभ्यते प्रत्यक्षविरुद्धं शारीरं, दिष्ट्या तत्र तत्रैव प्रायो विषयेऽन्यत्र प्रत्यक्षानुगतसिद्धान्तबोधकानि सन्त्यपराणि प्राचां वचांसि । तथा च लभ्यमानानि प्रत्यक्षविरुद्धवचनानि प्रक्षिप्तानि वा, प्रतिसंस्कृत्कल्पनोत्थानि वा, लिपिकरप्रमादकण्टकितानि वेति युज्यते वक्तुम् ।

१ । “सिराभिरावृतो नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः” इत्यादिप्राचीनप्रयोगश्च एतदेव चक्रं लक्ष्य-तीति नः प्रत्ययः ।

* अत्रेदमवधेयम् । द्विविधानि हि षट्चक्रवर्णितानि नाडीचक्राणि—बाह्यानि आभ्यन्तराणि च । तत्र बाह्यानि यथोक्तानि स्थूलानि, आभ्यन्तराणि तु सुषुम्णाकाण्डान्तर्निगूढानि तत्तन्मूलानि सूक्ष्माणि । तद्विवरणं मूलग्रन्थे नाडीखण्डस्य द्वादशाध्याये द्रष्टव्यम् ।

शारीरसंज्ञानां व्याकुलीभावः

७९

इत्थंगते चेदानीं शारीरप्रतिसंस्कारः षोढा संविधातव्यः—

(१) प्रसिद्धानां कासाच्चित् प्राचीनसंज्ञानां परिभाषानिर्द्धारणेन, (२) अनति-
 प्रसिद्धानामप्रसिद्धानां वाऽपरासां संज्ञानामाविष्करणार्थनिर्ण-
 शारीरप्रतिसंस्कारस्य पङ्क्तिविधौ विधिः— याभ्याम्, (३) प्राचीनसंज्ञाऽलाभे नवीनसंज्ञानां निर्माणेन,
 (४) प्रत्यक्षदृष्टशारीरस्य सम्यग्वर्णनेन, (५) प्रत्यक्षानुगत्या
 प्रामादिकषाठ-संशोधनेन, (६) दृश्यविषयैः प्राचीनशारीरस्य यथासम्भव सामञ्जस्य-
 सम्पादनेन चेति । तत्र—

(१) प्रसिद्धानां प्राचीनसंज्ञानां परिभाषानिर्द्धारणविधिः सिराधमन्यादि-
 परिभाषानिर्णयः पदानामर्थविचारप्रसङ्गे सूचितपूर्वः । स च प्रसिद्धसंज्ञानामर्थ-
 विशेषेषु निरोधेन सुकरः ।

(२) अनतिप्रसिद्धानां संज्ञानामाविष्करणमर्थनिर्णयश्च यथा शक्यते
 अप्रसिद्धप्राचीन- कर्तुं तदुदाहरणमथर्ववेदिनिर्दिष्टानां गवीन्यादिपदानामर्थविचारे
 संज्ञानामाविष्कारः प्रादर्शयाम । याश्च वैद्यके मूत्रवह-मूत्रप्रसेकादिसंज्ञा दर्शित-
 चरास्ता अनतिप्रसिद्धा अपि ज्ञेयार्थाः श्रमविशेषेण । सन्ति
 च तन्त्रेषु काश्चिदीडा-पिङ्गलाद्याः संज्ञा यासामर्थनिर्द्धारणमकरवाम । सत्सु चैवं
 नानाशास्त्रप्रकीर्णेषु बहुषु संज्ञाशब्देषु तदर्थद्योतनाय न निर्माणीयाः न वा प्रयोज्याः
 संज्ञा नवीनाः—अन्यत्र प्रसिद्धतरसंज्ञाभ्यः । दृश्यन्ते हि वेदेषु काश्चन संज्ञाः
 शारीरवस्तुपराः, याः प्रायेणाश्रुतपूर्वा वैद्यैः । यथा-अनूकम्, पुरीतत्, गवीन्यौ,
 वनिष्ठः, प्रावस्तुत् - इत्यादयः । सन्ति च वैद्यकग्रन्थेष्वपराः, यथा-कृकाटिका-
 कुकुन्दरगोजिहिकादयः । तन्त्रेषु चान्याः, यथा—कुहूः, हस्तिजिह्वा, अलम्बुषा—
 इत्यादयः ।

(३) प्राचीनसंज्ञाऽलाभे नवीनसंज्ञानां निर्माणन्तु शारीरवर्णनविधौ बहुधा-
 नवीनसंज्ञानिर्माणम् ऽवश्यकमुपलभ्यते । तत्र च छित्थ-डवित्थादिवन्निरर्थकसंज्ञा-
 करणादन्वर्थानां श्रुतिसुभगानाञ्च संज्ञानामेव निर्माणं श्रेयः ।

(४) प्रत्यक्षदृष्टशारीरस्य सम्यग्वर्णनं तावदल्पैः पदैरितिदुष्करम् । अस्ति
 प्रत्यक्षदृष्टशारीरस्य सम्यग्- ह्यत्र पाश्चात्यानां शारीरं प्रभूतविस्तरं यस्यैकैको ग्रन्थश्चरक
 वर्णनम् सुश्रुतवाग्भटानां समष्टिकोटिमारोहति विशालायतनेन । न च
 तादृशं विपुलविस्तरमधीयेरन् वैद्यकविद्यार्थिनो वर्णनबाहुल्यात् ।
 न चातिसंक्षेपे कृते सम्यगर्थोऽवबुध्येत, शारीरविषयानामश्रुतचरत्वात्, प्रत्यक्षमन्तरेण

दुरधिगमत्वाच्च । एवञ्च प्रत्यक्षानुकल्पभूतानि चित्राण्यपि बोधसौकर्याय बहुधा प्रयोज्यानि, तानि च बहुश्रमसम्पाद्यानि प्रचुरव्ययसाध्यानि च ।

(५) प्रत्यक्षानुगत्या प्रामादिकपाठसंशोधनविधिरपीह प्रदर्शितचरः । अप्रामादिकपाठसंशोधनम् राणि च पाठसंशोधनानि इहैव प्रादर्शयाम सविचारम् ।

(६) प्रत्यक्षदृश्यविषयैः प्राचीनशारीरस्य सामञ्जस्यविधानं तावद् बहुश्रमविचाराभ्यां दुःखसाध्यमपि करणीयमेव, प्राचीनप्रत्ययिनां नव्य-प्राचीनशारीरयोः सन्देहनिराकरणाय । दृश्यन्ते हि प्राचीनशारीरे केचना-सामञ्जस्यविधानम् । पातविरुद्धा विषयाः, येषां विरोधो न केवलं प्रत्यक्षदृश्यशारीरेणैव, किन्तु परस्परमपि स्वोक्तिभिः । तथाहि चरकयाज्ञवल्क्यादिषु पृथ्यधिकं शतत्रयमस्थानां परिगण्यते, सुश्रुते तु शतत्रयं, नव्यशारीरे तु शतद्वयमेव । अस्य पुनः समाधानम्,—“आपातविरुद्धादिनोऽपि सर्व एवैतेऽवितथमाहुः—गणनाप्रकारभेदात् । तथाहि वेदादिनो नखदन्तादीनस्थिगणनायामन्तर्भावयन्ति, नैवमितरे । तरुणास्थीनि दशान्श्रगणयन्ति शल्यतन्त्रविदः प्राच्याः, नैवं प्रतीच्याः । पृथग् व्योमग्रहणाच्च । प्राञ्चो हि यौवनप्रविष्टस्य सञ्चक्षतेऽस्थीनि, पञ्चविंशतिवर्षदेशोयस्य तु प्रतीच्याः”—इत्यादिना मूलग्रन्थे वक्ष्यते । अपराणि च विरोधपरिहारस्य कानिचिदुदाहरणानि यथा ।—सुश्रुते श्रूयते “पार्श्वे षट्त्रिंशदेवमेकस्मिन्, द्वितीयेऽप्येवम्” इति, नव्यमते तु एकैकस्मिन् पार्श्वे द्वादशैव पर्शुकाः—इति विरोधः । तत्समाधानञ्च सुश्रुते एकैकस्मिन् पार्श्वे द्वादश पर्शुकाः, द्वादश उपपर्शुकाः, द्वादश पर्शुकामूलभागाश्चेति गणनया सुकरम् । पर्शुकामूलभागा हि तन्मुण्डसहिताः पृथगेव दृश्यन्ते आ पञ्चविंशतिवर्षात् । एवं च सुश्रुते—“एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि, तानि पञ्चदश । तलकूर्चगुल्फसंश्रितानि दश । पाण्यामेकम् । जङ्घायां द्वे । जानुन्येकम् । एकमूराविति । त्रिंशदेवमेकस्मिन् सकृन् भवन्ति”—इत्यादौ “एकैकस्यां तु पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि द्वे अङ्गुष्ठे इति चतुर्दश । तलकूर्चगुल्फसंश्रितानि एकादश”—इति पाठसंशोधनं प्रत्यक्षानुगत्या सर्वथा युज्यते, अन्यथा सन्धिवर्णनोक्तेन ‘एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रयस्त्रयो द्वाद्वङ्गुष्ठे, ते चतुर्दश’ इति स्ववचसा विरोधो दुर्वारः—इति दिक् ।

तदेतदखिलं प्रतिसंस्कारविधिं स्मारं स्मारमस्माभिर्यथा मतिश्रमपरैः प्रत्यक्षशारीराल्लोऽयं ग्रन्थो निरमायि । अत्र चादौ शिष्याणां सम्यगवबोधाय स्वपरिभाषासाधु निरूपिताः नवीनसंज्ञाश्च तदन्वर्थताञ्च स्मरणसुखताञ्च प्रकल्प्य यथाशक्ति प्राचां प्रदाङ्कानुसारत एवोद्भाविताः । गृहीताश्च वेदादिभ्यो वैद्यकग्रन्थेभ्यश्च नवीनायिताः

शारीरसंज्ञानां व्याकुलीभावः

८१

काश्चित् पुराण्यः संज्ञा गवीन्यादयः । प्रत्यक्षदृष्टशारीरस्य वर्णनन्तु यावच्छक्यमलैरेव पदैः शिष्योपयोगितां मनसिकृत्य व्यधायि । चित्राणि चानल्पानि विषयावबोध-सहायकानि श्रमलाघवञ्च व्ययकार्पण्यञ्चाऽकृत्वैव संयोजितानि । प्रदत्तानि च शारीर-संज्ञानां नवीन-पुराणानां निरूपणसौकर्याय पत्राधस्तनीषु टीकासु आंग्लभाषासंज्ञाः, दुर्बोधपदानां सरलार्थाश्च । एवं हि पाश्चात्यवैद्यकमात्रज्ञानां डाक्टर-पदवाच्यानां भिषजामपि साहाय्यमज्ञातशारीराणां वैद्यविद्यार्थिनां सुलभं स्याद्, अर्थाश्च साधु प्रतीयेरन् ।

इदञ्चेह कृपया विमृशन्तु प्रेक्षावन्तो यदेष प्रत्यक्षशारीराख्यो ग्रन्थः कस्यचिदपि न चायं ग्रन्थः कस्यचित् पाश्चात्यशारीरग्रन्थस्यानुवादो न भवतीति । यैर्हि खलु पूर्वं पाश्चात्यविद्याप्रवीणैस्तेषां ग्रन्थेषु तादृशानुवादो विहितः पाश्चात्यविद्याप्रवीणैस्तेषां ग्रन्थेषु दृश्यतेऽतिदारुणः संज्ञाविपर्ययो दुर्बोधता च, बहूनां प्राचीन-संज्ञानां निरङ्कुशप्रयोगात्, पाश्चात्यसंज्ञानां तादवस्थेनोपलम्भाच्च । न हि तादृश-मप्राच्यमपाश्चात्यं भाषासङ्करं सम्यगुच्चारयितुमलं वैद्यविद्यार्थिनः, किं पुनर्बोद्धुम् । एवंविधहेतोरतिविस्तराभिधानाच्च तत्र न भिषजामुन्मुखीभावः, नापि तेनायुर्वेदोप-कारः । तदिदमाकलयतामस्माकं श्रमराशिं कृततादृशश्रमा एव बुध्येरन् । साफल्यन्तु पुनरस्मदग्रन्थस्य निरवधिना कालेन विशेषज्ञजनैश्च निर्णेष्यते ।

एतत् परमतीव सन्तोषमावहति नः, यद् ये खलु विद्यार्थिनो भिषजश्च ज्ञान-पिपासवो नानादिग्देशागताः प्रत्यक्षशारीरस्याद्यभागमस्माभिरध्यापिताः—तैः सुगम एवामन्यत दुर्बोधोऽप्ययं विषयः । स्मरन्ति च ते सुखेनैवेदृशान् स्मारकश्लोकान् नीरस-दुःस्मर-विषयानधिकृत्य— यथा—

“झर्झरञ्च जतूका च शुक्तिका चाथ सीरिका ।

स्वसंज्ञञ्चोर्ध्वहन्वस्थि तालवस्थना संहितानि पट् ।”

(प्रत्यक्षशारीरे तालवस्थिवर्णने)

अथैवं सुमहता प्रयत्नेन साधितेऽप्यस्मिन् ग्रन्थविरचनकार्ये अस्मददृष्टिदोषाद्वा त्रुटीस्वीकारः मुद्राकरत्रुटीनां दुष्परिहरत्वाद्वा अस्मादृशाल्पज्ञजनश्रम-क्षमाप्रार्थना च प्रमादसौलभ्याद्वा यत्र यत्र स्वलनमभूत्तत्र तत्र दोषज्ञ-जन-करुणैव नः शरणम् । प्रार्थयामहे च प्रवीणान्—गुणमात्रपक्षपातपरायणैरत्रभवद्भि-रध्ययनाध्यापनाभ्यामस्मदग्रन्थस्य सफलीकरणीयो नः श्रम इति । मा भूदतः-

परमुपहास्यता प्राच्यवैद्यानां पाश्चात्यवैद्यैः शारीराऽज्ञाननिमित्तम्— इत्येव नस्तेषु
विनयाञ्जलिः ।

इदञ्चावसाने निवेद्यम्—

आ-काश्मीर-कुमारिकं कृतधियाम् आ-चट्टल-द्वारकं
येषां^१ पत्रशतैरिहाऽस्म सुतरां प्रोत्साहिता दुर्गमे ।
येषाञ्चाथ नियोगतः श्रममिमं सत्यं लघुं मन्महे
तेषामेव कृतित्वमत्र न तु नोऽनुज्ञावहा वै वयम् ॥

इयञ्चापरा प्रार्थना—

अनभिज्ञातशारीराः प्रमादानपरैः कृतान् ।
मोहादृषीणां^२ शिरसि येऽर्पयन्ति पदे पदे ॥
तेऽधीयतामुपोद्घातं सावधानं कृपालवः ।
विमृशन्तु च भूतार्थान् प्रविलोक्य स्वचक्षुषा ॥
नास्माभिर्दुषिताः कापि गुरवः परमर्षयः ।
प्रत्यक्षपरिदृश्यार्थं वेदेष्वद्यापि^३ तद्वचः ॥

कलिकातामहानगर्या

सं १६७१ ।

}

इति—विद्वज्जनकृपार्थिनः

श्रीगणनाथसेनशर्मणः ।

१ । तानि च पत्राण्यद्यापि सुरक्षितानि स्मरणाय । २ । “एतानि आर्षवाक्यान्वेव”
इति जल्पनं तेषां व्यामोहमूलमेव, ततश्च त एव ऋषिदूषकाः, न वयम्—इत्यभिसन्धिः । ३ । वेदोक्तं
हि शारीरमद्यापि न विकलमिति भावः ।

प्रत्यक्षशारीरस्य चतुर्थावृत्तिमुद्रणे

ग्रन्थकर्तृनिवेदनम्

निखिलकल्याणगुणाकरस्य श्रीमन्नारायणकरुणावतारस्य भगवतो धन्वन्तरेः कृपया प्रत्यक्षशारीरस्य तिस्रो मुद्रणावृत्तयः समाप्ताः । तेन चतुर्थमिदं संस्करणं शिष्योपयोगितां विचार्य परिवर्तन-परिवर्धनाभ्यामुपवृंहितं प्रकाश्यते । अत्र च पूर्व लेशोक्ताः केचन विषयाः सम्यग् विस्तारिताः, विस्तरोक्ताश्च कचित् कचित् संक्षेपिताः, सूक्ष्मशारीरादिविषयाश्चानुक्तपूर्वाः यथास्थानं संयोजिताः सह नवीनैश्चित्रैः । भूयस्तर-मुपदिष्टानि च शारीरक्रियाविज्ञानतरुवानि ।

पादटिप्पण्यश्चात्र स्पष्टतरीकरणाय संवर्धिताः संयोजिताश्च सुस्पष्टतरपरिष्करणाय प्राचीनप्रमाणैः । परिशिष्टे च पारिभाषिकसंज्ञानां वर्णानुक्रमिकी सूची सहांग्ल-परिभाषाभिः प्रकाशिता । आशास्यते चेत्थं ग्रन्थकर्त्रैव प्रतिसंस्कारनवीकृतोऽयं ग्रन्थः प्रियतरतां प्राप्स्यति शिष्याणामध्यापकानाञ्च ।

हन्त महानयमनुग्रहो मयि भगवतः परमेश्वरस्य यद् रोगजराजीर्णस्यापि मे नाहीयत सामर्थ्यमस्मिन् प्रतिसंस्कारकर्मणि । तथापि प्रथमभागस्यैवायं प्रतिसंस्कारः, द्वितीयतृतीयभागयोस्तु नाद्यापि तदावश्यकताभूत् । मन्ये यथाकालं तत्रापि प्रभविष्यामि — यद्यायुर्न क्षीयेत ।

इदञ्चात्र विदांकुर्वन्तु विद्वांसः—प्रत्यक्षशारीराद्यभागद्वयस्य वङ्गभाषया हिन्दी-भाषया चानुवादः पृथगेव प्रकाशितो मदीयैः शिष्यजनैः शिष्यजनोपकाराय । तृतीय-भागस्यानुवादोऽपि शीघ्रं प्रकाशमेष्यतीति सम्भाव्यते । एवञ्चास्य गुजरातीभाषानु-वादोऽपि प्रथितयशसां सुहृद्वर्याणामायुर्वेदमार्तण्ड प० श्रीयादवत्रिक्रमाणामनुरोधेन प्रदत्तयास्मदनुज्ञया आहमदावादस्थ डा० बालकृष्ण पाठक (M. B., B. S.) महाशयैः स्वव्ययेन व्यधायि, प्रकाश्यमनायि च मुम्बय्याम् । एवञ्च शारीरज्ञानस्यावश्यकता साम्प्रतं सम्यगुपलभ्यते वैद्यैरित्याकलय्य हृष्यति नश्चेतः ।

किञ्च, भारतीयनानादिगद्देशेषु कार्यप्रसङ्गात् पर्यटतो मे प्रसिद्धनगरेषु सुविशाल-

[२]

सभाह्वानपुरःसरं यानि यान्यभिनन्दनपत्राणि प्रदत्तानि प्रत्यक्षशारीरादिकृतिकृतज्ञैर्देह-
वरैस्तेषामानृण्यमद्याऽपि नाशकम् विधातुं सिद्धान्तनिदानादिग्रन्थसमापनेनेति कृतागस-
मात्मानं मन्ये । तच्च निराकर्तुं यथाशक्ति प्रयत्यते ।

अथेदमपरं प्रमोदस्थानं नः, यदधुना मद्राज-मुम्बई-युक्तप्रदेश-विहार-वङ्गदेशादि-
नानाप्रदेशेषु ब्रिटिशगवर्णमेण्टानुज्ञानात् राजानुमोदितेयं दिष्ट्या वैद्यकविद्या वङ्गदेशादन्यत्र
सर्वत्रापि (अन्यत्र वङ्गदेशात्) राजकीयार्थसाहाय्यं भूरि वाऽल्पं वा लभते । एवञ्च
सम्यगुपचीयमानेयमष्टाङ्गवैद्यकविद्या सुरचितग्रन्थानां प्रणयन-प्रकाशनाभ्यां तदध्ययना-
ध्यापनाभ्यसनैश्च वर्धितश्रीरचिरादेव रुजार्त्तप्रजाप्राणत्राणायाधिकाधिकं प्रभविष्यतीति
शक्यं सम्भावयितुम् ।

अन्यच्चास्मिन् प्रसङ्गे विज्ञापनीयम्—“प्रत्यक्षशारीर”ग्रन्थस्य निखिलभारतीय-
वैद्यसम्मेलनेन वैद्यविद्यार्थिनामवश्यपाठ्यत्वेन निर्देशात् सर्वलोकप्रशस्यत्वाऽसहिष्णुतया वा
तद्दोषाविष्करणेन सुलभयशोलिप्सया वा कश्चन महाराष्ट्रो विद्वान् प० गङ्गाधर जोशी-
शास्त्रीतिप्रसिद्धः पेशी-स्नायु-सिरा-धमनी-कलेतिसंज्ञापञ्चकं प्रमादप्रयुक्तमित्याघोषयन्
आंग्लसंस्कृत-महाराष्ट्रभाषारचितानि त्रिचतुराणि लघुपुस्तकानि प्रकाशयामास । तेषाञ्च
निरुत्तरीकरणमुत्तरं पुण्यपत्तनस्थेन विद्वद्वरवैद्यपञ्चानन प० श्रीकृष्णशास्त्रि कवडे-
महाभागेन त्रिभिर्निर्बन्धैः प्रादायि ‘केशरी’तिप्रसिद्धपत्रिकायाम् । तथाऽप्युप्यता
तेन शास्त्रिणा तदर्थमेवान्यं निबन्धं ‘सौश्रुतशारीरप्रतिष्ठापनाविज्ञप्ति’संज्ञं प्रकाश्य
समर्थ्य च तं कतिचिदनुव्रतशास्त्रिणां स्वाक्षरैः स्वमतं पुनराम्रेडितम् । मया तु
तदानीं प्रत्यग्रधर्मपत्नीवियोगविधुरेणाऽपि त्रयाणां महाराष्ट्रीयविदुषामनुरोधात् तत्सन्देह-
निराकरणाय प्राचीनप्रयोगादिप्रदर्शनपुरःसरं “A Brief Answer to Criticisms”
इत्याख्यं संक्षिप्तमुत्तरपत्रमांग्लभाषया विरचय्य प्रेषितं मित्रवर प० श्रीमत्कृष्णशास्त्रि-कवडे
महाशयानामन्तिके पत्रिकासु प्रकाशनाय । तैश्च महाभागैः प्रकाशितं तत् स्वव्ययेनैव
प्रचुरप्रचाराय ।

तथाप्यनुप्यता तेन पुरोभागिपुरन्दरेण शास्त्रिणा इ० १६२६वर्षे कराचीनगर-
संमिलिते निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलने प्रस्ताव एष उपस्थापितः—“प्रत्यक्षशारीरकारा-
पेशीस्नायवादिसंज्ञापञ्चकमधिकृत्य प्रकाशितानाक्षेपान् यदि न निराकुर्युरेकेन वर्षेण
तदा सौश्रुतपरिभाषानुसारि-नवीनशारीरग्रन्थनिर्माणाय विद्वांसोऽभ्यर्थनीयाः” इति ।
तदनन्तरञ्चास्माभिर्विदुषां निर्बन्धातिशयेन “संज्ञापञ्चकविमर्श”संज्ञो ग्रन्थः प्राणायि ।
तत्र च विवादास्पदीभूताः पञ्चापि संज्ञाः समञ्जसार्थेभ्येवास्माभिः प्रयुक्ताः स्वग्रन्थे—

[३]

इति सरलैः शब्दैः सयुक्तिप्रयोगं प्रतिपाद्य ५० जोशीशास्त्रिकृताः प्रमादाः सविस्तरं
निरसिताः । तस्य चायमन्तिमः श्लोकः—

“उच्छास्त्र-शास्त्रिकुल-संकुलवाक्यशल्यै-

राविध्यमानमवलोक्य शरीरतन्त्रम् ।

संज्ञाप्रणाश इह माऽस्त्विति तस्य शल्यो-

द्धारं विधाय रचितोऽमृतलेप एषः ॥”

सोऽयं ग्रन्थो ‘विदुषां विद्यार्थिनाञ्च ज्ञानवृद्धये भविष्यति चिरायेति’ केषाञ्चिद्
धीमतां मतमतीव नः प्रमोदायेति तान् प्रति कृतज्ञतां प्रकटयामः । अभ्यर्थयामहे च
सुधीजनान् मादृशां भ्रमप्रमादसौलभ्याद् यदि सत्यमेव संशोधनीयं किञ्चिदुपलभ्येत,
तर्हि मर्षयित्वा मे मन्तुं संशोध्यतां भ्रमः, विज्ञाप्यतां चासौ कृपया इति विनीतविज्ञप्तिः ।

विदुषामाश्रवस्य—

कलिकातामहानगर्यां

सं० १९६५, पौषपूर्णिमायाम् ।

सेनोपाह-

श्रीगणनाथशर्मणः

[३]

वैदिकीय आचार्य आचार्यविरचितं च आचार्यविरचितं विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः
विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः
विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः
विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः
विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः

विद्वत्पुत्रः

प्रत्यक्षशारीरम् ।

ओं नम आयुर्वेदाचार्येभ्यः ।

कालिन्दीजलनीलिम्नो नोलं ज्योतिरुपास्महे ।
यद्भासमनुभासन्ते ज्योतीषि च जगन्ति च ॥ १ ॥

वैद्यविद्या-महाम्भोधि-पारोत्तीर्ण-महाधियम् ।
विद्याकल्पद्रुमं तातं विश्वनाथं गुरुं नुमः ॥ २ ॥

यदन्तरगतं^१ महः परमहर्षिवोधोज्ज्वलं^२
विराट्पुरुषधामर्जिन्निखिलरोदसी व्यानशे ।
विलोप-परकल्पना जलदजाल-मन्दप्रभो
न कस्य विषयः शुचां स इह वैद्यविद्यारविः ? ॥ ३ ॥

आत्मेयादिमहर्षिभिर्निजतपःप्रज्ञानदीप्तेक्षणै-
दुर्ज्ञेयान्यपि^१ चेत्करामलकवत्तत्त्वानि संजज्ञिरे^२ ।
सुज्ञेयं करणैः^३ पुरो नयनयोर्देदीप्यमानं तनोः
स्थूलं^४ तत्त्वमपास्य हन्त नु भिषङ्मन्या न लज्जेमहि^५ ? ॥४॥

१ यमुनाजलनीलितायाः सारभूतमिति शेषः । यद्वा कालिन्दीजलस्य नीलिमेव नीलिमा यस्य तादृशस्य । २ श्रीकृष्णरूपमिति फलितायः । ३ यस्य दीप्तिः । ४ सूर्यचन्द्रादीनि । तथाच श्रुतिः- 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।' ५ यस्य अभ्यन्तरगतं तेजः । ६ सहस्रशीर्ष्णो विष्णोस्तेजःस्पृद्धिः, तथाचोक्तं- 'ध्येयः सदा सविक्रमण्डलमध्यवर्ती' इत्यादि । ७ समग्रयात्रापृथिव्यौ । ८ व्याप । ९ विलोपः-अग्निवेशसुश्रुतौपधेनवोरभ्रादिमहर्षिप्रणीतमूल-ग्रन्थानामनासादनं, परकल्पना-नानानापजनाद्भावप्रतिस्रान्तमतादीनि । १० प्रज्ञानं परमज्ञानं, तपःप्रज्ञानाभ्यामुन्मीलितदिव्यदृष्टिभिः । ११ पारलौकिकान्यपि किमुत ऐहिकानि । १२ सम्यग् ज्ञातानि । १३ इन्द्रियैः । १४ शारीरं तत्त्वमज्ञात्वेव । १५ न लज्जेमहोति काकुः । अवश्यं लज्जेमहीति भावः ।

२

प्रत्यक्षशारीरम् ।

प्राच्यप्रतीच्यगुरुसङ्गमुपास्य तस्मात्
तत्तद्विषयजनवचांसि विचार्य सम्यक् ।
प्रत्यक्षदृष्टनिखिलार्थकमद्य शास्त्र-
मुद्योतयन्न भवितास्मि विगीतकृत्यः ॥ ५ ॥

प्राचां गिरः शिरसि नोऽथ तदीयशैली
प्रायः पवित्रयति पद्धतिमस्मदीयाम् ।
भागोरथोव्यतिकरः कुरुते महिम्ना
रथ्यापयोऽतिमलिनं विमलं क्षणेन ॥ ६ ॥

प्राचां विरोधः^१ इह नास्ति, कुतोऽथ^२ भाति,
प्रत्यक्षवस्तुविषये सहनीय एषः ।
आर्षे निबन्धुशतदुष्टवचोऽभिमृष्टे
शास्त्रेऽपि शस्यतुषभेदविदो^३ विदः^४ स्युः ॥ ७ ॥

धान्वन्तरीयमतमाकुलतामुपेतं
स्वच्छं पुनर्विदधता मृतकान् परीक्ष्य ।
अग्रन्थि^५ सम्प्रति मया नवको निबन्धो
बोद्धा श्रमस्य यदि तं शिरसा नमामि ॥ ८ ॥

तनुमतिरपि गुरुकरुणां गणनाथः सोऽयमाश्रयन् शरणम् ।
रचयति शरीरतत्त्व-प्रत्यक्षीकरणकारणं दीपम् ॥ ९ ॥

क्षमध्वमिह दोषान्मे^६ चिनुध्वं गुणलेशकान् ।
आद्रियध्वञ्च यत्सत्यं प्रत्यक्षे^७ को नु संशयः ? ॥ १० ॥

१ पृथिव्यां प्राच्याः भारतवर्षीयाः, प्रतीच्या यूरोपीयाः । २ शक्च्छेदादिना प्रत्यक्षकृतसमस्त-
तत्त्वम् । ३ निन्दितकर्मा । ४ सम्पर्कः । ५ यतः अनापञ्जनप्रमादादिजन्य एव दृश्यते लभ्यमानग्रन्थेषु
शारीरवस्त्वर्थव्याकुलीभावः । दृश्यतामुपोद्घातः । ६ यथा सिराधमन्यादिशब्देषु । ७ निबन्धुणां
शतैः प्रज्ञितानि यानि व्याकुलार्थानि वचांसि तैर्दूषिते । यथा चेतत्तद् दर्शितमुपोद्घाते ।
८ इदं शस्यं ग्राह्यमिदं तुषन्त्याज्यमिति भेदज्ञाः । ९ पण्डिताः । १० व्यरचि । ११ क्वचित्
प्रसिद्धभ्रान्तमतविरुद्धकथनादीन्, दुस्तरेऽस्मिन् शास्त्रे स्खलितानि च । १२ तत्रापि सकल-
जनसाधारणे स्थूलप्रत्यक्षे । उक्तञ्च केनचित् प्रसङ्गान्तरे—“अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं ज्ञमन्ते,
सूतेन्द्रकमं गुरवो गुरवस्त एव” इति । स च न्यायः शारीरविषयेऽपि प्रयोज्यः । अप्रत्यक्षीकृत-
शारीरतत्त्वाः केचन चेदत्रापि विवेदेरन्, का गतिः ?

प्रत्यक्षशारीरम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः शारीरोपक्रमणीयमध्यायं* व्याख्यास्यामः ।

इह खलु शरीर-मनःशरीर-समवायः पुरुष इत्युच्यते, तद्दुःखसंयोग-विशेषाश्च व्याधय इति । दुःखसंयोगश्चासौ द्वेधा समुत्पद्यते, शरीरव्यतिकरेण मनोव्यतिकरेण चेति । तत्र शरीरनिष्ठा व्याधयः शारीरैरुपचारैरुपक्रान्ताः प्रतिनिवर्त्तन्ते, मनोनिष्ठाश्च भूम्ना तथैव, अपरैश्च समाधिसान्त्वनादिभिरुपायैः प्रायेण शरीरद्वारप्रयुक्तैः । तस्मात् व्याध्यायतनमिति चिकित्साधिष्ठानमिति च कृत्वा शरीरमेवादौ भिषजां विजिज्ञासितव्यं भवति । आहुश्च प्राञ्चः—“शरीरविचयः शरीरोपकारार्थमिष्यते, भिषग्विद्येयम् । ज्ञाते हि शरीरतत्त्वे शरीरोपकारकेषु भावेषु ज्ञानमुत्पद्यते । तस्मात् शरीरविचयं प्रशंसन्ति कुशलः” — इति (च० शा० ६ अ०) ।

श्रूयते च चरकसंहितायामात्रेयोपदेशः — “भगवानुवाच—य इमे कुलीनाः पर्यवदातश्रुताः परिदृष्टकर्माणो दक्षाः शुचयो जितहस्ता जितात्मानः सर्वोपकरण-वन्तः सर्वेन्द्रियोपपन्नाः प्रकृतिज्ञाः प्रतिपत्तिज्ञाश्च, ते ज्ञेयाः प्राणाभिसरा हन्तारो रोगाणां ; तथाविधा हि केवले^१ शरीरज्ञाने^२ शरीराभिनिर्वृत्तिज्ञाने^३ प्रकृतिविकारज्ञाने च निःसंशया इत्यादि ।” (च० सू० २९ अ०)

* शारीरस्योपक्रमणमारम्भः, तदधिकृत्य कृतम् (प्रत्ययः) । एवमग्रेऽपि । १ शरीरी आत्मा, समवायः समष्टिः । तथाह चरकः “सत्त्वमात्मा शरीरञ्च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत् । लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।” २ अयं सुश्रुतस्यानुवादः (सू. सू. १अ.), तस्मिन् पुरुषे ये दुःखकर-संयोगास्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । ३ अयं सुश्रुतस्यानुवादः (सू. सू. १अ.), तस्मिन् पुरुषे ये दुःखकर-संयोगास्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । ४ शरीरोपाः । ५ मानसाः । ६ प्राचुर्येण । ७ समाधिशिवतैकाग्रता, सान्त्वं मधुरवचः । ८ “समं कायशरीरोपीवं धारयन्नचलं स्थिरः । संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्” इत्यादिभगवदुक्तरीत्येति भावः । ९ विशेषेण ज्ञातुमीप्सितव्यम् । १० अङ्गविनिश्चयविद्या । ११ समग्रे । १२ गर्भव्याकरणे । १३ शारीरक्रियाविज्ञाने विकृतशारीरज्ञाने च (In Physiology & Pathology) ।

प्रत्यक्षशारीरम् ।

इतश्चेदं शरीरं मातापित्रोरान्तरभावभाविताद् अदृष्टविशेषाकृष्टशुक्लशोणित-
संयोगादुद्भिद्यमानं कमशस्तैस्तैरवस्थाविशेषैरभिव्यज्यमानस्वरूपं रसादिशुक्लान्त-
धातूनामनेकाशयसिराधमन्यादीनाञ्चाधारभूतमभिसम्पद्यते प्राणायतनं नाम । प्राणा
हि शरीरमाश्रित्य ध्रियन्ते । तस्मात् प्राणान् रक्षितुकामेन शारीरं ज्ञानमवश्य-
मेवान्वेष्यं भवति ।

द्विविधः पुनरस्य शरीरस्य विज्ञानोपायो भवति । बाह्य आभ्यन्तरश्चेति ।
तत्र बाह्यः पञ्चानामिन्द्रियाणां, विशेषतस्तु दर्शनेन्द्रियस्य, व्यापाररूपः । स जीव-
च्छरीरं मृतकशरीरं च प्रति प्रयुज्यमानः शारीरं ज्ञानमुत्पादयति । आभ्यन्तरस्तु
उपायस्तपोज्ञानद्विसमृद्धैरास्थोयमानो ज्ञानचक्षुर्व्यापाररूपः स्थूलेन्द्रियप्रयत्नमन्तरे-
णैव सर्वमपि सूक्ष्मानुसूक्ष्ममपि प्रकाशयति । सोऽयमुत्तरोपायो योगिभिरेव शक्यः
प्रयोक्तुं, नास्मादृशैः । तस्माद् बाह्यमुपायमाश्रित्य वक्ष्यामः ।

द्विविधं च बाह्योपायसाध्यं ज्ञानं शरीरस्य, स्थूलं सूक्ष्मं चेति । तत्र स्थूलं
केवलेन चक्षुषा साध्यम् । सूक्ष्मं तु अणुवीक्षणादियन्तसहायेन । उभयमप्यावश्यकं
शरीरस्य स्थूलसूक्ष्मनिर्माणादिविज्ञानाय ।

द्विविधं च शारीरवस्तु, प्राकृतं वैकृतं चेति । तत्र प्राकृतं प्रकृतिस्थे शरीरे
दृश्यम् । वैकृतं तु जरा-रोगादिविकृतेष्ववयवेषु । इह तु प्राकृतशारीरमधिकृत्य
उपदेशः ।

तदेवं चतुर्विधं शारीरज्ञानम् । स्थूलप्राकृतं स्थूलवैकृतं, सूक्ष्मप्राकृतं
सूक्ष्मवैकृतञ्चेति । तत्र वैकृतशारीरज्ञानमावश्यकं रोगविज्ञानाय नैदानिकानाम् ।
जरारोगादिविकृतेऽपि मृतकशरीरे स्थूलं शारीरसंस्थानं प्रायेण प्राकृतमिव
दृश्यते । सूक्ष्मनिर्माणन्तु विभिद्यते विकृतावयवेषु, कचिदाकृतिविशेषश्च ।

आह च सुश्रुतः—“तस्मात् समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितम-
वर्षशतिकं निःस्पृष्टान्त्रपुरीषं पुरुषमवहन्त्यामापगायां निबद्धं पञ्जरस्थं मुञ्ज-
वल्कल-कुश-शणादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्गमप्रकाशे देशे कोथयेत्^१ । सम्यक्
प्रकुथितञ्चोद्धृत्य देहं सप्तरात्रादुशीर-वाल-वेणु-वल्कल-कुर्चीनामन्यतमेन शनैः

१ गर्भाधानकाले यथा यथा पित्रोरान्तरा भावास्तथा तथा गर्भस्यापि सम्भवन्ति, अदृष्ट-
विशेषतश्च तस्मिंस्तस्मिन् काले गभसम्भवः । २ कललाद्यवस्थाविशेषैरित्यर्थः । तथाहि सुश्रुतः—
“प्रथमे मासि कललं जायते” (स. शा. ३ अ.) इत्यादि । कललं घनमृदु पिच्छिलं पियडम् ।
३ तिष्ठन्ति । ४ गलितं कुर्यात् । ५ कूचीति भाषायाम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

५

शनैरवधर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान् यथोक्तान् लक्ष्ये-
चक्षुषेति^१” (सु० शा० ६ अ०) ।

इदानीन्तनास्तु सद्योमृतशरीरं कोथनिवारणैरुपायैः शोधितं हिमशोतलगृहे-
ष्वभिरक्षितं^२ परीक्षन्ते प्राकृतवैकृत-शरीरविज्ञानाय ।

तदेतत् खलु षडङ्गं शरीरं शरीरविदो भाषन्ते । अङ्गानि चास्य “शाखा-
श्चतस्रो, मध्यं पञ्चमं, षष्ठं शिरश्चेति” — (सु० शा० ५ अ०) ।

तत्र ग्रहण-धारण-स्थूणन-चलनादिसहायाः शाखाः— द्रौ वाहू, द्वे च सक्थिनी ।
शोणितसंवहन-श्वसनाऽन्नविपचन-मूत्रोच्चारविभजनाद्याशयानामाधारो मध्यं, प्रकाण्ड
इव महीरुहस्याश्रयः शिरसः शाखानाञ्च । श्वासाऽन्नद्वारयोर्मुखमण्डलस्य
चाधिष्ठानं, संज्ञावह-चेष्टावहानां नाडीनां ज्ञानेन्द्रियाणाञ्च मूलाधिष्ठानं शिरः, तद्धि
ज्ञानायतनमुत्तमाङ्गमाहुः मस्तिष्काधारत्वात् । मस्तिष्कं^३ हि नाम सर्वज्ञानाकरतया
मन्यन्ते मनोषिणः । सोऽयं षडङ्गस्य देहस्य परिचयो भवति वीजरूपो यमधिकृत्य
विस्तरोऽत ऊर्ध्वम् ।

भवन्ति चात्र —

“शरीरे चैव शास्त्रे च द्रष्टव्यं स्याद्विशारदः ।

द्रष्टृश्रुताभ्यां सन्देहमवापौह्याचरेत् क्रियाः ॥

प्रत्यक्षतो हि यद् द्रष्टुं शास्त्रद्रष्टश्च यद् भवेत् ।

समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम् ॥” (सु० शा० ६ अ०)

“शरीरं सर्वदा सर्वं सर्वथा वेद यो भिषक् ।

आयुर्वेदं स का तस्म्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥”

(च० शा० ६ अ०)

१ स्थूलोऽयमुपायः सर्वथा सर्वानेव विशेषान्न दर्शयितुं क्षमः । २ एवञ्च ते ते विशेषाः
सूक्ष्मानुसूक्ष्माः स्पष्टं परिदृश्यन्ते चक्षुषा । ३ मध्यं मध्यकायः, चरके त्वस्यैव ‘अन्तराधि’ संज्ञा ।
अन्तरा शाखादीनां धीयते—इत्यन्तराधिः । ४ चरके तु शिरोध्रीवमिति गृह्यते । स्थूणाः स्तम्भाः,
५ स्थूणानं तत्कर्मकरणमवलम्बनम् । ६ उच्चारः शब्दः । ७ द्विविधा नाड्यः, संज्ञावहाश्चेष्टा-
वहाश्च । तत्र संज्ञावहाः—शब्दादीन् विज्ञानं मस्तिष्काभिमुखं वहन्ति, येन तत्तद्विषयग्रहणं
भवति । चेष्टावहास्तु—मस्तिष्कतश्चेष्टाप्रवर्तकान् वेगानादाय नाडीतन्तुद्वारेण पेशीः क्रियावतीः
कुर्वन्ति । ८ अत एव वाग्भटः—“ऊर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः । मूलप्रहारिणस्तस्माद्
रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥ सर्वेन्द्रियाणि येनाऽस्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः । तेन तस्योत्तमाङ्गस्य
रक्षायामाहतो भवेत् ॥” (वाग्भट० उत्तरस्थान० २४ अ०) । ९ दूरीकृत्य । १० समुच्चयतः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः शरीरपारिभाषिकीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

त्वचः, कलाः, पेश्यः, स्नायवः, सिराः, धमन्यः, रसायन्यः, नाड्यः, धातवो रसा-
दिशुक्रान्ताश्चेति शरीरोपादानसमुच्चयः । आशयाः श्वसनाऽन्नविपचनादिक्रियाकरा
बहवः । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाधिष्ठानानि । पञ्च कर्मेन्द्रियाधिष्ठानानि । नव द्वाराणि ।
ललाटभ्रूगण्डादीनि चोपाङ्गानि - इति प्रत्यङ्गावयवसमासः । तत्र -

त्वचो नाम— सर्वदेहावरणरूपा भूमिः स्पर्शेन्द्रियस्य,^१ स्रोतसाश्च स्वेद-
वहानां, रोम्नामपि सरोमकूपानाम् । ताः स्थूलद्रष्टव्या स्तरद्वयविभक्ताः,—
बहिस्त्वग्भागोऽन्तस्त्वग्भागश्चेति । तत्र बहिस्त्वङ् नामातीव तन्वी कृष्ण-
गौरादिवर्णाधारा बहिस्पर्शेण श्लोषपिडकाव्यञ्जना च । अन्तस्त्वङ् नाम स्थूला
शरीराभिरक्षणी स्नेहादिकर्षणी च । सैव प्रधानमायतनं स्पर्शभूमेः स्वेदस्रोताश्च
मार्गाणाम् ।

प्राञ्चस्तु सूक्ष्मद्रष्टव्या क्षीरस्येव सन्तानिकाः सप्त^२ षड् वा त्वचो
मन्यन्ते । तासु प्रथमा अवभासिनी नाम, तस्या बाह्यत्वग्भागेनाऽभेदः ।
अपरासान्तु अन्तस्त्वग्भागेऽनुप्रवेशः । त्वङ्निर्माणविशेषविस्तरस्तु इन्द्रियविज्ञाने
वर्णयितव्यः ।

कला नाम—सूक्ष्मकौषेयवासःसमाकारा नानाविधसंस्थानाः, या मांस-
स्याऽस्थन आशयानाश्च सर्वेषामन्तर्बहिःरावृत्य तिष्ठन्ति, यथादेश-कर्म संज्ञाश्च

१ शरीरशास्त्रे वक्ष्यमाणे या याः संज्ञाः प्रयोक्तव्याः, तासां परिभाषा अवश्यमेवादौ
वक्तव्या, अन्यथा क्वचिद् भ्रान्तायेषु तेषां प्रयोगाननुस्मृत्य व्याकुलीकुर्युरर्थान् शिष्या इत्यभिप्रायेणो-
पक्रम्यतेऽयमध्यायः । २ न खल्वत्रोपादानानि उपादानकारणानि, किन्तु उपादानवत् शरीरनिष्पाद-
कानि । ३ श्रोत्रत्वङ्नेत्ररसनाघ्राणाख्यानि ४ । कर्मेन्द्रियाधिष्ठानानि वाक्पाणिपादपायूपस्थानि ।
यानि तु लोके निर्दिश्यन्ते इन्द्रियाणीति तानि हि इन्द्रियाधिष्ठानानि । इन्द्रियाणि त्वतीन्द्रियाणि ।
५ स्पर्शेन्द्रियाधिष्ठानमित्यर्थः । भूमिपदेन परतोऽपि सम्बन्धः । ६ बहिर्दाहेन या श्लोषपिडका समुदेति
तया व्यज्यते तन्वी बहिस्त्वक् पृथगेवान्तस्त्वच इति । ७ षडिति चरकस्य मतं, सप्तेति सुश्रुतस्य
(छ. शा. ४ अ.) । पाश्चात्यमतेऽप्येवमण्वीक्षणदृश्यञ्च । सन्तानिका दुग्धसरः । अवभासिनीति
सुश्रुतोक्ता संज्ञा, चरकमते तु प्रथमा उदकधरा नाम । कृष्णगौरादिवर्णाधारत्वात् अवभासिनी-
श्लोषपिडकायां जातायामुदकेन तां पूरयतीति उदकधरा वा । ता एतास्त्वचः षडङ्गं शरीरमवतल्य
तिष्ठन्ति क्वचित् स्थूलाः क्वचित्तन्वाः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

७

लभन्ते । ताः “धात्वाशयान्तरमर्यादा”—इति पूर्वे (सु० शा० ४ अ०) ।

आहुश्च—

“स्नायुभिश्च^१ प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुणा ।

श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः ॥” इति ।

(सु० शा० ४ अ०)

कलाविशेषांस्तु तत्र तत्र प्रसङ्गेषु वक्ष्यामः ।

पेश्यो नाम—प्राणभृतां सकलचेष्टासाधनानि । ताः मांसमध्यः स्वरूपेण प्रायः स्थूलमध्या रज्वाकाराः क्वचित् प्रच्छदाद्याकाराश्च^२ । ता द्विविधाः—स्वतन्त्राः परतन्त्राश्च, क्रियावैशेष्यात् । तत्र परतन्त्राणां प्रायः सर्वासामेव पेशीनामेकैकस्या द्वौ द्वावन्तौ रजतवर्णावस्थितिवद्द्वौ चोभयतः^३ प्रायेण । आकुञ्जनप्रसारणाभ्याञ्च पेशीनां नानाविधचेष्टाभिनिवृत्तिः । रज्वाकाराणाञ्च पेशीनां शुभ्रमसृणद्बद्धान्तभागाः कण्डरा इत्युच्यन्ते । ताः स्वरूपतः स्नायुनिर्मिता रजतशुभ्रा बहुभारसहाश्च । तासां पेशीष्वेव^४ स्नायुष्वेव वाऽनुप्रवेशः । “स्नायवो वृत्ताः कण्डरा भवन्ती” ति हि प्राञ्चः (सु० शा० ५ अ०) ।

१ धातवो—रसादीन्याधेयानि, आशया—आमाशयाद्या आधाराः, तेषामन्तरे मध्ये मर्यादा व्यवधानभूताः, तत्तदाशयानामन्तरावरण्यः कलाः सूक्ष्मपट्ररूपाः । इह धातव आशयाश्चेत्युपलक्षणमाधेयाधारार्थकं पदद्वयम् । तेन ह्यामाशयादौ ध्रियमाणस्यान्नादेरपि धातु-पदेन ग्रहणं, तथाच आमाशयान्तरावरणी या कला सैव तत्र व्यवधायिनी सेयं भुक्तधरा नाम, सिरा-धमन्यन्तरावरणी कला रक्तधरा नाम, अस्थ्यन्तरावरणी कला मज्जधरा नामेति दिक् । तदेतदुच्यते—“धात्वाशयान्तरमर्यादा” इति । पूर्वे—धन्वन्तरिप्रमुखाः । २ स्नायुभिः तदाख्यैः शुभ्रसूक्ष्मसूत्रैः प्रतिच्छन्नान् परस्परानुप्रवेशेन निष्पन्नान् । जरायुः सूक्ष्मजालकमुल्लवत् तेन सन्ततान् व्याप्तान् । श्लेष्मणा तर्पकश्लेषकादिसंज्ञेन तरलपिच्छिलपदार्थेन वेष्टितान् । तथाच सूक्ष्मकौषेय-वासःसदृशाः कला इति फलितोऽर्थः । [कला = Membrane—Mucous, Serous, Synovial etc.] एतद्विषयेको विचारविस्तरस्तु ‘संज्ञापञ्चकविमश’-नाम्नि निबन्धे द्रष्टव्यः । ३ चेष्टाप्रवृत्तिस्तु मस्तिष्कतश्चेष्टावहनाद्रीराश्रित्य भवति, ताश्च नाढ्यः पेशीरनुप्रविष्टाः । चेष्टाप्रवृत्तेः साधनभूता जधिष्ठः नभूता हि पेश्य । ४ मांसमध्यः—मांसोपादानाः । ५ प्रच्छदाद्याकाराः—यथा ललाटसङ्कोचनी पेशी, सेयं प्रच्छदपटवदास्तृता शिरच्छादयति । ६ क्रियावैशेष्यञ्चेष्टाश्रम-अन्त-हृदयादिनिर्मापिकानां पेशीनां त्रिधासु नास्मदिच्छायाः प्रभुता, स्वतन्त्राः हि खल्वेताः । ७ एकैकतः करसञ्चालनादिकरीनां पेशीनां क्रियास्त्वस्मदिच्छाधीनाः, अतएव ताः परतन्त्राः । ८ एकैकतः अस्थिप्रदेशविशेषे (क्वचिदन्यत्र वा) दृढनिबद्धौ, तथाच पेश्याः सङ्कोचे सति अस्थिविशेषैक-देशाकर्षणेन तत्तदङ्गानां चेष्टाविशेषः । चेष्टाभिनिवृत्तिः—चेष्टानिष्पत्तिः । ८ कण्डराः—Tendons. ९ पेश्यवयवत्वात् पेशीषु, स्नायुनिमित्तत्वात् स्नायुषु वा ।

प्रत्यक्षशारीरम् ।

स्नायवो नाम— सान्द्रमसृणशणगुच्छसमाकाराः सन्धिवन्धनार्थाः प्रायेण । स्नायुशब्दश्चैष द्वयोरर्थयोर्दृश्यते प्रयुक्तः—स्नायुसंहतिषु स्नायुव्यक्तिषु च । तत्र प्रथमः अस्थिसन्धिवन्धनरूपोऽर्थः, स मुख्यः—‘प्रतानवतीभिर्हि स्नायुभिर्द्वीकृताः सन्धयः’— इति पूर्वाचार्याक्तेः । अथ द्वितीयः स्नायुव्यक्तिरूपोऽर्थः स गौणः । तेन स्नायुशब्दः क्वचित् शणसूत्रवद् दृढशुभ्रसूक्ष्मसूत्राप्यभिधत्ते । तथाहि—कलासु कण्डरासु पार्श्वपृष्ठोरपेश्यन्तेषु आमाशय-पकाशय-वस्त्यन्तभागस्थशुषिरपेशीषु च दृश्यते यः स्नायुशब्दः प्रयुक्तः पूर्वैः, सोऽस्मिन्नेवार्थे । आहुश्च—

“स्नायूश्चतुर्विधा विद्यात्तास्तु सर्वा निबोध मे ।

प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथ्व्यश्च शुषिरास्तथा ॥

प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसन्धिषु चाप्यथ ।

वृत्तास्तु कण्डराः सर्वाः विज्ञेयाः कुशलैरिह ॥

आमपकाशयान्तेषु वस्तौ च शुषिराः खलु ।

पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च शिरस्यथ ॥

नौर्यथा फलकास्तोर्णा वन्धनैर्बहुभिर्वृता ।

भारक्षमा भवेदप्लु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥

एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः ।

स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥” (सु० शा० १ अ०)

सिरा^१ नाम—अविशुद्धशोणितवहाः सर्वदेहगाः प्रणाल्योऽस्मिन् शास्त्रे । ताभिः शरीरप्रचारान्मलिनीभूतं शोणितमभिप्रवर्तते हृदयाभिमुखम् । निखिल-
देहव्याप्तानाञ्च तासां मिलितानामाशयो हृदयं समुद्र इवापगानाम् ।

१ हन्त तावदयं स्नायुशब्दो वङ्गभाषायां कदाचित् केपाञ्चिद् भ्रान्तप्रयोगदर्शनात् नाट्यार्थं (To imply Nerves) प्रयुज्यते बहुशः । तथाच न भ्रमितव्यम् । न खल्वेष स्नायुशब्दः कदाचिदपि कथञ्चिदपि संज्ञावहचेष्टावहनाङ्गीरूपमर्थं प्रकाशयति । यश्च तावच्छास्त्रे जातिव्यक्तिरूपो द्विविधोऽर्थो दर्शितः स युक्त एव, यथा तृणशब्दस्तृणविशेषे तृणजातौ च प्रसिद्धो दृश्यते, यथा च लोह-
मृगादयोऽपि शब्दाः । स्नायुः = Ligament (संहत्यर्थे) or Fibrous tissue (व्यक्त्यर्थे) ।

२ सिराधमनीशब्दयोरस्मिन् शास्त्रे विनिश्चयार्थो निरोधः क्रियते, अन्यथा लभ्यमानरक्तस्रुताः प्र-
प्रतिसंस्कृतप्रयोगाननुमृत्य व्याकुलीकुर्यर्थानविशेषवद् । एतत्प्रासङ्गिको विचारवस्तरस्तु
उपोद्घाते ‘संज्ञापञ्चकवमर्शे’ च द्रष्टव्यः । [सिराः = Veins ; धमन्यः = Arteries] २ । इदं
सामान्यतः । फुस्फुसप्रभवाच्च सिरासु तु विशुद्धं रक्तं वहतीति विशेषः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

६

धमन्यो नाम—विशुद्धशोणितवहाः सर्वदेहगाः प्रणाल्योऽस्मिन् शास्त्रे । तासां मूलं हृदयं, तद्धि धमनीद्वारेण सर्वत्र शरीरे शोणितं धमति विक्षिपति वा । ताभिर्जीवरक्तवाहिनीभिः केदार इव कुल्याभिरभिप्रीयते शरीरं सिराधमनीनां प्रान्तस्थेभ्यो जालकेभ्यः प्रसृतया लसीकया ।

सिराधमनीनाञ्च रक्तस्रोतांसीति साधारणी संज्ञा, केवलं सिरैति संज्ञा वा प्राचाम् ।

रसायन्यो नाम—लसीकाख्यतन्वच्छरसवाहिन्यः प्रणाल्यः । ता हि निखिलदेहप्रसृता जालकेभ्यः प्रसृतां लसीकां धातुपोषणावशिष्टां भूम्ना संगृह्णन्ति । अनुविद्धाश्च ताः कक्षा-वक्ष्ण-गलादिषु प्रदेशेषु गुञ्जा-निम्बफलाद्याकारैर्प्रन्थिभिः ।

नाड्यो नाम—मृदुसूक्ष्मसूत्रसंघातमध्यो नीरन्ध्रास्तन्व्योऽस्मिन् शास्त्रे । ताश्च समाश्रित्य संज्ञा-चेष्टयोरभिप्रवृत्तिः । तासां भगवान् वायुरधिष्ठाता । स हि विभुरचिन्त्यशक्तिरखिलान् शब्दादीन्विषयानादत्ते प्रवर्तयति च नानाविधाश्चेष्टाः क्रमेण संज्ञावहाश्चेष्टावहाश्च नाडीरधिष्ठाय । तासां च निखिलानां नाडीनां मूलं मस्तिष्कं सुषुम्णा च स्वतन्त्रनाडीतन्त्रसहिता । सर्वासाञ्चासां विस्तरं यथास्थानं वक्ष्यामः ।

[स्रोतांसीति—तु शारीरमार्गाणां साधारणी संज्ञा । तथाहि चरकः—
“स्रोतांसि खलु परिणाममापद्यमानानां धातूनामभिवाहीनि भवन्त्ययनार्थे”]

१ शरीरप्रचारान्मलिनीभूतं हि शोणितं फुफ्फुसान्तः श्वासवायुसमानीत-विष्णुपदामृत (Oxygen)-संयोगात् शुद्धीभूतं पुनर्हृदयागतं हृतसंकोचेन विक्षिप्यते सर्वतो धमनीभिः । एवञ्च फुफ्फुसीयरक्त-संवहने सिराधमनीशब्दयोः किञ्चिदर्थविपर्ययः फुफ्फुसगामिधमन्यां फुफ्फुसागतसिरासु च वक्ष्यते । तत्रापि हृदयान्निर्गता धमन्यः, हृदयाभिमुख्यः सिरा इति नियमस्तु स्थिर एव । सिराधमनीशब्दयोः रचितानुचितार्थेषु प्रयोगास्तद्विषयकविचारश्च उपोद्घाते ‘संज्ञापञ्चकविमर्शे’ च द्रष्टव्याः ।

२ रसायन्यः—Lymphatics. रसायनीति चरककृतेयं संज्ञा (च. वि. ५ अ.) । ३ नाडीशब्दस्येह तन्त्रोक्तार्थे निरोधः । (नलिकार्थे प्रयुक्तो नाडीशब्दस्तु पृथगेव) । ताश्च नाड्यो विद्युद्गहधातुमय-सूत्रवत् रन्ध्रहीनास्तन्त्रयः । तासु काश्चित् शब्दादिसंज्ञाः प्रापयन्ति मस्तिष्काभिमुखं, ताः संज्ञावहा नाम (Sensory Nerves) । अपरास्तु मस्तिष्कतो बहिर्मुखं नयन्ति चेष्टावेगविशेषान्, ताश्चेष्टावहा नाम (Motor Nerves) । ४ स चायमचिन्त्यशक्तिर्वायुनाम येन समुत्पाद्यन्ते अन्तर्मुखा बहिर्मुखाश्च वेगाः । अतएव चरकः—“वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्राणोदानसमानव्याना-पानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेतृ च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योतकः सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोदे”त्यादि (च. सू. १२ अ.) । तीसटाचार्योऽप्याह—“चेष्टाचेतनयोस्तनौ तनुभूतां धाता तु वायुः स्मृतः ।” (चिकित्साकलिका १७)

धातवो नाम—प्रीणन-जीवन-चालन-स्नेहन-धारण-गर्भोत्पादनादिकराणि शरीरोपादानानि । ते सप्तसंख्याः—“रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः” इति । तत्र—

रसो नाम—चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवीर्यस्याहारस्य सम्यक्परिणतस्य तेजोभूतः सारः सौम्यः । “रस गतौ धातुरहरहर्गच्छतीति^१ रसः ।” स खल्वप्यो रसो भुक्तमागस्थैरतिसूक्ष्मैः स्रोतोभिराकृष्यमाणो यद्वत्प्लाहानौ प्राणपाकरागावुपैति रक्तसंज्ञाञ्चानन्तरं लभते । भवति चात्र—

“रञ्जितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम् ।

अध्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥” (सु० सू० १४ अ०)

[लसीका^२ तु—शोणितस्यैव तन्वच्छजलभागो जालकेभ्यः प्रसृतः सर्वधातुपोषणः, तस्य धातुपोषणावशेषांशो रसायनीषु प्रचरिष्युः । तस्या रस एवाऽन्तर्भावः ।]

रक्तं नाम—सकलधातुप्रीणनः सारः शरीरस्य रस एव रञ्जकाख्येन पित्तेन तथा विपरिणमितः । तस्य च संग्रहणप्रेरणस्थानं हृदयम्^३, तद्धि हृदयादेव धमनीरनुप्रविश्य कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयति धारयति जीवयति यापयति च । मलिनीभूतञ्च तत् शरीरप्रचारात्, सिराभिः प्रविशति हृदयमेव पुनः शुद्ध्यर्थं फुस्फुसाभिगमनाय ।

मांसं नाम—पेशीनामुपादानधातुमृदुलोहिततन्तुमयो जलौकाशरीरवत् सङ्कोचप्रसरणशीलः ।

मेदो नाम—सान्द्रसर्पिस्तुल्यः स्नेहधातुः शरीरस्य । तस्य स्थानमुदरान्तः^४, त्वचामधस्तात्, अन्तरालेषु च पेश्यादीनाम् ।

[वसा तु—मांसान्तरनुप्रविष्टः सूक्ष्मतरः स्नेहभागस्तस्या मेदस्यनुप्रवेशस्तुल्योपादानत्वात् ।]

१ रसपदेन क्वचिद्रक्तस्यापि ग्रहणं प्राचाम्, यथा “रसग्रहानां स्रोतसां हृदयं मूलम्” (च० वि० ६ अ०) इति । धमति हि शुद्धशोणितं सर्वत्र शरीरे हृदयम् । वाग्भटे चोक्तं—“दश मूलसिराहृत्स्थास्ताः सर्वं सर्वतो वपुः । रसात्मकं वहन्त्योजस्तन्निबद्धं हि चेष्टितम्”—इति (अष्टाङ्गहृ० शा०) । तच्च शरीरप्रचारात्मलिनीभूतं रक्तं पुनरभिप्रपद्यते हृदयं शोधनार्थं फुस्फुसगमनाय । तस्मादुच्यते, “अहरहर्गच्छतीति” । २ लसीका—Lymph. ३ तथाच सुश्रुतः—“तस्य च हृदयं स्थानमित्यादि ।” (सु० सू० १४ अ०) चतुःप्रकोष्ठं च हृदयम्, तद्विवरणमग्रे वक्ष्यते । ४ उक्तञ्च—“आरुह्य धमनीर्गत्वा सर्वान् धातूनयं रसः”—इत्यादि । ५ उदरच्छदभूतायां वपाख्यस्थूलकलायाम् (In the Omentum) इति भावः । ६ मेदोधराख्यकलायां सर्वदेहच्छादिन्याम् (In Superficial Fascia) ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

११

अस्थीनि नाम—स्थिरकठिनावलम्बनो धातुः कायस्य, यमाश्रित्य समग्रं शरीरमवतिष्ठते । विशेषश्चास्थनामनुपदं व्याख्यास्यामः ।

मज्जा नाम—अस्थिमध्यगतः स्नेहः । स द्विविधः पीतो रक्तश्च, तत्र पीतो नलकास्थनामन्तः, रक्तस्त्वितरास्थिषु प्रान्तभागेषु च नलकास्थनाम् । सोऽयं स्थूलरूपेण मेदसोऽभिन्नोऽपि कर्म-निर्माणवैशेष्यात् पृथगेव धातुः । रक्तमज्जा तु शोणितस्य शोणकणिकाप्रभवः—इति नव्याः ।

शुक्रं नाम—प्रजाजननार्थश्चरमो धातुः । तस्य प्रभवस्थानं मुष्कौ^१ । स्रोतसी चास्य द्वे मूत्रमार्गमुभयतः प्रतिवद्धे सह शुक्राधारिकयोः स्रोतोभ्याम् ।

तच्च शुक्रमव्याकृतं “स्फाटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च” इत्याहुः । त एते रसादिशुक्रान्ता धातवः । [प्राकृता वातपित्तश्लेष्माणोऽपि कदाचिद् देहधारणाद् धातुसंज्ञाः]

आशयां नाम—श्वसनाऽन्न-विपचन-शोणितसंवहनादिक्रियाकराणि-यन्त्राणि विविधानि । तेषां तिसृषु गुहास्ववस्थानम् । तास्तु यथा—शिरोगुहा, उरोगुहा, उदरगुहा चेति [दृश्यतां पुरश्चितम् (ग्रन्थारम्भे)] तत्र

शिरोगुहायां—मस्तिष्कमनुमस्तिष्कं सुषुम्णाशीर्षकञ्च^२ सपरिकरम् । तदेतत् त्वयं निखिलसंज्ञाचेष्टामूलं, येन संबध्यते निम्नतः सुषुम्णाकाण्डः पृष्ठवंशान्तरस्थः । सेयं प्रथमा शिरोगुहा व्याख्याता भवति ।

उरोगुहायां—फुस्फुसद्वयं^३ हृदयञ्च^४ साङ्गोपाङ्गं प्रधानम् । तत्र श्वसनार्थो फुस्फुसौ श्वासपथेन कण्ठाभिगतेनोरसि द्वेधा विभक्तेन प्रतिवद्धौ । शोणितसंग्रहण-प्रेरणार्थकं नियतरूपन्दनशीलं हृदयं पुण्डरीकाकारं फुस्फुसयोरन्तरालस्थं, तत्र प्रतिवद्धं महासिराद्वयं, महाधमनीमूलं, फुस्फुसीया महासिरा, फुस्फुसागतं सिरा-चतुष्टयं च यथास्थानं वक्ष्यमाणम्—इति द्वितीया उरोगुहा व्याख्याता भवति ।

उदरगुहायां—भुक्तमातस्याधारो दूतिसमाकार आमाशयः^५, स नामेरुध्वम् । पच्यमानस्य विपकस्य चाशयः अन्त्राणि^६ नामेरधः परितश्च । तत्र क्षुद्रान्त्राणि

१ “यथा पयसि सर्पिस्तु गृद्धश्चेन्नौ रसो यथा” इत्याद्यभिधानन्तु पुंलक्षण-श्मश्रुगुम्फादिसम्पादक-संवशरीरचरशुक्रस्य बोधनार्थम् । तद्विवरणमग्रे । २ आशयविवरणविस्तरस्तु आशयखण्डे द्रष्टव्यः ।

३ मस्तिष्कम्=Cerebrum or Brain. अनुमस्तिष्कम्=Pons & Cerebellum. सुषुम्णा-शीर्षकम्=Medulla Oblongata. ४ फुस्फुसद्वयम्=Lungs. ५ हृदयम्=Heart.

६ आमाशयः=Stomach. ७ अन्त्राणि=Intestines.

पच्यमानाशयः, बृहदन्त्रं^२ तु पकाशयो मलाशयो वा । सर्वान्त्राणां वा पकाशयसंज्ञे-
त्यन्ये । पाचक-रञ्जकपित्तयोः प्रभवो यकृत^३, तत्र संलग्नः पित्ताशयः (पित्तकोषो वा) ।
रञ्जकपित्तप्रभवः प्लीहा^४ । यकृतप्लीहोश्च स्थितिः क्रमेण दक्षिणतो वामतश्चा-
माशयात् । पृष्ठत आमाशयात् कुठारिकाकारोऽग्न्याशयः^५, स पाचकस्याग्रे यरसस्य
प्रभवः । मूत्रप्रभवौ महाशिम्बीबीजाकारौ कोषौ वृक्कौ^६ नाम कटिपार्श्वयोः ।
वृक्प्रभवस्य मूत्रस्य मूत्रस्रोतोभ्यां समागतस्याशयो^७ वस्तिर्नाम, स नाभेरधः ।
योनेरूर्ध्वमुखप्रतिवद्धः क्षुद्रकलसाकारो गर्भाशयः^८, स स्त्रिया एव । सोऽयं स्वमुष्टि-
मात्राकारोऽगृहीतगर्भायाः, गृहीतगर्भायास्तु यथागर्भमभिवर्द्धते । तस्य चोभयोः
पार्श्वयोर्वीजात्तवप्रभवौ बीजकोषौ नाम, तौ बीजस्रोतोभ्यां^९ प्रतिवद्धौ गर्भाशयेन—
तावेव तु पुरुषस्य वहिःस्थितौ मुष्कौ^{१०} नाम शुक्रप्रभवौ । सेयं तृतीया उदरगुहा
व्याख्याता भवति । ता एतास्तिस्रो गुहाः, यासु निखिलाशयानामवरोधः ।

पञ्च ज्ञानेन्द्रियाधिष्ठानानि—श्रोत्र-त्वङ्-नेत्र-रसना-घ्राणाख्यानि । तत्र—

श्रोत्रे—द्वे श्रवणेन्द्रियाधिष्ठाने । तदवयवास्तु—कर्णशङ्कुल्यौ^{१३} कर्णकुहरे^{१४}
श्रुतिपटहादीनि^{१५} चेति ।

त्वचो—व्याख्याताः । ताः स्पर्शेन्द्रियाधिष्ठानम् ।

नेत्रे—द्वे दर्शनाय । तत्र प्रतिनेत्रमवयवाः—सपक्ष्मणी नेत्रपुटे, नेत्र-
वर्त्मनी, अक्षिगोलके च सिरा ध्रमनी-पेशीजालवेष्टिते इति । अक्षिगोलकयोः
पश्चात् प्रतिवद्धे दृष्टिनाड्यौ ।

रसना—नाम पेशीमयं यन्त्रम्, तस्योर्ध्वतले स्वादग्राहिनाड्याः प्रतानमुखानि
स्वादाङ्कुरेषु प्रतिवद्धानि । वाग्यन्त्रोपकरणं च रसना । तत्र हि वाग्वाहिनाड्या
अपि प्रतानास्तत्तत्पेशीषु प्रतिवद्धाः ।

१ जुद्धान्त्राणि पच्यमानाशयः=Small. Intestines. २ बृहदन्त्रं=Colon. ता एताः
फुस्फुसादयः प्राचीनसंज्ञाः । ३ यकृत=Liver (लिभर) । ४ पित्ताशयः=Gall-Bladder
(गल ब्लाडर) । ५ प्लीहा=Spleen (स्प्लीन) । ६ सर्वाहारजरणात्मस्य रसविशेषस्याग्नि-
स्वरूपस्य धारणादन्याशयः=Pancreas. सोऽयं क्रोमेति केचित् । तत्तुच्छम्, दृश्यतामुपोद्घातः ।
७ वृक्कौ=Kidneys, ८ मूत्रस्रोतसी गवीनीसंज्ञे वृक्काभ्यां निर्गत्य वस्तिमभिप्रपन्ने=Ureters.
वस्तिः=Bladder. ९ गर्भाशयः=Uterus. १० बीजकोषौ=Ovaries. ११ बीजस्रोतसी=
Fallopian or Uterine Tubes. १२ मुष्का=Testicles. १३ कर्णशङ्कुल्यौ=Pinnæ
of the Ears. १४ कर्णकुहरम्=External Auditory Meatus. १५ श्रुतिपटहः=
Tympanic Membrane. आदिपदात् श्रुतिशम्बूकादीनि इन्द्रियखण्डे वक्ष्यमाणानि ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

१३

घ्राणे—द्वे अस्थिप्राचीरकेण द्विभागविभक्ते । तदवयवास्तु—घ्राण-
पुटे, घ्राणविवरे, घ्राणकला, घ्राणपथश्च त्रिभूमिविभक्तः । तदन्तःस्थायां घ्राण-
कलायाञ्च गन्धप्राहिनाड्याः प्रतानाः ।

सर्वेपाञ्चैषां विस्तरमिन्द्रियखण्डे वक्ष्यामः ।

पञ्च कर्मेन्द्रियाधिष्ठानानि—वाक्पाणिपादपायूपस्थसंज्ञानि । तत्र—

वागिन्द्रियाधिष्ठानम्—जिह्वासमवेतं स्वरयन्त्रं कण्ठस्थम् ; वाचो हि
कण्ठघोषेण नानाविधजिह्वाप्रचेष्टन-परिणमितेनाभिनिष्पाद्यन्ते ।

पाणिपादम्—ग्रहण-धारण-स्थान-चलनादिसहायमित्युक्तपूर्वम् ।

पायुर्नाम—मलविक्षेपकर्मा बृहदन्तस्य प्रान्तभागो गुदसंज्ञः ।

उपस्थो नाम—जननेन्द्रियम्—पुरुषस्य शिश्रः, स्त्रिया योनिरिति ।

नव द्वाराणि—चक्षुषी, श्रोत्रे, नासाविवरे, मुखं, पायुः, मूत्रमार्गश्चेति ।
स्त्रियास्तु त्रीण्यधिकानि—स्तनावपत्यपथश्चेति ।

[मर्माणि नाम—“मांस-सिरा-स्नाय्वस्थि-सन्धिसन्निपातास्तेषु स्वभावत
एव विशेषेण प्राणास्तिष्ठन्ति । तस्मान्मर्मस्वभिहतास्तांस्तान् भावानापद्यन्ते । तान्ये-
तानि पञ्चविकल्पानि मर्माणि । तद्यथा—सद्यःप्राणहराणि, कालान्तरप्राणहराणि,
विशल्यघ्नानि, वैकल्यकराणि, रुजाकराणि चेति । सप्तोत्तरञ्च मर्मशतमत्र काये’—
इति साञ्चः^१ ।

अथेदानीं प्रत्यङ्गावयवविशेषान् ब्रूमः । तत्र—

शिरोग्रीवोपाङ्गानि—ललाटं, भ्रुवौ, शङ्खौ, गण्डौ, ऊर्ध्वहनुमण्डलम्,
अधोहनुमण्डलम्, ओष्ठाधरौ, चिबुकं, शिरोधरा चेति स्पष्टार्थानि ।

मध्योपाङ्गानि—स्तनौ, वक्षः, पार्श्वौ, पृष्ठम्, उदरं, कुक्षिद्वयं, नाभिः,
वस्तिदेशः, कटिः, त्रिकञ्चेति^२ प्रसिद्धार्थानि ।

शाखोपाङ्गानि—अंसः, कक्षा, प्रण्डः, कफोणिः, प्रकोष्ठः, मणिवन्धः,
पाणितलं, पाणिपृष्ठम्, अंगुलयश्चेति प्रतिबाहु उपाङ्गानि । तत्रांसो भुजशिरः ।
भुजवक्षसोः सन्धिः कक्षा । अंसात् कफोणिं यावत् प्रण्डः । बाहुमध्यसन्धेः
पृष्ठभागः कफोणिः, स एव कूर्परोऽपि । कफोणेरधश्चोर्ध्वं मणिवन्धात् प्रकोष्ठः ।

१ यथा सुश्रुतशारीरकप्लेढ्याध्याये । इदानीन्तनशल्यतान्त्रिकनैपुण्येन तु बहवो मर्माभिधाताः
साध्याः—इति पृथगुपदिष्टानि मर्माणि । न च भ्रमितव्यं मर्मस्वभिहतेषु मृत्युरेव भवति
नियमेनेति । २ त्रिकं नाम पृष्ठवंशस्याधरो भागः, यत्र सन्धीयेते श्रोणिफलके उभयतः ।

करप्रकोष्ठयोः सन्धिर्मणिबन्धः । मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य वहिर्भागः करभः ।
अधो मणिबन्धात् पाणिः करापरपर्यायः । पाणेः सम्मुखो रेखांकितो भागः
पाणितलम्, तद्विपरीतं पाणिपृष्ठम् । अंगुष्ठ-तर्जनी-मध्यमा-ऽनामिका-कनिष्ठाख्याः
पञ्च करांगुलयः ।

जघनं, वक्ष्णः, ऊरुः, जानु, जङ्घा, गुल्फौ, पादसन्धिः, पाणिर्णः, पादतलं, प्रपदं,
पादपृष्ठम्, अंगुलयश्चेति प्रतिसक्थि उपाङ्गानि । तत्र जघनं नाम श्रोणिपार्श्वम्—
सक्थिशिरःस्थम् । मध्यकाय-सक्थनोः सन्धिवक्ष्णः । वक्ष्ण-जानुनोर्मध्यमूरुः ।
ऊरुजङ्घयोः सन्धिर्जानु । जानुनोऽधस्तात् जङ्घा । जङ्घाया अधोभागे उभयतो
गुल्फौ । तयोर्मध्येऽधस्तात् पादसन्धिर्गुल्फसन्धिर्वा । तदधः पादः । तदवयवास्तु
पादपश्चिमो भागः पाणिर्णः, पादाग्रं प्रपदं, रेखांकितो भागः पादतलम्, तद्विपरीतं
पादपृष्ठम्, पादांगुलयश्च पञ्च करांगुलिवदेव इति ।

सा खल्वियं शारीरपरिभाषा, या सम्यगवगता निखिलमपि शारीरतत्त्वमग्रे
वक्ष्यमाणमवबोधयिष्यति ।

तथा चाहुः—

“अध्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः ।

परिभाषाः प्रकथ्यन्ते दीपीभूताः सुनिश्चिताः ॥”

“शरीरसंख्यां यो वेद सर्वावयवशो भिषक् ।

तदज्ञाननिमित्तेन मोहेन स न युज्यते ॥” (च० शा० ९ अ०)

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातः अस्थिसामान्यवर्णनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अस्थीनि नाम—स्थिरकठिनावलम्बनधातुः शरीरस्य यत्र प्रतिवध्यन्ते
मांसपेश्यन्ताः स्नायवश्च । तानि प्रथमतः परिज्ञेयानि, तेषां प्रधानालम्बनत्वात्
कायस्य । तथाह्युक्तम्—

“अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ।

अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥

तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ।

अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम् ॥” (सु० शा० ६ अ०)

तान्युपादानद्वितयसंयोगादभिनिष्पद्यन्ते । उपादानद्वितयञ्च—कोमलः स्नायु-
संघातभागः, कठिनः सुधावहुलभागश्चेति । कोमलस्नायुतन्तुजालकेषु कठिन-
सुधांशसंयोगाद्धि^१ सर्वास्थनामभिसम्भवः ।

अथास्थनां द्विरूपमावरणम्—वाह्यमाभ्यन्तरञ्च । तत्र या वहिरावृणोत्यस्थीनि,
सा अस्थिधरा नाम कला जीवभूमिरस्थनाम् । या त्वन्तरावृणोत्यस्थिविवराणि
अन्तर्वेष्टनीभूय, सा मज्जधरा^२ नाम कला स्वनामव्याख्याता ।

द्विविधश्चास्थनामुपादानसङ्घातविशेषश्छेदेन दृश्यः—घनसङ्घातः शुषिरसङ्घात-
श्चेति । तत्र घनसङ्घातः सर्वास्थनां वहिर्भागेषु, विशेषतश्च नलकास्थनाम् । शुषिर-
सङ्घातः क्षुद्रविषमास्थनां कपालास्थनाञ्चाभ्यन्तरतः,^३ प्रान्तेषु च नलकास्थनाम्
लोहितमज्जधारणाय ।

सूक्ष्मनिर्माणं पुनः कठिनास्थनामुत्तरोत्तरावेष्टकप्राकारवद् विन्यस्तैः सूक्ष्मै-
रस्थिकोषाणुकैः^४, तच्च दृश्यमणुवोक्षणयन्त्रसहायेन चक्षुषा । तरुणास्थनान्तु
निर्माणमस्थिकोषाणुकयुग्मैरन्यथा विन्यस्तैः । (तद्विशेषाः १म चित्रे द्रष्टव्याः)

एष पुनरस्थनां पोषणप्रकारः । धमन्यः सर्वास्थिषु स्फुटानि विवराण्या-
श्रित्य प्रविशन्ति, प्रसरन्ति चानेकधा सूक्ष्मानुसूक्ष्मैः प्रतानैरस्थिसुरङ्गासु
सूक्ष्मासु—एवं पोषणार्थं शुद्धरक्तागमः । सिराश्च तत्सहचर्यः तैरेव मार्गैरविशुद्धं
रक्तं वहिर्नयन्ति—एवमविशुद्धरक्तविसर्गः ।

अथैषां सर्वेषामेवास्थनां बाल्ये तारुण्यं^५ संख्याबाहुल्यञ्च, वयःपरिणामेन
कठिनीभावः संख्याल्पत्वञ्च परस्परसंयोगेन आ पञ्चविंशवर्षात् । श्वासपथादिगता-
नान्तु नियतमेव तारुण्यमन्यत्र वार्द्धकात् । वार्द्धके हि नियततरुणानामपि केषा-
ञ्चित् काठिन्यसम्भवः, कठिनानाञ्च भंगुरत्वम्, सुधांशाधिक्यसम्भवात् । तेन
दुर्लभं तदानां भग्नानामस्थनां सम्यक् प्रतिसन्धानम् ।

कठिनीभावश्च तरुणास्थनां तन्मध्यवर्त्तिनः केन्द्रविशेषानाश्रित्य तदमितः
प्रसर्पति । ते अस्थिकेन्द्रसंज्ञाः । तत्र नलकास्थनां प्रान्तभागाः प्रायेण बाल्ये पृथग्भूताः

१ सुधा—चूर्णकम् (Lime) । २ शणसूत्रवद्दृढ-सूक्ष्मतन्तुजालकेषु कठिनचूर्णवद्दृष्ट-
संयोगेन ह्यस्थनां निर्माणमित्यर्थः । तरुणास्थीनि तु नातिकठिनानि कोमलस्नायुभागस्याधिक्याद् ।
३ सेयं कला (Periosteum) चेदभिहन्यते, तदा तदावृतमस्थ्यपि शीर्यते, अत एव जीवभूमि-
रियमस्थनाम् । ४ मज्जधरा कला = Endosteum. ५ सुधांशाधिक्ये सति घनसङ्घातः, स्नाय्वंशा-
धिक्ये शुषिरसङ्घातः (Compact tissue and Cancellous tissue). ६ कपालास्थनामपि
वाह्याभ्यन्तरावरणफलकद्वयं घनसङ्घातमयमेव । ७ Bone-cells. ८ Nutrient Foramina.
९ हृदयाभिमुखं नयन्तीति भावः । १० कोमलत्वम् । ११ बहवः खल्वस्थ्यवयवाः प्रौढावस्थारम्भे
कठिनीभूय परस्परं संयुज्यन्ते । १२ अस्थिकेन्द्रम् = Nucleus of Bone.

केन्द्रान्तरेभ्यः प्रवद्धन्ते, तांश्च तथाविधान् प्रान्तास्थि^१ संज्ञया निर्दिशन्ति नव्याः । दृश्यते च प्रान्तास्थानां प्रायो मध्यनलकेभ्यो विश्लेषः शिशूनां सन्धिविश्लेषे इति स्मर्त्तव्यम् ।

आकृतिः पुनः पञ्चविधान्याहुरस्थीनि प्राञ्चः । तानि—“कपाल-रुचक-तरुण-वलय-नलकसंज्ञानि ।” तत्र कपालाकृतीनि कपालानि, यथा शिरसि । दशनास्तु रुचकानि^२ । घ्राणकर्णादिषु तरुणानि । पार्श्वपृष्ठोरःसु वलयानि^३ । शाखासु नलकानि । इतराण्यपि सन्ति क्षुद्रकठिनान्यस्थीनि, येषां नैतेष्वन्तर्भावः सुकरः । तानि विषमाणि^४ नाम यथा पाणिपादकूर्चास्थीनि ।

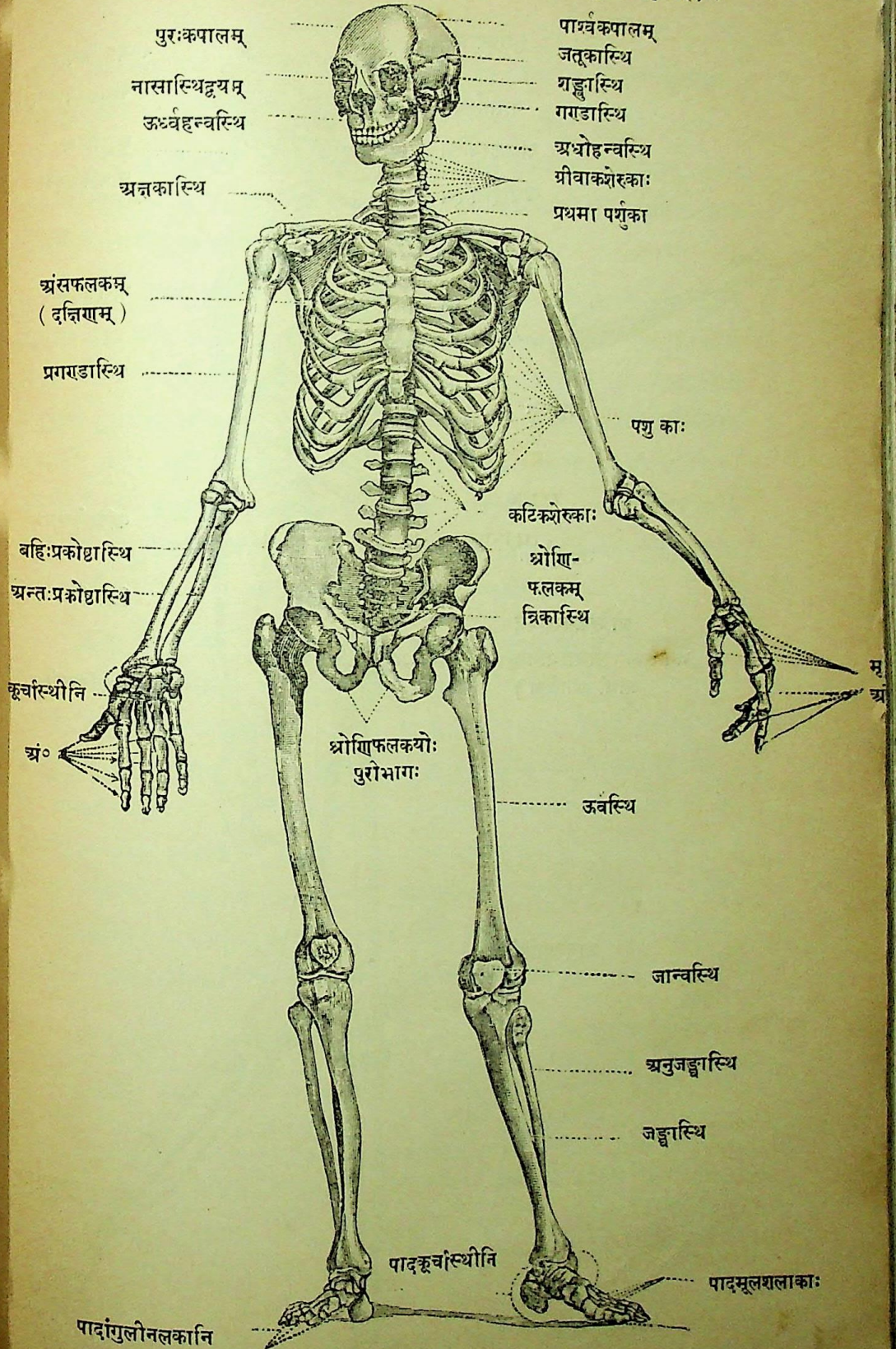
संख्यातस्तु त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते । त्रीणि शतानि शल्यतन्त्रविदः । द्वे शते प्रतीच्याः । आपातविरुद्धवादिनोऽपि सर्वे एवैतेऽवितथमाहुः । गणनाप्रकारभेदात् । तथाहि वेदवादिनो नख-दन्तादीनि तरुणास्थीनि चास्थिगणनायामन्तर्भावयन्ति, नैवमितरे । तरुणास्थीनि दशनांश्च^५ गणयन्ति शल्यतन्त्रविदः प्राच्याः, नैवं प्रतीच्याः । पृथग्वयोग्रहणाच्च । प्राञ्चो हि यौवनप्रविष्टस्य सञ्चक्षतेऽस्थीनि प्रौढस्य तु प्रतीच्याः । ये हि खलु तावदस्थ्यवयवाः पृथक् सन्ति किशोरवयसस्त एव एकीभूय बहुधा सम्पूर्णास्थीनि स्वल्पसंख्यानि निष्पद्यन्ते प्रौढस्येति हि संख्याल्पत्वं नव्यानाम् ।

इह तु प्रौढकाये प्रत्यक्षदृष्टानि कठिनास्थीन्येव संचक्ष्महे—गणना-सौकर्याल्लाघवाच्च । तरुणास्थिनखदशनानान्तु नेह गणना । तरुणास्थनाम-संख्येयप्रायत्वात्, अस्थिरसंख्यत्वाच्च, नखदशनानाञ्च त्वग्विपरिणाममात्रत्वात् । एवञ्चेह कठिनास्थीनि चतुर्विधान्येव—कपालानि, वलयानि, नलकानि, विषमाणि चेति । तरुणास्थीनि तु वलय-पत्रकादिनानाविधाकृतीनि ।

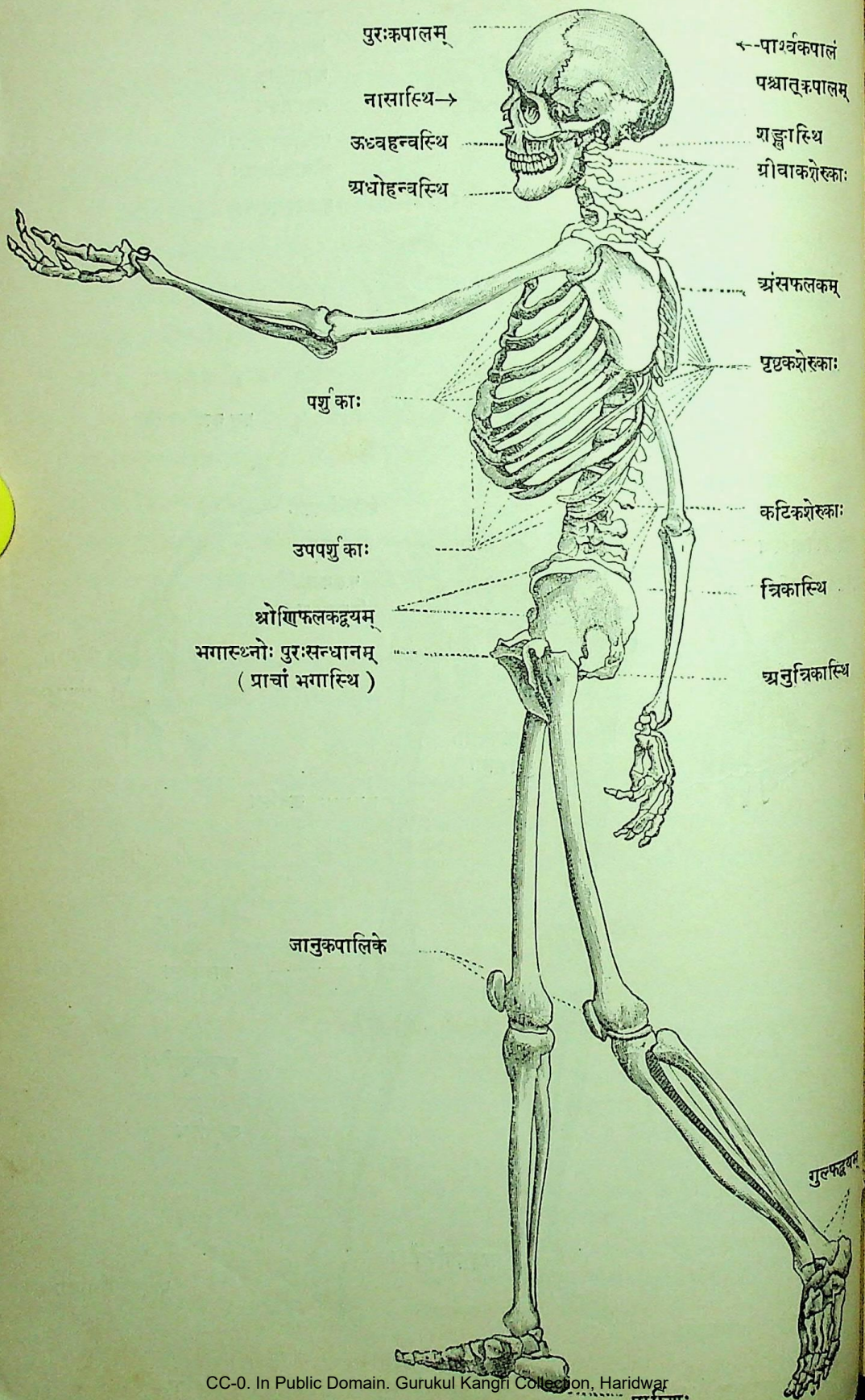
अथैषां सङ्ख्यानम् । तत्र—

शाखाऽस्थीनि—यथा [दृश्यतां कङ्कालचित्रद्वयम् (१।२)]—एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि, द्वे अंगुष्ठे इति चतुर्दश^१ अङ्गुलीषु । पञ्चानामङ्गुलीनां १ Epiphysis. २ रुचकानि, रुचकाकारत्वात् । रुचकं नाम कङ्कतिका (कंकही, चिरुणीति वा भाषा) । ३ पूर्णवलयवत्तदंशवद् वा दृश्यमानत्वात् । ४ उच्चावचाकारत्वात् । ५ चरक-याज्ञ-वल्क्यादयः । ६ सुश्रुतभेलाद्याः । ७ यूरोपीयाः । ८ न तु नखान् । ९ कशेरुकावयवादीनां पृथक्-संख्यानदर्शनात् स्फुटमनुमीयते खल्वेतत् । १० त्वच एव विपरिणामेन निष्पद्यन्ते नखा दशनाश्च शेषाश्च । तेषामस्थिषु गणनं वेदवादिनां युज्यत एव, दशनादीनामपि गङ्गाजलादौ निःक्षेपे अस्थिनिक्षेपफल-स्वीकारात् । ११ यत्तु सुश्रुते “एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणीति पञ्चदश”—इति, तत् लिपिकरप्रमादजन्यम्, प्रत्यक्षविरोधात् स्वीकृतिविरोधाच्च । तथा हि सन्धिगणनायां “एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि द्वे अङ्गुष्ठे” इति अङ्गुलीसन्धीनां चतुर्दशैव संख्या निर्दिष्टा (सु० शा० अ०) । अङ्गुल्यस्थीनि = Phalanges.

द्वितीय चित्रम्—नरकङ्कालम् (१)—(सम्मुखतो दृष्टम्) ।



तृतीय चित्रम्—नरकङ्कालम् (२)—(पार्श्वतो दृष्टम्) ।



मूलतः शलाकाः पञ्च । तन्मूले पादकूर्चास्थीनि सप्त । जङ्घायां द्वे । जानुन्येकम् । एकमूराविति । त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थि भवन्ति । तथा द्वितीये ।

बाहौ तु अङ्गुलीषु चतुर्दश । शलाकाश्च पञ्च पूर्ववत् । पाणि कूर्चास्थीनि अष्टौ । प्रकोष्ठे द्वे । प्रगण्डे एकम् । त्रिंशदेवमेकस्मिन् बाहौ भवन्ति । तथा द्वितीये । एवं शाखासु सविंशतिकमस्थिशतं द्रष्टव्यम् ।

अथ मध्यशरीरे अस्थीनि—तत्र शरीरस्य मध्यालम्बनभूते पृष्ठवंशे कण्ठादारभ्य कटिं यावत् चतुर्विंशतिः कशेरुकाः^{१०} । तदनुवन्धेन त्रिकसंस्थमेकं त्रिकास्थि^{११} नाम (तदस्थिपञ्चकसङ्घातमयम्) । तदनुवन्धेन च गुदपश्चिममेकम् अनुत्रिकं गुदास्थि वा नाम (तदपि तथैव) । श्रोण्योर्द्वे कपालास्थिनी श्रोणिफलके नाम । उरसि पुरो मध्यफलकमेकम् उरःफलकं^{१२} नाम (तदस्थित्वयसंयोगजम्) । अक्षके^{१३} द्वे तदुभयतः । अंसफलके^{१४} द्वे अंसपृष्ठतः । पार्श्वयोरेकैकस्मिन् द्वादशेति चतुर्विंशतिः पर्शुकाः^{१५} । ग्रीवायां पुरो रसनामूलगमेकमर्ध्वलयाकारं कण्ठिकास्थि^{१६} नाम । एवमष्टपञ्चाशदस्थीनि मध्यकाये भवन्ति ।

अथ शिरसि—चत्वारि शिरःकपालानि—पुरःकपालम्^{१७} पश्चात्कपालं^{१८}, पार्श्वकपाले^{१९} द्वे चेति । द्वे शङ्खयोः—शङ्खास्थिनी^{२०} नाम । द्वे शिरोभूमिभूते—तयोरेकं जतूकाकारं कण्ठतालवादिच्छादनं जतूकास्थि^{२१} नाम, अपरं ऋर्भराख्यं^{२२} लघुशुषिरं नासामूलगम् । द्वे गण्डयोः^{२३} द्वे ऊर्ध्वहन्वस्थिनी^{२४} । एकमधोहन्वस्थि^{२५} । द्वे ताल्वस्थिनी^{२६} । द्वे नासामूलतः पार्श्वयोः नासास्थिनी^{२७} नाम । द्वे नासाभ्यन्तरतः शुक्तिके^{२८} नाम । एकं नासामध्यप्राचीरभूतं सोरिकाख्यम्^{२९} । द्वे अश्रुमार्गाश्रये अश्रुपीठे नाम एकैकतः अक्षिकोटर-नासापार्श्वयोर्मध्ये । त्रीणि सूक्ष्मास्थीनि^{३०} प्रतिकर्णमभ्यन्तरतो निगूढे इति कर्णयोः षट्, तानि श्रुतियन्त्रांश-भूतानि । एवमष्टाविंशतिरस्थिनां शिरसि । द्वाविंशतिर्वा कर्णास्थिवर्जम् ।

१ Metatarsals. २ Tarsal Bones. ३ (Leg Bones) Tibia and Fibula. ४ Patella. ५ Femur. ६ Metacarpals. ७ Carpal Bones. ८ Radius and Ulna. ९ Humerus. १० Vertebrae. ११ Sacrum. १२ Coccyx. १३ Os Innominatum (Hip-bone) १४ Sternum. १५ Clavicles. १६ Scapulae. १७ Ribs. १८ Hyoid. १९ Frontal Bone. २० Occipital Bone. २१ Parietal Bone. २२ Temporal Bone. २३ Sphenoid. २४ Ethmoid. २५ Malar Bones. २६ Maxillae (Superior Maxillary Bone). २७ Mandible (Inferior Maxillary Bone). २८ Palate Bones. २९ Nasal Bones. ३० Inferior Nasal Concha or Turbinated Bone. ३१ Vomer. ३२ Lachrymal Bones. ३३ Ossicles of the Ear.

तदिदं समुदायेन षडधिकं शतद्वयं कठिनास्थनामवगन्तव्यम्, शतद्वयं वा कर्णास्थिवर्जम् । केषुचित् कण्डरान्तेष्वपि प्रायश्चिपिट-चणकाकाराणि^१ दृश्यन्ते क्षुद्रास्थीनि । नेह तेषां पृथक् संख्या, अनिश्चितावस्थानात् ।

तरुणास्थनां^२ च नेह गणनेति प्रागवोचाम, दिग्दर्शनार्थन्तु कानिचिद् निर्दिश्यन्ते । तानि यथा पृष्ठवंशे, कशेरुकान्तरालेषु, सन्ध्यन्तरालेषु, पर्शुकान्तेषु, नासाप्राचीरेषु, कर्णपालयोः, श्वासपथे, तच्छाखाप्रशाखासु चेति । तानि तत्तत्-प्रसङ्गेषु वर्णयिष्यन्ते ।

दशनास्तु द्वाविंशत् । तेषु चतुर्णां पश्चिमानां यौवने समुद्भेदः कदाचित् चिरेण वा । त्वग्विपरिणाममात्रत्वादशनानामिह नास्थित्वमङ्गीक्रियत इत्युक्तपूर्वम् । तद्विशेषवर्णनन्तु करोटितलवर्णने सूक्ष्मशारीरे च द्रष्टव्यम् ।

सोऽयं सर्वास्थिप्रविभागः संक्षेपेण व्याख्यातः । विशेषोऽत ऊर्ध्वम् ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातोऽस्थिविशेषवर्णनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इह खलु सामान्यतः परिज्ञानेऽप्यस्थनां विशेषा अवश्यं ज्ञातव्या भवन्ति सूक्ष्मप्रतिपत्तये, पेशीक्रियाविज्ञानाय, भग्नास्थिप्रतिसन्धानार्थञ्च । तानेवेदानीं विशेषान् प्रविभज्य समाचक्ष्महे ।

आदौ चेह तावद् वर्णनासौकर्याय पुरुषस्योत्तानकरयुगलस्य आलम्बित-हस्तपादस्य च ग्रहणम् । तदपेक्षया च ऊर्ध्वाऽधः-पुरः पश्चादिति व्यवहारः सर्वत्र सर्वावयववर्णनेषु । तस्य च नाभेरनुक्रमेण कल्प्यते ऊर्ध्वाधोगामिनी रेखा—सेयं मध्यरेखा नाम । तस्याः सन्निकृष्टा^३ सीमा—अन्तःसीमा, माध्यसीमा^४ वा नाम । विप्रकृष्टा तु बहिःसीमा, पार्श्विकसीमा^५ वा नाम ।

अथात्र प्रथमः शाखास्थिविज्ञानीयः परिच्छेदः ।

तत्र ग्रहण-धारण-स्थूणन-चलनादिसहायाः शाखाश्चतस्रः—द्वौ बाहू, द्वे च सक्थिनी । तत्र प्रतिसक्थि त्रिंशदस्थीनि । यथा—पादाङ्गुलीषु चतुर्दश, पाद-

१ Sesamoid Bones. २ तरुणास्थि = Cartilage. ३ पेश्यो हि प्रायेणास्थिनिबद्धाः प्रान्तभागैरित्युक्तपूर्वं, पेशीक्रियाश्च करचरणदिसञ्चालनाद्यशेषविशेषरूपाः, अस्थिसन्निवेशविशेषतश्च पेशीनां क्रियाविशेषाः । ते तु पेश्यध्याये वक्तव्याः । ४ पेशीसन्निवेशज्ञानादस्थिविशेषाभिज्ञानाच्च विना भग्नास्थनां यथायथं सन्निवेशनं दुष्करमिति भावः । ५ समोपस्था अभिमुखो वा । ६ शरीरस्य मध्यरेखाभिमुखत्वात् मध्यसीमा = Medial Border. ७ पार्श्वभिमुखत्वात् पार्श्वसीमा = Lateral Border.

मध्ये मूलशलाकाः पञ्च, पादमूले पादकूर्चास्थीनि सप्त इति प्रतिपादं पञ्चविंशतिः ।
जङ्घयोर्ध्वं, जानुन्येकम्, एकमूराविति ।

अथादौ पादास्थीनि त्रयः । तत्र पादांगुल्यस्थीनि -

एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रीणि त्रीणि, द्वे अंगुष्ठे । तानि पादांगुलिनलकानि^१
नाम प्रतिपादं चतुर्दश । तानि तिसृषु श्रेणीषु विभक्तानि—अग्रिमश्रेण्यां पञ्च,
मध्यमश्रेण्यां चत्वारि, पश्चिमश्रेण्यां पञ्चेति । तेषु अग्रिमाणि पञ्च पुरतो
मुक्तवितताग्राणि नखधारणाय ; सन्धीयन्ते चैतानि पश्चिमतोऽङ्गुलीनलकैर्मध्य-
श्रेणीस्थैरन्यत्रांगुष्ठात्, अंगुष्ठे तु पश्चिमनलकाग्रेण अग्रिमनलकस्य सन्धिः, मध्य-
नलकाभावात् । मध्यश्रेणीस्थानि चत्वारि तु उभयतः^२ सन्धिमन्ति । पश्चिम-
श्रेणीस्थानि पञ्च, तान्यप्येवम्^३ ।

अथ पादांगुलिमूलशलाकाः—

अंगुलीनां मूलतः प्रतिपादं पञ्च नलकास्थीनि पादांगुलिमूलशलाका^४ नाम,
तैरालम्ब्यते प्रपदम् । मूलतश्च तानि यथायथं कूर्चास्थिभिः सन्धीयन्ते, अग्रतश्च
पश्चिमांगुलीनलकैः । अतएव कूर्चास्थानां शलाकाधिष्ठानसंज्ञा प्राचाम् ।

तत्रेमे विशेषाः—(चतुर्थचितम्)

प्रथमा—अंगुष्ठमूलशलाका नाम । सा स्थूलतमा ह्रस्वतमा च
पादशलाकास्थनाम् । तया निर्मीयते प्रपदस्यान्तःसीमा, सन्धीयते चासौ मूलतः
आन्तरकोणकाख्येन कूर्चास्थना । अस्याश्च मुण्डं स्थूलं खातद्वयाङ्कितञ्च पादतल-
प्रदेशे मध्यतः, तयोश्च खातयोविवर्त्तते ह्रस्वायाः पादांगुष्ठसङ्कोचन्याख्यपेश्याः^५
कण्डरे चणकास्थिनी^६ च तदन्तरीये । सन्धीयते चेदमंगुष्ठपश्चिमनलकेन पुरतः ।

द्वितीया—तर्जनीमूलशलाका नाम । सा पादांगुलिशलाकासु दीर्घ-
तमा, मूलतश्च त्रिभिः सन्धिलक्ष्मभिरङ्किता कोणकाख्यकूर्चास्थितयेण सन्धि-
सूचकैः । मुण्डं चास्याः सन्धीयते तर्जनीपश्चिमनलकमूलेन ।

१ Phalanges. २ पुरोऽग्रिमनलकैः पश्चात् पश्चिमनलकैरिति भावः । ३ उभयतः
सन्धिमन्तीत्यर्थः । सन्धिश्च कनिष्ठायङ्गुलिचतुष्टये पुरो मध्यनलकैरङ्गुष्ठे पुरोऽग्रिमनलकेन, पश्चात्
पञ्चस्वपि अङ्गुलीमूलशलाकाग्रैः । ४ Metatarsals. ५ Flexor Hallucis Brevis.
६ चणकास्थि—Sesamoid Bone. ७ सन्धिलक्ष्म सन्धेश्चिह्नं छमसृणांशरूपम् (Facet).

तृतीया—मध्यमामूलशलाका नाम । तस्या मुण्डं मध्यमांगुली-
पश्चिमनलकमूलेन सन्धिमत्, मूलतश्चासौ चतुर्भिः सन्धिलक्ष्मभिरङ्किता । तेषु
माध्यसोमि सन्धिलक्ष्मद्वयं तर्जनीमूलशलाकापार्श्वेन सन्धिसूचकम् । पार्श्विक-
सोमि त्वेकं सन्धिलक्ष्म अनामिकामूलशलाकापार्श्वेन सन्धानाय, मध्यतश्चैकं
बृहत्तरं बाह्यकोणकाख्येन कूर्चास्थना सन्ध्यर्थम् ।

चतुर्थी—अनामिकामूलशलाका नाम । सा मूलतः सन्धीयते
घनाख्येन बाह्यकोणकाख्येन चेति द्वाभ्यां कूर्चास्थिभ्यां, तलैव बाह्यान्तरपार्श्वयोश्च
यथाक्रमं कनिष्ठातर्जनीमूलशलाकयोर्मूलपार्श्वभ्याम् ।

पञ्चमी—कनिष्ठामूलशलाका नाम । सा मूलतो वहिःसीमि
स्थूलाबुदेनोपलक्षिता । द्वे चास्या मूलतः सन्धिलक्ष्मणी, एकं त्रिकोणं घनाख्येन
कूर्चास्थना सन्ध्यर्थम्, अपरमनामिकामूलशलाकापार्श्वेन ।

पेश्यस्तु मूलशलाकान्तरीयाः सप्त तत्पार्श्वसंस्क्ताः, चतस्रः पादपृष्ठ-
स्तिस्त्रश्च पादतले । तद्विवरणं चित्रेषु पेशीखण्डे च द्रष्टव्यम् ।

तदेवं पञ्च पादांगुलिमूलशलाका व्याख्याताः । तासां नानास्थिभिः सन्धि-
प्रकारस्मरणार्थमिमे श्लोकाः—

सन्धीयन्ते पादमूलशलाका मुण्डतः पुरः ।

अंगुलीपश्चिमनलैरथ कूर्चास्थिभिः क्रमात् ।

प्रथमा संहितैकेन द्वितीया संहिता त्रिभिः ।

तृतीयैकेन तुर्या तु द्वाभ्यामेकेन पञ्चमी ॥

अन्योन्यमथ मूले तु सन्धिस्तिसृषु पार्श्वयोः ।

एकतस्तु कनिष्ठायामंगुष्ठे कचिदेव तु ॥

अथ कूर्चास्थीनि—कूर्चास्थीनि नाम पादपश्चिमभागनिर्माणकाणि
स्थूलह्रस्वविषमाणि प्रतिपादं सप्त । तान्येव मूलशलाकाधिष्ठानानि नाम प्राचाम् ।

तानि क्रमेण कूर्चशिरः—पार्णि—नौनिभ—घन—आन्तरकोणक—मध्य-
कोणक—बाह्यकोणकसंज्ञानि । (चतुर्थचित्रम्) तत्र—

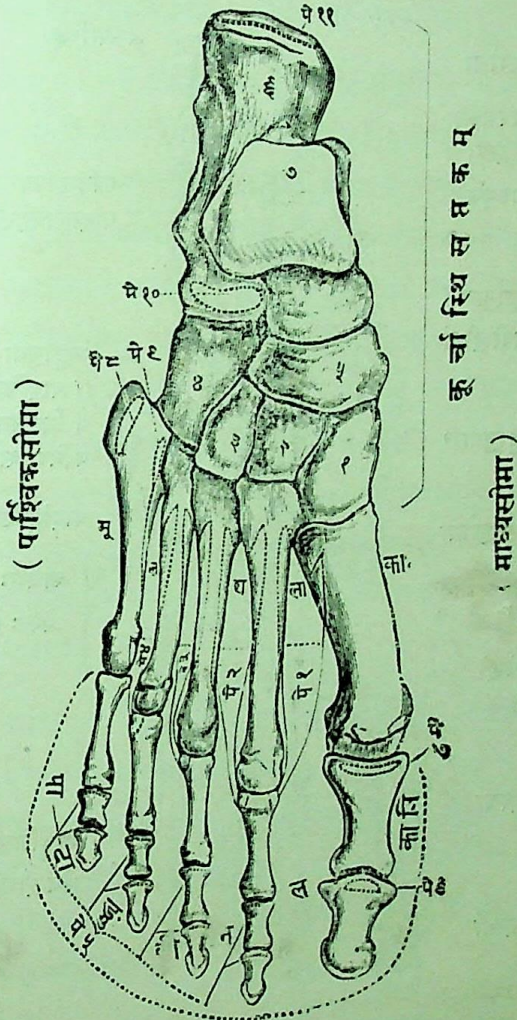
कूर्चशिरो नाम—(चतुर्थचित्रे ७) सर्वेषां कूर्चास्थनामुपरिस्थितं वृत्तं
प्रायमुण्डमस्थि जङ्घापादयोः संयोजकम् । अस्य मुण्डं वर्त्तलाकारं न्युब्जपृष्ठं सन्धि-

१ कुत्रचित् कङ्काले अंगुष्ठमूलशलाकापि मूलपार्श्वतस्तर्जनीमूलशलाकया सन्धिमती, न त्वेव
प्राय इत्यर्थः । २ Tarsal-Bones. ३ Talus (or Astragalus.)

चतुर्थ (क) चित्रम् दक्षिणपादास्थीनि ।

(पादपृष्ठे दृष्टानि) *

पार्श्वः



चित्रव्याख्या—

१—७ कूर्चास्थीनि । तत्र १, २, ३ इति अन्तर-मध्य-बाह्यसंज्ञानि कोणकास्थीनि । ४ घनाख्यं कूर्चास्थि । ५ नौनिभम् । ६ पार्श्वः । ७ कूर्चशिरः । पे—इत्यङ्कितेषु स्थानेषु संयुज्यन्ते पेश्यः । तद्यथा—पे १, पे २, पे ३, पे ४—उत्तराः शलाकान्तरीयाः । पे ५—पादाङ्गुलिप्रसारणया दीर्घायाः कण्डराचतुष्टयनिवेशः । पे ६ पादाङ्गुलिप्रसारणया दीर्घायाः निवेशः । पे ७, पे १०—पादाङ्गुलिप्रसारणया ह्रस्वायाः प्रान्तद्वयस्य निवेशौ । पे ८, पे ९—पादविवर्तन्याः ह्रस्वायाः तृतीयायाश्च प्रान्तद्वयम् । पे ११, पिण्डकाकण्डरायाः पार्श्वपश्चिमतो निवेशः ।

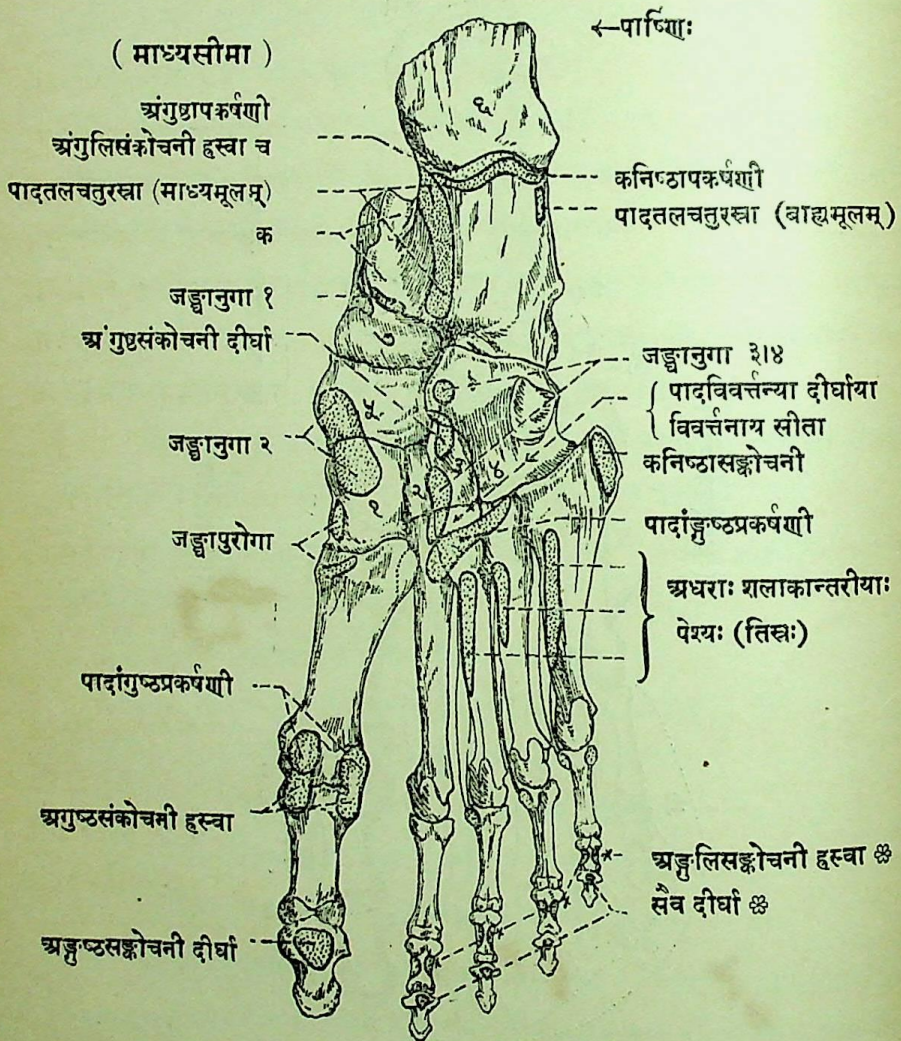
❀ पादतलचित्रमपरपृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

(To face page 20)

चतुर्थ (ख) चित्रम् ।

दक्षिणपादास्थीनि ।

(पादतले दृष्टानि)



(माध्यसीमा)

अंगुष्ठापकर्षणी
अंगुलिसंकोचनी ह्रस्वा च
पादतलचतुरस्रा (माध्यमूलम्)
क

कनिष्ठापकर्षणी
पादतलचतुरस्रा (बाह्यमूलम्)

जङ्गानुगा १
अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घा

जङ्घानुगा ३१४
 { पादविवर्त्तन्या दीर्घाया
 { विवर्त्तनाय सीता
 कनिष्ठासङ्कोचनी

जङ्गानुगा २

जङ्घापुरोगा

पादांङ्गुष्ठप्रकर्षणी

अधराः शलाकान्तरीयाः
पेश्यः (तिष्ठः)

पादांगुष्ठप्रकर्षणी

अगुष्ठसंकोचमी हस्त्रा

अङ्गुलिसङ्कोचनी ह्रस्वा ❀
सैव दीर्घा ❀

अङ्गुष्ठसङ्कोचनी दीर्घा

चित्रव्याख्या —

१-७ कूर्वास्थीनि । तत्र १-२-३, कोणकाख्यमस्थित्रयम् । ४ घनाख्यं कूर्वास्थि । ५ नौनिभम् ।
६ पाष्णिः । ७ कूर्चशिरः । पेशीनां निर्देशे तत्र तत्र निवेशः प्रभवो वा ज्ञेयः । क—अङ्गुष्ठसंकोचन्या
दीर्घाया विवर्तनाय अन्तर्गुल्फपश्चिमा नाम सीता । ❀ अङ्गुलिचतुष्टये कण्ठरास्तेर्निविष्टा ।
जंघानुगा पेश्या मूलचतुष्टयनिवेशाः जंघानुगा १।२।३।४ इत्येकैर्दृशिताः ।

लाञ्छनयुतञ्चोपरिष्ठात् जङ्घास्थनोऽधःप्रान्तेन सन्ध्यर्थम् । अधःप्रदेशे चास्य गम्भीरा सीता^१ सन्धि-स्नायुरञ्जुप्रवेशाय, द्वे च सन्धिलक्ष्मणी पार्णिशिरसा सन्ध्यर्थम् । माध्यपार्श्विकसीध्रोस्तु सन्धिलक्ष्मणी-जङ्घास्थनोर्गुल्फांशाभ्यां सन्धानार्थम् । पुरो-मुखेऽप्यस्यैकं सन्धिलक्ष्म, तत् नौनिभेन कूर्चास्थना सन्धानाय ।

पार्णिः^२ नाम - (४^{थं} चित्रे ६) बृहत्तमं कूर्चास्थि । तत् पार्णिनिर्मापकं सर्वदेहभारसहञ्च । अस्योर्ध्वप्रदेशे सन्धिलक्ष्मणोर्मध्ये गम्भीरा सीता सन्ध्यन्तरीय-स्नायुरञ्जुप्रवेशाय, सन्धिलक्ष्मणी च तत्र कूर्चशिरसा सन्ध्यर्थम् । अस्य पुरोमुखं विषमं ह्रस्वञ्च । पश्चाद्भागस्तत्वीपद्विषमो दीर्घश्च, स एव पार्णिमूलं निष्पादयति । अस्यान्तरसीम्नि ओष्ठाकारं प्रवर्धनकं^३ पार्ण्योष्ठं नाम । तस्योपरि स्फुटं सन्धिलक्ष्म कूर्चशिरसा सन्ध्यर्थम् । अधश्चास्य प्रवर्धनकस्य गम्भीरा सीता पादतलस्थ-सिरा-धमनो-नाडी कण्डरामुखानां धारणाय । षट् तु पेश्योऽस्मिन् कूर्चास्थि संयुक्तास्तासु एका पार्णिमूलपृष्ठतः पिण्डिकाकण्डरा^४ नाम, अपरा पादपृष्ठे पादांगुलिप्रसारणी^५ ह्रस्वा नाम या पार्णिपुरोभागस्य पृष्ठसम्भूता । चतस्रोऽपराः पार्णितलात् सम्भूय पादतले प्रसृताः, ता यथा—पादांगुष्ठापकर्षणी,^६ पादकनिष्ठा-पकर्षणी,^७ पादांगुलिसङ्कोचनी ह्रस्वा,^८ पादतलचतुरस्त्रा^९ नाम । (तासां विशेषाः पेश्यध्याये द्रष्टव्याः)

नौनिभं^{१०} नाम—(४^{थं} चित्रे ५) पादान्तरसीम्नि नावाकारं कूर्चास्थि । तस्य तु पुरोभाग ईषत्खातोदरस्त्रिभिः सन्धिलक्ष्मभिरुपलक्षितश्च क्रमेण कोण-काख्यकूर्चास्थित्रयेण (४^{थं} चित्रे १, २, ३) सन्ध्यर्थम् । अस्य पश्चिमभागोऽपि खातोदरः कूर्चशिरसः पुरोभागेन सन्ध्यर्थम् । अस्य बहिःसीम्नि क्षुद्रं सन्धिलक्ष्म घनाख्येन कूर्चास्थना सन्धानाय । अन्तःसीम्नि चास्य क्षुद्रमबुदम्, तत्र जङ्घा-नुगाख्यपेश्याः^{११} कण्डरान्तनिवेशः ।

घनं^{१२} नाम—(४^{थं} चित्रे ४) घनाकारं पादबहिःसीम्नि स्थितं कनिष्ठाऽनामिकामूलशलाकघोरधिष्ठानभूतं कूर्चास्थि । तस्य पुरोभागे द्विभागविभक्तं

१ इह सीता नाम गम्भीरखातम् । अस्मिन् शास्त्रे सीतादिशब्दाः पारिभाषिकार्थेषु निरुद्धाः ज्ञेयाः । २ Calcaneum (Os Calcis). ३ प्रवर्धनकं नाम प्रवृद्धागोऽस्थ्यवयवः । ४ Tendo Calcanes. ५ Extensor digitorum Brevis. ६ Abductor Hallucis. ७ Abductor digiti minimi. ८ Flexor digitorum Brevis. ९ Quadratus Plantaris. १० Navicular. ११ Tibialis Posticus muscle. १२ Cuboid. १३ घनम् = कूटम् (Anvil).

सन्धिलाञ्छनं कनिष्ठाऽनामिकामूलशलाकामूलाभ्यां सन्ध्यर्थम् । अस्य पश्चिमो भागः सन्धीयते पाष्णिमुखेन, तदर्थं चात्र स्फुटं सन्धिलक्ष्म । अस्यैवान्तः सीमि सन्धिलक्ष्म बहिःकोणकाख्येन कूर्चास्थना सन्धानार्थम् । प्रायशस्तदैवाऽपरमपि सन्धिलक्ष्म दृश्यते पश्चिमतः, तत् नौनिभेन सन्ध्यर्थम् । अधःप्रदेशे चास्य स्फुटा सीता दीर्घायाः पादविवर्त्तन्याख्यपेश्याः कण्डरान्तधारणाय ।

अन्तःकोणकं नाम—(४ थं चित्रे १) अंगुष्ठमूलशलाकामूलस्थं कूर्चास्थि त्रिकोणप्रायम् । तस्य चान्तःसीमा त्वङ्मातावरणा, बहिःसीमि चास्य द्वे सन्धिलक्ष्मणी तर्जनी-मूलशलाकामूलेन मध्यकोणकपाश्वेन च सन्ध्यर्थम् । तस्य पुरोभागस्थं सन्धिलक्ष्म शिम्बीवीजाकारम् अंगुष्ठमूलशलाका-मूलेन सन्धानाय । तस्य तलदेशे क्षुद्रमर्बुदम् जङ्घापुरोगा-जङ्घानुगाख्यपेशी-द्वयस्य कण्डरान्तनिवेशाय ।

मध्यकोणकं नाम—(४ थं चित्रे २) तर्जनीमूलस्थं क्षुद्रतमं कूर्चास्थि त्रिकोणप्रायम् । तस्य पुरोभागे सन्धिलक्ष्म तर्जनीमूलशलाकामूलेन सन्ध्यर्थम् । पाश्वर्योस्तु सन्धिलक्ष्मणी क्रमेण अन्तःकोणक-बहिःकोणकाभ्यां सन्धानाय । पश्चिमतश्च क्षद्रं सन्धिलक्ष्म नौनिभेन सन्ध्यर्थम् ।

बहिःकोणकं नाम—(४ थं चित्रे ३) मध्यमाया मूलशलाकाया मूलस्थं त्रिकोणप्रायं कूर्चास्थि । तत् सन्धीयते पुरो मध्यमामूलशलाकामूलेन तर्जन्य-नामिकामूलशलाकयोर्मूलाभ्याञ्च, तदर्थं चात्र दृश्यानि तथा तथा सन्धिलक्ष्माणि । पाश्वाभ्यां चेदं सन्धीयते मध्यकोणकेन घनेन च, यदर्थं स्फुटे तत्र सन्धि-लाञ्छने । पश्चिमतस्तु तस्य सन्धिलक्ष्मैकं नौनिभेन सन्धानाय ।

चरमोक्तानां त्रयाणां कूर्चास्थनां कोणकत्रयसंज्ञया निर्देशः ।

तदेवं पादास्थीनि व्याख्यातानि । तत्र पेशीसंयोगाश्चित्रे पेश्यध्याये च द्रष्टव्याः ।

अथ जङ्घास्थिनी ।

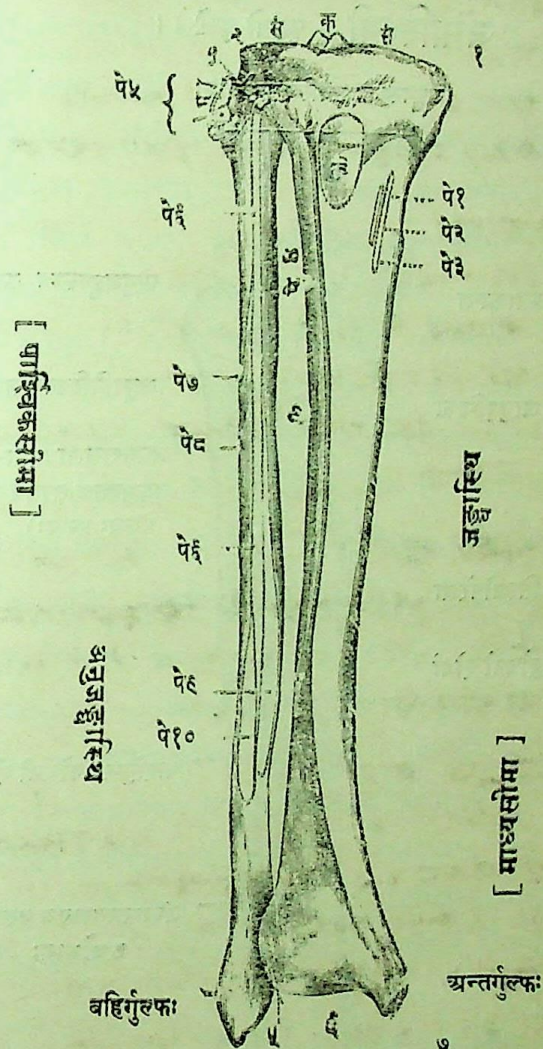
जङ्घास्थिनी—तावद् द्वे, जङ्घास्थि अनुजङ्घास्थि चेति । जान्वस्थि चैकं क्षद्रकपालाकारं जङ्घास्थनोरुपरि जानुसन्धेः पुरस्तात् शिथिलतया संहितम् ।

१ Peroneus Longus muscle. ३ Internal Cuneiform. ३ Tibialis Anticus.
४ Tibialis Posticus. ५ Middle Cuneiform. ६ External Cuneiform. ७ Leg-bones
(Tibia & Fibula).

पञ्चम (क) चित्रम् ।

जङ्घास्थिनी *

(सम्मुखतो दृष्टे)



[अधः प्रान्तो]

चित्रव्याख्या । अत्रैता निविशन्ते पेश्यः । पे १ दीर्घायामा । पे २ ऊर्वन्तःपट्टिका । पे ३ जानुकषणी कण्डराकल्पा । पे ४ जंघापुरोगा (जंघास्थि) । पे ५ द्विशिरस्का । पे ६, पे ६—इति द्वयं न्याप्य पादांगलोप्रसारणी दीर्घा । पे ७ पादविवर्त्तनी दीर्घा । पे ८ सव हस्वा, पे १० सैव तृतीया । पे ९ पादांगुष्ठप्रसारणी दीर्घा ।

अङ्कपरिचयास्तु यथा—१।२ जंघास्थनः शिरःस्थसुत्सेधद्वयम् ऊर्वस्थिकन्दाभ्यां सन्धापि । सं. सं.—सन्धिधलक्षणी । क—जानुसन्धिमध्यस्थं द्विमुखकण्टकम् । ३ जंघास्थनः पुरःस्थमर्बदम् । ४ अनुजंघास्थिशिरःसन्धानम् । ५ जघानुजंघास्थनोरधःप्रान्तसन्धानम् । ६ जंघास्थनः कूर्चशिरसा सन्धेयोऽशः । ७ तस्यैव अन्तर्गुल्फनिष्पादकोऽशः । ८ अनुजंघास्थन ऊर्ध्वप्रान्तः जंघास्थिपार्श्वेन सन्धायी । तत्र च ८ अङ्कं परितो निविशते द्विशिरस्काया और्व्याः कण्डरान्तः । ९ जंघास्थनोरन्त-रालस्था कला (दीर्घावकाशमाच्छाद्यस्थिता) । १० जंघास्थनोः पश्चिमदृश्यमपरपृष्ठे दृष्टव्यम् ।

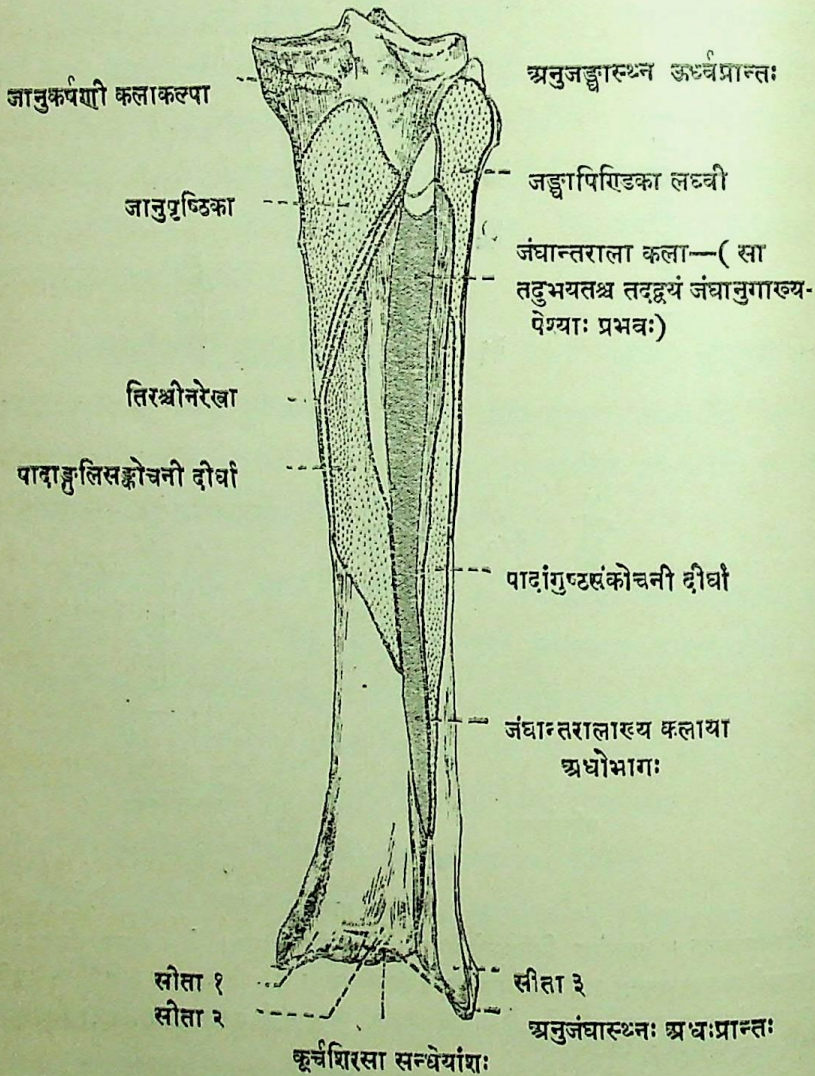
(To face page 22)

पञ्चम (ख) चित्रम् ।

जंघास्थिनी (पृष्ठतो दृष्टे) ।

जङ्घास्थनः उर्वस्थिसन्धेयांशः

क



चित्रव्याख्या—सीता १—पादाङ्गुलिसङ्कोचन्या दीर्घायाः, जंघानुगायाश्च (पेश्याः) कण्ठरान्त-
विवर्त्तनाय सीता । सीता २—पादाङ्गुलसङ्कोचन्या दीर्घायाः पेश्याः कण्ठरान्तविवर्त्तनाय सीता ।
सीता ३—पादविवर्त्तनयोः ह्रस्व-दीर्घयोः पेश्योः कण्ठराविवर्त्तनाय सीता ।

गुरुकुल कांगड़ी

चतुर्थोऽध्यायः ।

२३

तत्र जङ्घास्थि^१ नाम — ऊर्वस्थनः परं दीर्घतमं नलकास्थि (५म चित्रम्) ।
तस्य द्वौ प्रान्तौ मध्यनलकश्चेति तयो भागाः ।

तस्य ऊर्ध्वप्रान्तो द्वाभ्यामुत्सेधाभ्याम् उपलक्षितः पार्श्वयोः । (५म चित्रे १, २) । तयोरुपरिष्ठात् स्फुटे सन्धिलक्ष्मणी ऊर्वस्थनोऽधःप्रान्तस्थिताभ्यां कन्दाभ्याम्^२ सन्ध्यर्थम् (५ म चित्रे — सं सं) । अनयोश्च सन्धिचिह्नयोर्मध्यस्थं (तत्रैव — क) द्विमुखं कण्टकम्, येन संयुज्यते सन्ध्यन्तःस्थमर्द्धचन्द्राकारं तरुणास्थिद्वयम्^३ । तस्य च पुरः पश्चादाधीयते सन्ध्यन्तरीयस्वस्तिकस्नायवोः प्रान्तद्वयम् । पुरश्चोर्ध्वप्रान्तस्य स्फुटमर्बुदं (५म चित्रे ६), यत्परितः संयुज्यते जानुकपालबन्धनी स्नायुः । तस्यैव चोपरि पुरस्तात् सन्धिलक्ष्म जानुकपालेन सन्धानाय । पश्चात्तूर्ध्वप्रान्तस्य जानुपश्चिमः खातः, तत्र सन्धीयते पश्चिमा स्वस्तिकस्नायुः । तस्यैवोर्ध्वप्रान्तस्य माध्यसीमि पश्चात् लक्ष्यते सीता, तत्राधीयते जानुकर्षण्याः कलाकल्याण्यपेश्याः^४ कण्डरामुखम् । तस्य पार्श्विकसीमि पश्चाद्भागो च सन्धिलक्ष्म क्षुद्रं (५म चित्रे ४), तद् अनुजंघास्थनः शिरसा सन्ध्यर्थम् ।

अधःप्रान्तस्तु जङ्घास्थनः — ऊर्ध्वप्रान्ताद् ह्रस्वाकारः । तस्य पश्चाद् दृश्यते सीता दीर्घायाः पादांगुष्ठसंकोचन्याः पेश्याः कण्डरान्तसंयोगाय । वहिःसीमि चास्य त्रिकोणप्रायं सन्धिलक्ष्म (५म चित्रे ५) अनुजंघास्थनोऽधःप्रातेन सन्ध्यर्थम् । तस्य चाधःप्रान्तस्य निम्नप्रदेशे खातोदरं सन्धिलक्ष्म (५म चित्रे ६) कूर्चशिरसा सन्ध्यर्थम् । तस्यैव पुनरधःप्रान्तस्य माध्यसीमि प्रवर्द्धनकम् अन्तर्गुल्फभूतम् तदन्तःसीमस्थं सन्धिलक्ष्म कूर्चशिरसः पार्श्विकसीम्ना सन्ध्यर्थम् । अस्य चान्तर्गुल्फप्रवर्द्धनकस्य पश्चाद् दृश्यते सीता जंघानुगायाः, पादांगुलिसंकोचन्या दीर्घायाश्च पेश्याः कण्डरान्तविवर्त्तनाय । अत्र च प्रवर्द्धनके संयुज्यते गुल्फसन्धिवन्धनी स्नायुः ।

मध्यनलकं काण्डं वा जंघास्थनः — ईषद्वक्राकारं पार्श्विकसीमि खातोदरञ्च । तिस्रश्चास्मिन् परिस्फुटा धाराः, तासां पुरोवर्त्तिनी त्वचोऽधस्तादनुभवनीया । वहिःसीमस्थायां धारायां संयुज्यते अस्थिद्वयमध्यवर्त्तिनी जंघान्तरालाख्या^५ कला (५म चित्रे ६ अङ्कितेऽवकाशे) । पश्चिमायां पुनर्धारायां जंघापश्चिमपेशीनां निवेशः । तद्विशेषाश्चित्ते पेश्यध्याये च द्रष्टव्याः ।

१ Tibia. २ कन्दाकाराभ्यामस्थ्यंशाभ्याम् । ३ स्वकीयकोटिचतुष्टयेणेति शेषः ।

४ Semimembranosus ५ Borders ६ Interosseus Membrane (of leg)

अनुजङ्घास्थि नाम—(५म चित्रम्) दीर्घयष्ट्याकारं जङ्घास्थनोऽनुगतं द्वितीयं जङ्घानिष्पादकमस्थि तनुयष्ट्याकारम् । तस्यापि द्वौ प्रान्तौ मध्यनलकश्चेति तयो भागाः ।

तस्योर्ध्वप्रान्तः—जङ्घास्थन ऊर्ध्वप्रान्तेन सन्धीयते पार्श्वसीम्नि पश्चिमतः (५म चित्रे ४) । तत्र चास्थोत्सेधो (५म चित्रे ८) जानुसन्धिवन्धन्या दीर्घस्नायोः संयोगाय । अस्यैव पश्चिमतश्चूडाकारं प्रवर्द्धनकं द्विशिरस्काख्यपेश्याः, जानुसन्धिवन्धन्या ह्रस्वस्नायोश्च संयोगाय ।

अधःप्रान्तस्तु—अनुजङ्घास्थनो वहिर्गुल्फनिष्पादकम् । तस्य माध्यसीमा त्रिकोणेन सन्धिलक्ष्मणाङ्किता कूर्चशिरसा सन्ध्यर्थम् । अन्यच्चात्रैव सन्धिलक्ष्म जङ्घास्थनोऽधःप्रान्तस्य वहिःपार्श्वेण सन्धानाय । पश्चिमतश्चास्य सीता पादविवर्त्तन्याख्यपेशीद्वयस्य कण्डरान्तविवर्त्तनाय । तत्परितश्च सम्बध्यते वहिःसीमस्था गुल्फसन्धिवन्धनी स्नायुः ।

मध्यनलकम्—पुनरनुजङ्घास्थनः किञ्चिद्विवृत्तकायम्, धारातयाङ्कितश्च । तत्रान्तःसीम्नि या रेखा तस्यां सम्बध्यते जङ्घान्तरालाख्या कला । अत्र च मध्यनलके संयुज्यन्ते चाष्टौ जङ्घापेशयः । तद्विस्तरः पेश्यध्याये द्रष्टव्यः ।

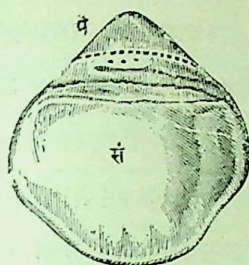
अथ जान्वस्थि ।

जान्वस्थि नाम—(षष्ठं चित्रम्) वृत्तप्रायं जानुसन्धेः पुरःस्थं कपालास्थि । तदिदं सक्थिप्रसारणोसंज्ञकपेशीनां सम्मिलितायाः कण्डरायाः^१ प्रान्तस्थं बृहदाकारं चणकास्थीति केचित् ।

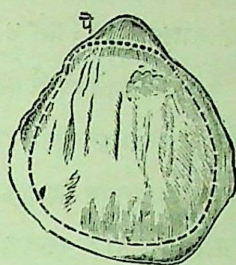
अस्य च जान्वस्थनः पुरोदेश ईषदुच्चावचः, तत्र संयुज्यते सक्थिप्रसारणीसंज्ञानां पेशीनां कण्डरा सम्मिलिता (षष्ठचित्रे-पे) । पश्चिमप्रदेशस्तु मध्योन्नतः सन्धिलक्ष्मणोपलक्षितश्च (षष्ठचित्रे-सं) । उत्तरार्धश्च सन्धिलक्ष्मण ऊर्ध्वस्थनो निम्नप्रान्तपुरोभागेन सन्ध्यर्थम्, निम्नार्धः पुनर्जङ्घास्थन ऊर्ध्वप्रान्तपुरोभागेन सन्धानाय । समन्तात् पुनर्जानुकपालस्य सम्बध्यते जानुसन्धेः पुरोभागच्छादकः स्नायुप्रच्छदः ।

१ Fibula. २ Biceps Muscle. ३ Patella. ४ उरुपिण्डिका कण्डरेत्यर्थः । दृश्यन्तां पेशीखण्डे ऊरुपेशयः ।

[पष्ठ-चितम्—जान्वस्थि ।]



(पश्चिमभागः)



(पुरोभागः)

अथ ऊर्वस्थि ।

ऊर्वस्थि^१ नाम—(७म चित्रम्) दृढदीर्घवृहत्तमं शरीरास्थनाम् बहुभार-
सहञ्च । तत् प्रायः सुवृत्तवंशाकारमीषद्वकञ्च कङ्काले श्रोणिपार्श्वाद् जानुसन्धिं
यावत् तिर्यग्भिगतम् । तस्य त्रयो भागाः—ऊर्ध्वप्रान्तोऽधः प्रान्तो मध्यनलकञ्चेति ।

ततोर्ध्वप्रान्ते लक्षणीयानि—वर्तुलप्रायं मुण्डं (७म चित्रम्), तदधःस्था
ग्रीवा, तदधःस्थे प्रवर्द्धनके च—महाशिखरकं लघुशिखरकञ्च नामतः ।

तत्र मुण्डं नाम—(७म चित्रे १) वर्तुलार्द्धव्यापिना सन्धिलक्ष्मणोपलक्षितम्,
विवर्तते च तद् वंक्षणसन्ध्याबुद्धलाख्ये । मध्यतो विलयुतञ्च तद् वंक्षणसन्धि-
मध्यस्थायाः स्नायुरज्ज्वाः प्रवेशाय ।

ग्रीवा नाम (७म चित्रे २)—ऊर्वस्थेन ऊर्ध्वप्रान्तपार्श्वाद् वक्रभावेन समुद्-
गतमूर्ध्वान्तमुखं प्रवर्द्धनकम् । तद् जीवच्छरीरे वंक्षणसन्धिवन्धनेन स्नायुकोषेण
परिवेष्टितमवतिष्ठते । भवति च तद् वयःपरिणामेण क्रमाद्भुजप्रायं भंगुरञ्च । तत्र
च दृश्यन्ते अस्थिधमनीद्वाराणि^२ बहुशः ।

महाशिखरकं^३ तु (७म चित्रे ३)—मध्यनलकस्य शिखरभूतं चतुष्कोणकल्पं
विषमवहिःपार्श्वं प्रवर्द्धनकम् । तस्य च विषमपार्श्वैकदेशाश्रयेण विवर्तते महती
नितम्बपिण्डिकाख्या^४ पेशी श्लेष्मधरकलापुटकव्यवधानेन । संयुज्यन्ते चात्रैव
षड् नितम्बपेशयः, यथा—श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था^५, यमलाद्वयम्^६, शुरिडिका^७,
नितम्बपिण्डिके च मध्यमालघिष्ठाख्ये^८ । माध्यसोमि पुनर्महाशिखरकस्य अंगुल्यप्र-
प्रवेशार्हं कोटरम् (७म चित्रम् ५), तत्र बहिःस्थायाः श्रोणिगवाक्षिणीपेश्या^९ निवेशः ।

१ Femur. २ Nutrient foramina. ३ Trochanter major. ४ Gluteus Maximus.
५ Obturator Internus. ६ Gemelli. ७ Pyriformis. ८ Gluteus medius & Minimus,
९ Obturator Externus.

लघुशिखरकं नाम—(७म चित्रे ४) ऊर्वस्थिग्रीवाया अधो मूलतः पश्चिमस्य ह्रस्वं प्रवर्द्धनकम् । तत्र निविशते दीर्घा कटिलम्बिनी^२, अधश्चास्य श्रोणिपक्षिणी^३ ।

अनयोश्च शिखरकयोर्मध्ये पुरः पश्चाच्च द्वे रेखे शिखरान्तराले नाम । तयोः सम्बध्येते वंक्षण-सन्धिच्छादनस्य स्नायुकोपस्य पूर्वपश्चिमौ भागौ । पश्चिमशिखरान्तराला तु रेखा निम्नाभिगा, तत्र सम्बध्यते ऊरुचतुरस्त्रा^४ नाम पेशी ।

मध्यनलकं तु ऊर्वस्थनः—पुरस्ताद् धनुर्वक्रमन्तयोरायतं मध्ये विधार प्रायम् । अस्य पुरोभागादुद्भवतः (७म चित्रे पे ४।^५) मध्यस्था ऊरुप्रसारणी जानुकोषकर्षणी चेति पेश्यौ^६ । मध्यभागे पश्चिमतो दृश्या प्राकारिका^७ नाम रेखा ऊर्ध्वमधश्च द्विधारा । तत्रोर्ध्ववर्त्ति यद् धाराद्वयं तत् प्रसरति महाशिखरकं लघुशिखरकञ्च यावत् । अधोवर्त्ति धाराद्वितयं तावदूर्ध्वस्थनः अधःप्रान्तस्थाभ्यां महावुदाभ्यां सङ्गतम् । अस्या एव चतुर्भुजायाः प्राकारिकाख्यरेखायाः प्रान्तभागेष्वन्तरालेषु चेत्यं सम्बध्यन्ते ऊरुपश्चिमस्थाः अष्टौ पेश्यः यथा—उरुपृष्ठे प्राकारिकायाः पार्श्विकसीम्नि ऊरुप्रसारणी बाह्या^८, माध्यसीम्नि ऊरुप्रसारणी अन्तःस्था^९ । तयोरन्तराले (उत्तरार्धभागे)—कङ्कतिका^{१०}, नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा^{११} च । (अधरार्धभागे) द्विशिरस्का और्वी^{१२} । उरुसंत्यूहनी^{१३} संज्ञास्तिस्रोऽपि पेश्यो भूम्ना प्राकारिकाप्रभवाः । तद्विवरणविस्तरस्तु पेश्यध्याये द्रष्टव्यः ।

अधःप्रान्ते—पुनरूर्ध्वस्थनो लक्षणीयानि—द्वे महावुदे (७म चित्रे ८, ९), अर्बुदान्तरालं, द्वे उपावुदे च (तत्रैव ६, ७) ।

तत्र महावुदे^{१४} द्वे कन्दापरपर्याये बाह्यमाभ्यन्तरञ्च जानुसन्धिनिर्माणके । तयोः पृष्ठतः कोटरं जानुसन्धिमध्यस्थायाः स्वस्तिकाख्यस्नायोः प्रवेशाय । तत्रैव ऊर्ध्वमुभयतः सम्बध्यते जङ्घापिण्डिकाख्यपेश्याः शीर्षद्वयम् । तन्मध्यतो जानुपृष्ठिकाख्यधमन्याः स्थानम् । बाह्यावुदस्य तु पार्श्वतः सम्बध्यते जानुपृष्ठिकाख्या पेशी । अर्बुदयोर्मध्यतः पुरस्त्रिकोणप्रायं सन्धिलक्ष्म तदाश्रित्य सन्धीयते जानुकपालम् ।

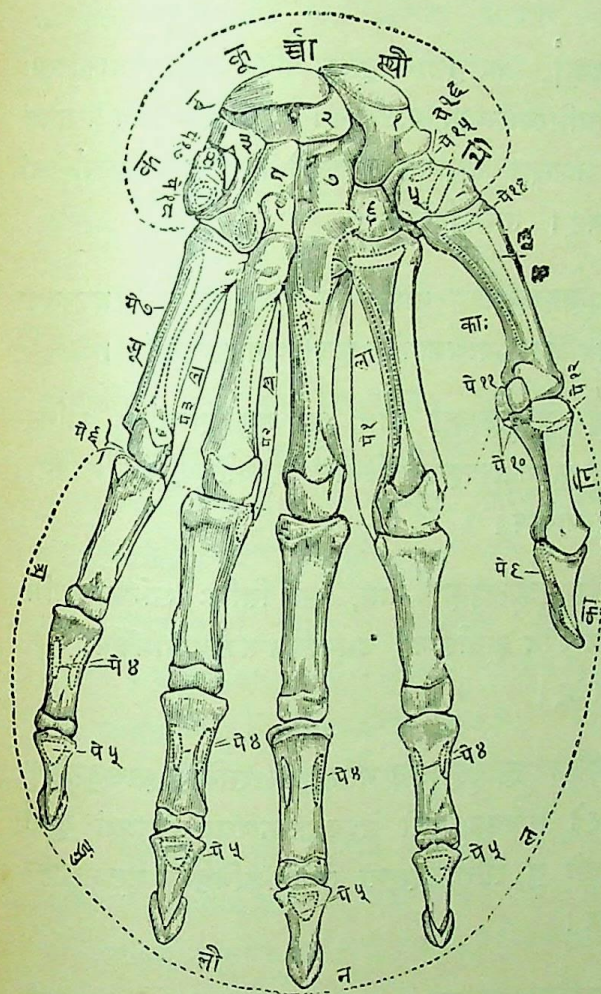
उपावुदे^{१५} द्वे, तयोः संयुज्येते जानुसन्धिवन्धन्यौ स्नायुरज्जू । तत्रान्तरमुपावुदं कलायकाकारेणोत्सेधेनोपलक्षितं, तत्र (७म चित्रे पे ६) निविशते गरिष्ठा ऊरुसंत्यूहनी नाम पेशी । त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थिन वर्णितान्यस्थीनि । पवमपरेऽपि ।

१ Trochanter minor. २ Psoas Magnus. ३ Iliacus. ४ Quadratus Femoris.
५ Vastus medius & Crureus. ६ Linea Aspera. ७ Vastus Externus. ८ Vastus Internus. ९ Pectineus. १० Gluteus Maximus. ११ Biceps Femoris. १२ Adductor Longus, Magnus & Brevis. १३ Condyles. १४ Gastrocnimius. १५ Popliteus.
१६ Tuberosities. १७ Adductor Magnus.

अथ बाहस्थीनि ।

अथेदानीं बाहस्थीनि व्याख्यास्यामः । तत्र प्रतिबाहु त्रिंशदस्थीनि । तद् यथा—

(अष्टमचित्रम्—पाणि-पुरोभागः ।)



करांगुलीषु चतुर्दश, कर-
मध्ये मूलशलाकाः पञ्च,
करमूले कूर्चास्थीन्यष्टौ—
इति प्रतिकरं सप्तविं-
शतिः । प्रकोष्ठे द्वे,
प्रगण्डे चैकमिति ।

अथ करास्थीनि । तेषु च

करांगुल्यस्थीनि—

एकैकस्यां करांगुल्यां
द्वीणि द्वीणि, द्वे अंगुष्ठे,
तानि करांगुलीनलकानि
नाम प्रतिकरं चतुर्दश ।
तानि तिसृषु श्रेणीषु
विभक्तानि । तत्र अग्रिम-
श्रेण्यां पञ्च, मध्यमश्रेण्यां
चत्वारि, पश्चिमश्रेण्यां
पञ्च । तेष्वग्रिमाणि पञ्च
पुरतो मुक्तवितताग्राणि
नखधारणाय ; सन्धोयन्ते
चैतानि पश्चिमतोऽङ्गुली-
नलकैर्मध्यश्रेणीस्थैरन्यत्र

८म चित्र-व्याख्या । १ नौनिभम् २ अर्द्धचन्द्रम् ३ उपलकं ४ वर्तुलकं ५ पर्याणकं
६ कूटकं ७ मध्यकूटकं ८ फणधरम्—इत्यष्टौ करकूर्चास्थीनि । अथ पेशीनिवेशाः—पे १ पे २ पे ३—
इत्यत्र अग्रिमाः शलाकान्तरीयास्तिस्रः । पे ४ अङ्गुलीसङ्कोचन्यः मध्यपर्विकाः । पे ५ अङ्गुलीसङ्कोचन्यः
अग्रपर्विकाः । पे ६ कनिष्ठापकर्षणी ह्रस्वा, कनिष्ठासंकोचनी च । पे ७ कनिष्ठामूलकर्षणी ।
पे ८ अङ्गुष्ठमूलकर्षणी । पे ९ अङ्गुष्ठसंकोचनी दीर्घा । पे १० अङ्गुष्ठसङ्कोचनी ह्रस्वा । पे ११ अङ्गुष्ठ-
मूलकर्षणी । पे १२ पे १३ अङ्गुष्ठापकर्षणी । पे १४ पे १५ अंगुष्ठजापिनी । पे १६ अंगुष्ठप्रसारणी
दीर्घा । पे १७ पाणिसङ्कोचनी अन्तःस्था । पे १८ कनिष्ठापकर्षणी ।

१ अंगुलीनलकानि = Phalanges. २ अंगुष्ठे मध्यनलकाभावात् ।

अंगुष्ठात्, अंगुष्ठे तु पश्चिमनलकाग्रेण सन्धिः मध्यमनलकाभावात् । मध्य-
श्रेणीस्थानि चत्वारि तु उभयतः^१ सन्धिमन्ति । पश्चिमश्रेणीस्थानि पञ्च,
तान्यप्येवम्^२ ।

करांगुलीमूलशलाकाः—करांगुलीनां मूलतः प्रतिकरं पञ्च शलाकास्ताः
करांगुलीमूलशलाका नाम, ताभिरवलम्ब्यते करतलम् । मूलतश्च तानि यथायथं
कूर्चास्थिभिः सन्धीयन्ते, अग्रतश्च पश्चिमांगुलीनलकैः । अतएव कूर्चास्थिनां
“शलाकाधिष्ठान”-संज्ञा प्राचाम् । तत्रैवे विशेषाः—

प्रथमा—अंगुष्ठमूलशलाका नाम, सा मूलशलाकासु ह्रस्वतमा
मूलतश्चैकेन सन्धिलक्ष्मणोपलक्षिता पर्याणकाख्येन कूर्चास्थना सन्ध्यर्थम् ।

द्वितीया—तर्जनीमूलशलाका नाम, सा मूलतश्चतुर्भिः सन्धि-
लक्ष्मभिरुपलक्षिता पर्याणक-कूटक-मध्यकूटाख्यैस्त्रिभिः कूर्चास्थिभिः मध्यमा-
मूलशलाकामूलपार्श्वेन च सन्धानाय ।

तृतीया—मध्यमामूलशलाका नाम, सा त्रिभिः सन्धिलक्ष्मभि-
रङ्किता मूलतः, मध्ये मध्यकूटाख्येन कूर्चास्थना, उभयतश्च तर्जन्यनामिकयोः मूल-
शलाकामूलपार्श्वभ्यां सन्ध्यर्थम् ।

चतुर्थी—अनामिकामूलशलाका नाम, सा सन्धिलक्ष्मचतुष्टयेणा-
ङ्किता मूलतः । तत्र मध्यस्थे सन्धिलक्ष्मणी मध्यकूट-फणधर-संज्ञाभ्यां कूर्चा-
स्थिभ्यां सन्धानाय । पार्श्वगे तु सन्धिलक्ष्मणी तर्जनी-कनिष्ठयोः मूलशलाका-
मूलपार्श्वभ्यां सन्धिसूचनाय ।

पञ्चमी—कनिष्ठामूलशलाका नाम, तस्या मूलतो द्वे सन्धिलक्ष्मणी,
तत्रैकं फणधरेण, अपरमनामिकामूलशलाकामूलपार्श्वेन सन्ध्यर्थम् ।

ता एताः करमूलशलाका व्याख्याताः । तासां नानास्थिभिः सन्धिप्रकार-
स्मरणार्थं श्लोका^३ स्तु पादास्थिवदेव, केवलं तत्रैव “पादमूलशलाका” इत्यत्र “कर-
मूलशलाका” इति पाठपरिवृत्तिः कार्या ।

१ पुरोऽङ्गुलीनलकैः पश्चात् पश्चिमनलकैः । २ उभयतः सन्धिमन्तीत्यर्थः । सन्धिश्च कनिष्ठा-
द्यंगुलीचतुष्टये पुरो मध्यनलकैरंगुष्ठे पुरोऽग्रिमनलकेन, पश्चात् पञ्चस्वपि अंगुलीमूलशलाकाग्रे ।
३ Metacarpals, ४ दृश्यतां २० पृष्ठे ।

अथ करकूर्चास्थीनि—करकूर्चास्थीनि नाम मणिबन्धनिर्मापकानि तनुह्रस्वविषमाणि प्रतिकरमष्टौ । तान्येव करशलाकाधिष्ठानानि नाम । तानि श्रेणीद्वयविन्यस्तानि । ततोर्ध्वश्रेण्यां चत्वारि, क्रमेण नौनिभार्द्धचन्द्रोपलक-वर्तुलकाख्यानि । अधःश्रेण्यां चत्वारि, पर्याणक-कूटक-मध्यकूट-फणधर-संज्ञानि । ततोर्ध्वश्रेणीस्थानां चतुर्णां मध्ये प्रथमानि त्रीणि मणिबन्धसन्धौ प्रविष्टानि । वर्तुलकाख्यन्तु बहिः सन्धितः, तत् कण्डरान्तरीयं चणकास्थीति केचित् । तत्र—

नौनिभं^१ नाम—(८म चित्रे १) नावाकारं कूर्चास्थि, तुल्यसंज्ञेन पाद-कूर्चास्थना सदृशम् । तद् बहिःस्थेन क्षुद्रार्बुदेनोपलक्षितं, ऊर्ध्वं सन्धिलक्ष्मयुतञ्च प्रकोष्ठास्थनः अधःप्रान्तेन सन्ध्यर्थम् । अस्य पार्श्वतः खातोदरं सन्धिलक्ष्म अर्द्ध-चन्द्र-मध्यकूटकयोः पार्श्वाभ्यां सन्धानाय । निम्नसीसि च सन्धिलक्ष्म पर्याणक-कूटकयोर्ध्वप्रान्ताभ्यां सन्ध्यर्थम् । पश्चिमतश्च नौनिभस्य उच्चावचा रेखा मणिबन्धस्नायुसूत्राणां संयोगाय ।

अर्द्धचन्द्रं^२ नाम—(८म चित्रे २) तादृशाकारेण सन्धिलक्ष्मणा बहिरुप-लक्षितं कूर्चास्थि, तस्यार्द्धचन्द्रलक्ष्मणा नौनिभेन सह सन्धिः । अपरञ्चास्य शिरसि सन्धिलक्ष्म बहिःप्रकोष्ठास्थिप्रान्तेन सन्ध्यर्थम्, इतराणि तु सन्धिलक्ष्माणि उपलक-फणधर-मध्यकूट-संज्ञैः कूर्चास्थिभिः सन्धिसूचकानि ।

उपलकं^३ नाम—तृतीयं कूर्चास्थि न्युब्जपृष्ठं सन्धिलक्ष्माङ्कितञ्चोपरिष्ठात् मणिबन्धसन्धिर्मध्यवर्तिना त्रिकोणतरुणास्थना सन्धानाय । त्रीण्यत्र चापराणि सन्धिलक्ष्माणि क्रमेण अर्द्धचन्द्र-फणधर-वर्तुलकाख्यैः कूर्चास्थिभिः सन्ध्यर्थम् ।

वर्तुलकं^४ नाम—प्रायेण वर्तुलाकारं क्षुद्रतमं कूर्चास्थि । सन्धिलक्ष्म-चातैकमुपलकेन सन्धिव्यञ्जनाय ।

पर्याणकं^५ नाम—पृष्ठतः पर्याणकाकारेण सन्धिलक्ष्मणा चिह्नितमंगुष्ठ-मूलशलाकामूलेन सन्धानाय । त्रीणि चात्रापराणि सन्धिलक्ष्माणि क्रमेण नौनिभ-कूटक-तर्जनीमूलशलाकामूलैः सन्ध्यर्थम् । गभीरा चास्य मध्यतः सीता बहिःस्थायाः पाणिसङ्कोचन्याख्यपेश्याः कण्डरान्तविवर्तनाय ।

१ Carpal Bones. २ Scaphoid. ३ Semilunar. ४ Cuneiform. ५ Pisiform.
६ Trapezium. ७ Flexor Carpi Radialis.

कूटकं^१ नाम—कूटाकारं क्षुद्रं कूर्चास्थि । तत्र चत्वारि सन्धिलक्ष्माणि । तेषामूर्ध्वसीमस्थं नौनिभेन, पार्श्विकसीमस्थं पर्याणकेन, माध्यसीमस्थं मध्य-कूटकेन, अधःसीमस्थं तर्जनीमूलशलाकामूलेन सन्धिमतम् ।

मध्यकूटं^२ नाम—बृहत्तमं करकूर्चास्थि, तद् ऊर्ध्वतः सन्धिलक्ष्माङ्कितेन मुण्डेनोपलक्षितमर्द्धचन्द्राख्यकूर्चास्थना सन्ध्यर्थम् । पार्श्विकसीमस्थि चास्य द्विभाग-विभक्तं सन्धिलाञ्छनं क्रमेण नौनिभ-कूटकाभ्यां सन्धिसूचकम्, माध्यसीम-चातैकं सन्धिलक्ष्म फणधरपार्श्वेण सन्ध्यर्थम् । अधस्तु सन्धिलाञ्छनं तर्जनी-मध्यमानामिकानां मूलशलाकामूलैः सन्धानाय ।

फणधरं^३ नाम सर्पफणाकारेण प्रवर्द्धनकेनोपलक्षि^४ त्रिकोणप्रा-कूर्चास्थि । तद् ऊर्ध्वतः कोणाकारं मध्यकूटकोपलकयोरन्तरालप्रविष्टम्, पार्श्व-योश्च ताभ्यामेव सन्धिमतम् । निम्नतश्चात्र द्विभागविभक्तं सन्धिलक्ष्म अनामिका-कनिष्ठामूलशलाकामूलाभ्यां सन्ध्यर्थम् । अस्य च फणोदरे विवर्तन्ते अंगुली-सङ्कोचनीपेशीनां कण्डराः ।

सर्वाणि च कूर्चास्थीनि सन्धिलक्ष्मवर्जमन्यत्र उच्चावचानि मणिवन्धस्त्रायु-सूत्राणां संयोगाय । तदेवं करास्थीनि व्याख्यातानि । तत्र पेशीसन्निवेशास्तु साकल्येन त्रिंशत्प्रायास्ते चित्रेषु पेश्यध्याये च द्रष्टव्याः^५ ।

अथ प्रकोष्ठास्थिनी ।

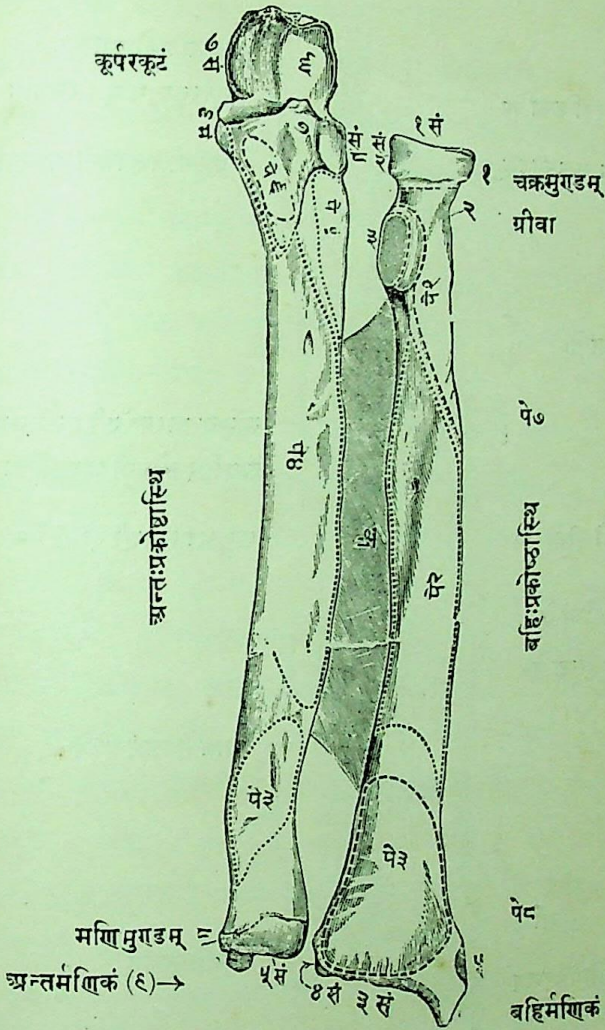
प्रकोष्ठास्थिनी तु द्वे प्रायस्तुल्यपरिणाहे । तत्रैकं पार्श्विकसीमस्थमंगुष्ठानु-पूर्व्या स्थितं, तद् बहिःप्रकोष्ठास्थि नाम । अपरं माध्यसीमस्थं कनिष्ठानु-पूर्व्या स्थितं, तद् अन्तःप्रकोष्ठास्थि नाम । तयोः प्रथमं प्रधानतो मणिवन्ध-सन्धिधारकं स्थूलेनाधःप्रान्तेन । द्वितीयं कूर्पर-सन्धिनिष्पादकमूर्ध्वप्रान्तेन तादृशेन । उभयोरपि संहितयोः क्वचित् 'अरत्ति'-संज्ञया व्यपदेशः^६ ।

तत्र—बहिःप्रकोष्ठारिथ^७ नाम प्रकोष्ठबहिर्भागनिष्पादकं नलकास्थि । तस्य त्रयो भागाः—ऊर्ध्वप्रान्तोऽधःप्रान्तो मध्यनलकश्चेति ।

तस्योर्ध्वप्रान्तस्तावत् चक्राकारेण कोरमध्येन मुण्डेनोपलक्षितः (६ म चित्रे १) । कोरे चात्र (तत्रैव १ सं) विवर्तन्ते प्रगण्डास्थनोऽधःप्रान्तीया कन्दली । माध्यसीमि च मुण्डस्यार्द्धचन्द्राकारं सन्धिलक्ष्म (तत्रैव सं) चक्रनेमिर्नाम, तद् अन्तःप्रकोष्ठास्थन ऊर्ध्वप्रांतपार्श्वेन (तत्रैव ८ सं) सन्ध्यर्थम् । तदाश्रित्य च विवर्तन्ते तदस्थिमुण्डं कूर्परसन्धिमध्येतः ।

१ Trapezoid. २ Os magnum. ३ Unciform. ४ सुदुःस्मरविस्तरभयादिह नोक्ताः ।
५ प्राचां ग्रन्थेषु (यथा च० शा० ७ अ०) ६ Radius.

६म (क) चित्रम्—प्रकोष्ठास्थिनी (सम्मुखतः) ।



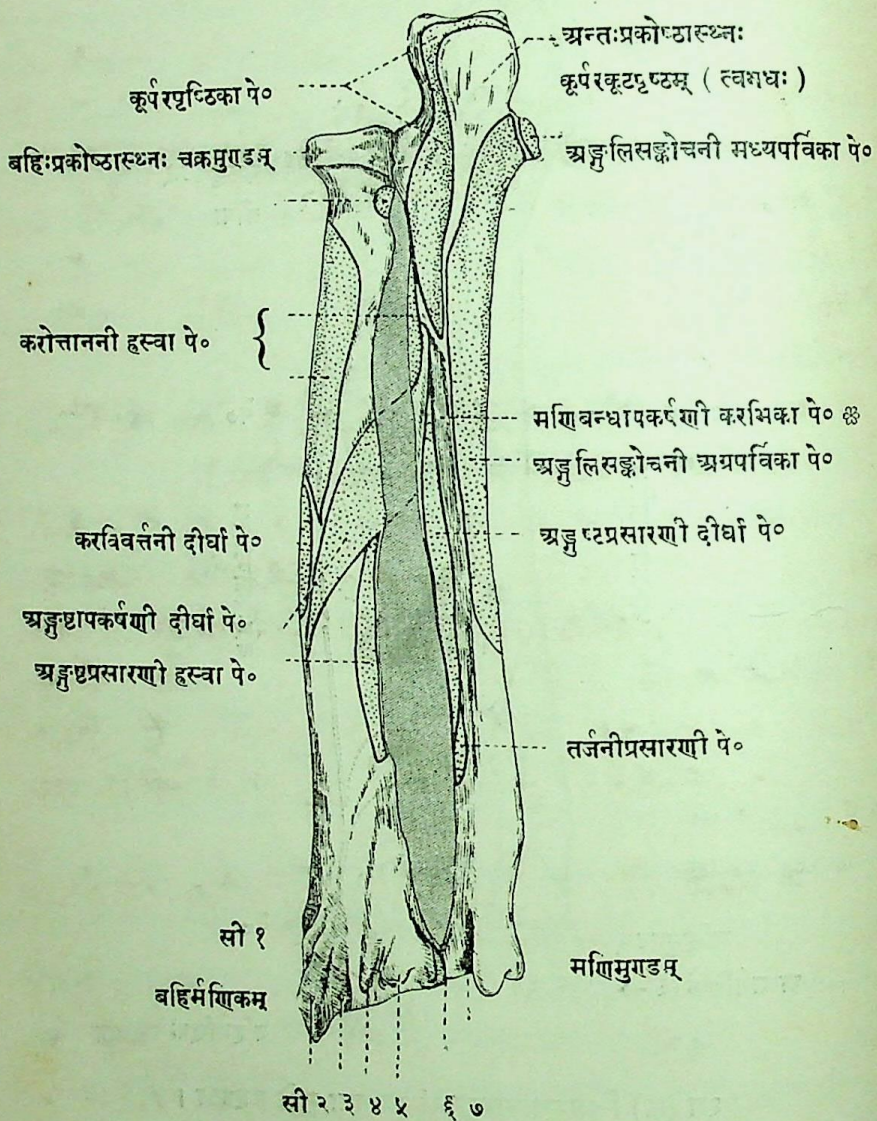
६म (क) चित्रस्थानामङ्कानां व्याख्या मूले द्रष्टव्या ।

बहिःप्रकोष्ठास्थि—१ सं—प्रण्डास्थि-कन्दल्या सन्धिमत् कोरम् । २ सं—अन्तः-प्रकोष्ठास्थि-चक्रनेमिस्थः सन्धेयोऽंशः । ३ सं—मणिबन्धसन्धौ नौनिर्भाघचन्द्राभ्यां सन्धेयोऽंशः । ४ सं—अन्तःप्रकोष्ठास्थि-अधःप्रांतपाश्वेन सन्धेयोऽंशः । अन्तःप्रकोष्ठास्थि—५ सं—बहिः-प्रकोष्ठास्थि-अधःप्रांतपाश्वेन सन्धेयोऽंशः । ६ सं—चंचुप्रवर्धनशिखरस्थं सन्धिलक्ष्म प्रण्डास्थिना सन्धायि । ७ सं—प्रण्डास्थि-डमरुप्रवर्धनेन सन्धेयोऽंशः । ८ सं—चक्रनेमिसन्धायि खातम् ।

अथ पेशीनिवेशाः—पे १, पे ५ इत्यनयोः—करोत्ताननी ह्रस्व । पे २ अङ्गुलीसंकोचनी दीर्घा । पे ३ करविवर्तनी चतुरस्रा । पे ४ अङ्गुलीसङ्कोचनी अग्रपर्विका । पे ६ कूर्परद्वारिका । पे ७ अङ्गुली-सङ्कोचनी मध्यपर्विका । पे ८ करोत्ताननी दीर्घा । ३ इत्यङ्क परितः, दिशिरस्का । ५—प्रकोष्ठा-न्तराला कला ।

(To face page 30)

६म (ख) चित्रम्—प्रकोष्ठास्थिनी (पश्चिमतः) ।



६म (ख) चित्रव्याख्या—सी १ इत्यादि सप्ताङ्काः पेश्यन्तःकण्डराणां विवर्त्तनाय सीताः सूचयन्ति । तत्र सी १—इत्यत्र विवर्त्तते अङ्गुष्ठापकर्षणी दीर्घा, अङ्गुष्ठप्रसारणी ह्रस्वा इति पेश्यौ । सी २—इत्यत्र मणिवन्धापकर्षणी दीर्घा ह्रस्व । सी ३—इत्यत्र सैव ह्रस्वा । सी ४—इत्यत्र अङ्गुष्ठप्रसारणी दीर्घा । सी ५—इत्यत्र तर्जनीप्रसारणी, अङ्गुलिप्रसारणी साधारणी च । सी ६—इत्यत्र अङ्गुष्ठप्रसारणी । सी ७—इत्यत्र मणिवन्धापकर्षणी करभिका । ❀ अनया पेश्याच्छाद्यतेऽयमंशः, न त्वत्र पेशीनिवेशः ।

मूलतश्चास्य मुण्डस्य ग्रीवेव ग्रीवा, तदधश्चावुदाकार उत्सेधः (तत्रैव क्रमात् २, ३), तत्र द्विशिरस्काख्यपेश्याः कण्डरान्तसंयोगः ।

अधःप्रान्तस्तु वहिःप्रकोष्ठास्थनः— त्रिकोणेन कोरोदरेण च सन्धिलक्ष्मणोपलक्षितो निम्नतः अर्द्धचन्द्र-नौनिभाख्यकूर्चास्थिद्वयेन सन्ध्यर्थम् । माध्यसीम्नि चात्रापरे सन्धिलक्ष्म (६म चित्रे ४ सं०), तद् अन्तःप्रकोष्ठास्थनः अधःप्रान्तपार्श्वेन सन्धि सूचयति । पार्श्विकसीम्नि चात्र त्रिकोणाकारं प्रवर्द्धनकं वहिर्मणिकं नाम (६म चित्रे ४) मणिवन्धसन्धेर्वाह्यस्नायुरज्जुसंयोगाय । तदेतत् त्वचोऽधस्तादनुभवनीयम् । अस्य वहिः पश्चिमतश्च दृश्यन्ते सीताः (६म चित्रे ५) अंगुष्ठप्रसारणीनां पेशीनां कण्डरान्तगतागताय ।

मध्यनलकं पुनरस्य विधारमीपद्वक्रं माध्यसीम्नि खरधारञ्च, प्रकोष्ठास्थनो-रन्तरालस्थकलासंयोगाय । पुरश्चास्य स्फुटमस्थिधमनीविवरम् ।

मध्यनलके चेह संयुज्यन्ते प्रकोष्ठपेशीनां मध्ये नव यथा— ऊर्ध्व-प्रान्तस्य माध्यसीम्नि द्विशिरस्का बाहवो^१, पार्श्विकसीम्नि पश्चिमतश्च करोत्ताननी ह्रस्वा^२, मध्यनलकस्य मध्यभागे पुरस्ताद् अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घा^३, तदूर्ध्वं तिरश्चीनरेखायाम् अंगुलीसंकोचनी मध्यपर्विका^४, अधःप्रान्ते पुरस्तात् करविवर्त्तनी चतुरस्त्रा^५, तत्रैव वहिःसीम्नि करोत्ताननी दीर्घा^६ । मध्यनलकस्य पृष्ठतो मध्यभागे अंगुष्ठापकर्षणी दीर्घा^७ करविवर्त्तनी दीर्घा^८ च, तदधस्तात् अंगुष्ठ-प्रसारणी ह्रस्वा^९ इति ।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि^{१०} नाम— प्रकोष्ठस्य माध्यसीम्नि स्थितं नलकास्थि । तस्य तयो भागाः— ऊर्ध्वप्रान्तोऽधःप्रान्तो मध्यनलकं चेति । तत्र—

ऊर्ध्वप्रान्तः— स्थूलतरः प्रवर्द्धनकाभ्यामुपलक्षितश्च । तयोर्ऊर्ध्वप्रवर्द्धनकं कूर्परकूटं^{११} नाम (तत्रैव ६) । तदिदं सर्पफणाकारं पुरःस्थितेनोन्नतमध्येन सन्धिलक्ष्मणोपलक्षितञ्च । तस्य च चूडाग्रं निविशते प्रगण्डास्थनोऽधःप्रान्त-पश्चिमस्थे खाते, तत्र सन्धिलक्ष्म तु प्रगण्डास्थनोऽधःप्रान्तवर्त्तिना डमस्काकारेण सन्धिलक्ष्मणा सन्धिं सूचयति । पश्चिमतः पुनरस्य प्रवर्द्धनकस्योत्सेधः कूर्पर-निष्पादकः त्वङ्मात्रावृतः । तत् पार्श्वयोः संयुज्यते त्रिशिरस्काख्या^{१२} पेशी । कूर्परकूटमेव जानुकपालसादृश्यात् कूर्परकपालिकेति केचित् ।

१ Biceps. २ Supinator (Brevis). ३ Flexor Pollicis Longus. ४ Flexor Digitorum Sublimis. ५ Pronator Quadratus. ६ Supinator Longus. ७ Abductor Pollicis Longus. ८ Pronator Teres. ९ Extensor Hallucis Brevis. १० Ulna. ११ Olecranon Process. १२ Triceps.

अत्रैवाधस्तनं प्रवर्द्धनकं चञ्चुप्रवर्द्धनं^१ नाम । तदिदं त्रिकोणाग्रं शिरसि सन्धिलक्ष्मयुतञ्च । विवर्त्तते चैतत् प्रगण्डास्थनोऽधःप्रान्तीयं डमरुकाकारं सन्धिलक्ष्म समाश्रित्य । अग्रं चास्य प्रवर्द्धनकस्य प्रविशति तस्यैवास्थनो डमरु-सन्धिलक्ष्मणः पुरःस्थे खाते सति बाहुमध्यसंकोचे (६म १०म चित्रयोः) ।

पार्श्विकसीम्नि पुनरन्तःप्रकोष्ठास्थन ऊर्ध्वप्रान्तस्य दृश्यते कोरमध्यमपरं सन्धिलक्ष्म (तत्रैव सं ८) यदाश्रित्य विवर्त्तते बहिःप्रकोष्ठास्थन ऊर्ध्वप्रान्तीया चक्रनेमिः स्वेन सन्धिलक्ष्मणा (तत्रैव सं २) । तदिदं चक्रनेमिखातं नाम । अनयोश्च प्रवर्द्धनकयोश्चक्रनेमिखातस्य च परिधौ संयुज्यते कूर्परसन्धिवन्धनः स्नायुकोषः ।

अथास्य चञ्चुप्रवर्द्धनस्य मूले परितश्च संयुज्यन्ते इमाः पेश्यः, यथा पुरःस्तान्मूलतः कूर्परद्वारिका, अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घा च । माध्यसीम्नि अंगुलीसङ्कोचनी अग्रपर्विका^२, करविवर्त्तनी दीर्घा^३ चेति ।

मध्यनलकं तु अन्तःप्रकोष्ठास्थनस्त्रिधारं पार्श्विकसीम्नि तीक्ष्णधारञ्च, तस्य पुरोभागे मध्यतः अस्थिधमनीविवरद्वारम् । तत्र बाह्यसीमस्थायां तीक्ष्णधारायां संयुज्यते प्रकोष्ठान्तराला^४ † नाम कला (नवम चित्रम्) ।

अत्र च मध्यनलके संयुज्यन्ते द्वादशानां प्रकोष्ठपेशीनां मध्ये नव पेश्यः, यथा—मध्यनलकपुरोभागे—अंगुलिसंकोचनी मध्यपर्विका^५, करविवर्त्तनी चतुरस्त्रा^६ च । तयोराद्या माध्यसीम्नि पृष्ठतश्च संयुक्ता । पार्श्विकसीम्नि पृष्ठतश्च पञ्च यथा—कूर्परपृष्ठिका^७, अंगुष्ठापकर्षणी दीर्घा^८, अंगुष्ठप्रसारणी दीर्घा^९, तर्जनीप्रसारणी^{१०} करोत्ताननी ह्रस्वा^{११} चेति । मणिवन्धापकर्षणी करभिका^{१२}, कूर्परपृष्ठिका चेति द्वे मध्यनलकपृष्ठतः इति । तद्विवरणविस्तरस्तु ६म चित्रे पेश्यध्याये च द्रष्टव्यः ।

अधःप्रान्तस्तु अन्तःप्रकोष्ठास्थनो—माध्यसीम्नि प्रवर्द्धनकवता मणिमुण्डाख्येन वर्तुलेनोपलक्षितः (नवम चित्रे २) । तच्च प्रवर्द्धनकम् अन्तर्मणिकं^{१३} नाम (तत्रैव ६), तत्र संयुज्यते मणिवन्धसन्धेः माध्यसीमस्था स्नायुरज्जुः । तस्य पश्चिमस्थायां सीतायां विवर्त्तते अन्तःस्थायाः करप्रसारणीपेश्याः^{१४} कण्डरा ।

१ Coronoid Process. २ Branchialis. ३ Flexor Pollicis Longus. ४ Flexor Digitorum Profundus. ५ Pronator Teres. ६ Flexor Digitorum Sublimis. ७ Pronator Quadratus. ८ Anconeus. ९ Abductor Pollicis Longus. १० Extensor Pollicis Longus. ११ Extensor Indicis Proprius. १२ Supinator (Brevis). १३ Extensor Carpi Ulnaris. १४ मणिकसंज्ञा तु चरककृता (च० शा० ७ अ०) १५ Styloid Process. १६ Extensor Carpi Ulnaris. † Interosseus membrane.

चतुर्थोऽध्यायः ।

३३

मणिमुण्डश्च सन्धिलाञ्छनाङ्कितं पार्श्वतः, वहिःप्रकोष्ठास्थोऽधःप्रान्तेन सन्ध्यर्थम् ।
तदधश्च सन्धीयते मणिवन्धसन्ध्यन्तरालस्थं त्रिकोण-तरुणास्थि ।

अथ प्रगण्डास्थि ।

प्रगण्डास्थि नाम—(१०म चित्रम्) बाह्वस्थनां स्थूलतमं नलकास्थि ।
तस्य त्रयो भागाः—ऊर्ध्वप्रान्तोऽधःप्रान्तो मध्यनलकञ्चेति ।

ततोर्ध्वप्रान्तः—अर्द्धवर्तुलाकारेणान्तर्मुखेन मुण्डेनोपलक्षितः । तदिदं मुण्ड-
मंसपीठस्थे^१ नातिगभीरे खाते सन्धीयते श्लक्ष्णेन सन्धिलक्ष्मणा, तत्परितश्च
संवध्यते अंससन्धिवन्धनः स्नायुकोषः ।

अधश्चास्य मुण्डस्य द्वावुत्सेधौ बाह्यसीम्नि पुरःसीम्नि च क्रमात् महापिण्डक-
लघुपिण्डक-संज्ञौ । तत्र महापिण्डकस्य शिखरतः पृष्ठतश्चोद्भवन्ति तिस्रः पेश्याः
क्रमेण अंसपृष्ठिका उत्तरा^२, अंसपृष्ठिका अधरा^३, अंसाधरिका लक्ष्मी^४ चेति ।
लघुपिण्डके तु निविशते अंसान्तरिका^५ नाम पेशी, मध्ये च पिण्डकयोः परिखा
द्विशिरस्काख्य^६ पेश्याः कण्ठराधारणाय । तद्वह्निस्तटे निविशते गरिष्ठा उरः-
प्रच्छदाख्या-पेशी, तदन्तस्तटे तु कटिपार्श्वच्छदा । तदधस्तात् च अंसाधरिका
बृहती ।

मध्यनलकन्तु—प्रगण्डास्थेन उपरिष्ठाद्गण्डाकारमधस्तात् विधारप्रायम् । तत्र
मध्यतो वहिःसीम्नि ईषदुन्नतः प्रदेशः अंसपिण्डकाख्य-पेश्या निवेशाय । अस्याधः
पश्चिमतो नातिगभीरा सीता गम्भीरप्रगण्डिकाख्यसिराधमन्योर्वहिर्वाहुकाख्य-
नाड्याश्च धारणाय^७ । तस्याश्च तटयोः त्रिशिरस्काख्यपेश्याः^८ प्रभवस्थानम् ।
माध्यसीम्नि च मध्यतः काकोष्ठिकाख्य^९ पेश्याः निवेशः । निम्नार्द्धपुरस्तलं तु
मध्यनलकस्य कूर्परद्वारिकाख्य^{१०} पेश्याः प्रभवः ।

अधोभागे पुनर्मध्यनलकस्य बाह्यान्तःसीम्नोर्द्ध्वे^{११} धारे । तयोर्बाह्यधारायां
क्रमात् दीर्घायाः करोत्तानन्याः^{१२}, दीर्घायाः मणिवन्धापकर्षण्या पेश्याः संयोगः ।
अमू च बाह्यान्तरोये धारे क्रमेण बाह्यान्तरीयाभ्यामर्बुदाभ्यां सङ्गते अधस्तात् ।

१ Humerus. २ अंसपीठं नाम अंसफलकस्य स्थालकं (सन्धेयस्थानम्) । ३ Supra-
spinatus. ४ Infra-spinatus. ५ Teres minor. ६ Sub-scapularis. ७ Biceps.
८ Pectoralis major. ९ Latissimus Dorsi. १० Teres major. ११ Deltoid.
१२ Superior Profunda Artery Vein Radial Nerve. १३ Triceps. १४ Coraco
Brachialis. १५ Brachialis. १६ Supinator Longus. १७ Extensor Carpi Radialis
Longior.

अधःप्रान्ते—पुनः प्रगण्डास्थनो लक्षणीयाः क्रमादेते विशेषाः । अवदे द्वे—
बाह्यमान्तरज्जेति, कन्दली, डमरुकं, पुरःखातद्वयञ्च (१०म चित्रम्) । तत्र—

बाह्यावुदं—नाम वहिःसीमस्थ उत्सेधः । तत्र सम्बध्यते वहिःस्था
कूर्परसन्धिवन्धनो स्नायुः । प्रभवश्चायं पञ्चानां पेशीनां सम्मिलितमूलानाम् ।
ताश्च यथा—करोत्ताननो ह्रस्वा, मणिवन्धापकर्षणी दीर्घा करभिका च, अंगुलि-
प्रसारणी साधारणी, कनिष्ठाप्रसारणी^१ चेति । अस्यैव पृष्ठतः कूर्परपृष्ठिकाख्य^२-
पेश्याः प्रभवः ।

आन्तरावुदं—नाम माध्यसीमस्थं स्फुटतरं त्रिकोणप्रायमवुदम् । तत्र
सम्बध्यते कूर्परसन्धेः माध्यसीमस्था स्नायुरज्जुः । प्रभवश्चायमुपरिष्ठात्
दीर्घायाः करविवर्त्तनी^३-पेश्याः ; तदधश्च मणिवन्धसंकोचन्याख्य^४ पेशीद्वयस्य,
मध्यपर्विकाया अंगुलीसंकोचन्याः^५ करतलप्रसारण्याश्च^६ पेश्याः ।

कन्दली—नाम बाह्यावुदस्य पुरोवर्ती सन्धिलक्ष्माङ्कितो भागः, यमाश्रित्य
विवर्त्तते कूर्परसन्धिमध्यगं वहिःप्रकोष्ठास्थनः कोरमध्यं मुण्डम् ।

डमरुकं—नाम डमरुसमाकारो निम्नमध्यः सन्धिलक्ष्मयुतो भागः, यः सन्धीयते
अन्तःप्रकोष्ठास्थन ऊर्ध्वप्रान्तस्थाभ्यां प्रवर्द्धनकलाभ्याम् ।

पुरःखातद्वयं—नाम सन्धिलक्ष्माङ्कितभागस्य ऊर्ध्वं पुरस्ताद् बाह्यान्तरसीम्नोः
स्फुटं गर्तद्वितयं, तत्र प्रविशतः (बाहुसङ्कोचे सति) क्रमेण अन्तःप्रकोष्ठास्थन
ऊर्ध्वप्रान्तस्थं चञ्चुप्रवर्द्धनं, वहिःप्रकोष्ठास्थनो मुण्डांशश्च ।

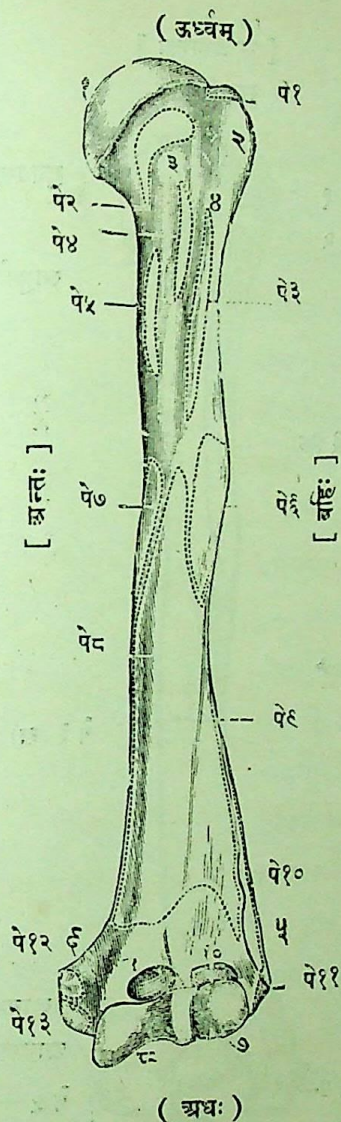
कूर्परखातं—नाम प्रगण्डास्थनोऽधःप्रान्तपश्चिमस्थं खातं, यत्र धार्यते
प्रसारितबाहोः कूर्परकूटाग्रम् ।

त्रिंशदेवमेकस्मिन् बाहावस्थीनि व्याख्यातानि, एवमपरेऽपि । तदेतत्
सविंशतिकमस्थिशतं शाखासु व्याख्यातम् ।

इति शाखास्थिविज्ञानीयः प्रथमः परिच्छेदः ।

१ Common origin of five Muscles ; Supinator, Extensor Carpi Radialis
Brevis, Ext, Carpi Ulnaris, Ext. Com. Digiti & Ext. Minim Digiti. २ Anconeus.
३ Pronator Teres. ४ Flexor Carpi Radialis & Ulnaris. ५ Flexor Sublimis
Digitorum. ६ Palmaris Longus.

दशम (क) चित्रम्—प्रगण्डास्थि (सम्मुखतः) ।



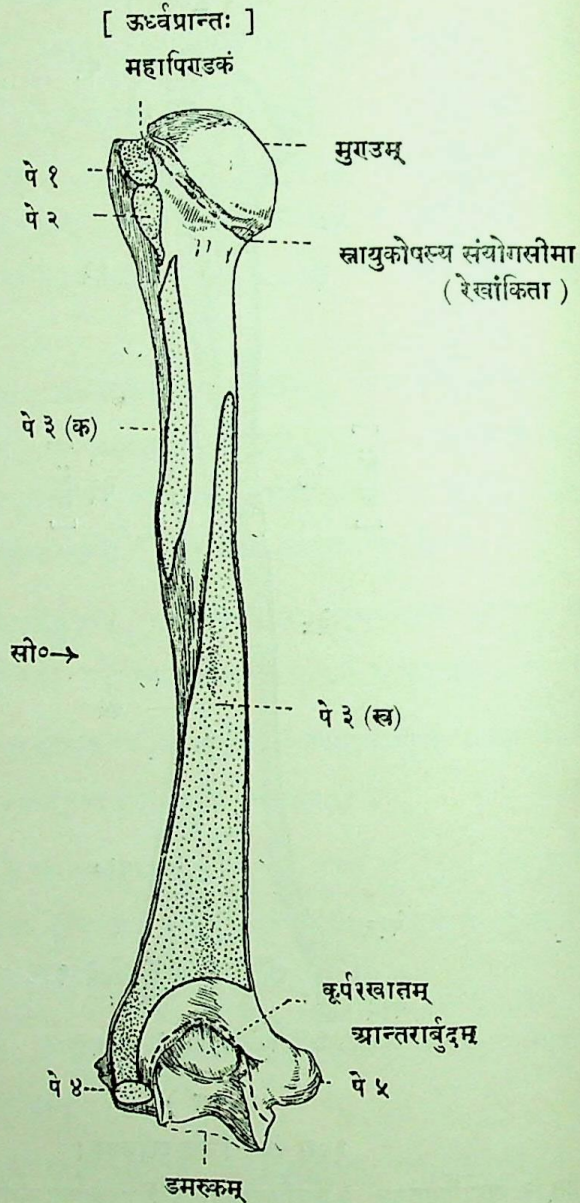
१०म (क) चित्र-व्याख्या ।

१ मुण्डम् २ महापिण्डकम् ३ लघुपिण्डकम् ४ पिण्डकद्वयमध्यगा परिखा । ५ बाह्यवृद्धम्
६ अन्तरावृद्धम् ७ कन्दली ८ डमरुकम् ९, १० पुरःखातद्वयम् ।

अत्रैता निविशन्ते पेश्यः—पे १ अंसपृष्ठिका उत्तरा । पे २ अंसान्तरिका । पे ३ उरगृद्धा
गरिष्ठा । पे ४ कटिपार्श्वच्छदा । पे ५ अंसाधरिका बृहती । पे ६ अंसपिण्डिका । पे ७ काकोष्ठिका ।
पे ८ कूर्परद्वारिका । पे ९ करोत्ताननी दीर्घा । पे १० मणिबन्धापकर्षणी दीर्घा । पे ११ करप्रसारणी
संज्ञक पेशीचतुष्टयस्य, करोतानन्याश्च साधारणः प्रभवः । पे १२ करविवर्तनी दीर्घा । पे १३ मणिबंध-
सङ्कोचन्याख्यपेशीद्वयम्, अङ्गुलीसङ्कोचनी मध्यपर्विका, करतलप्रसारणी चेति पेशीषट्कस्य
साधारणः प्रभवः ।

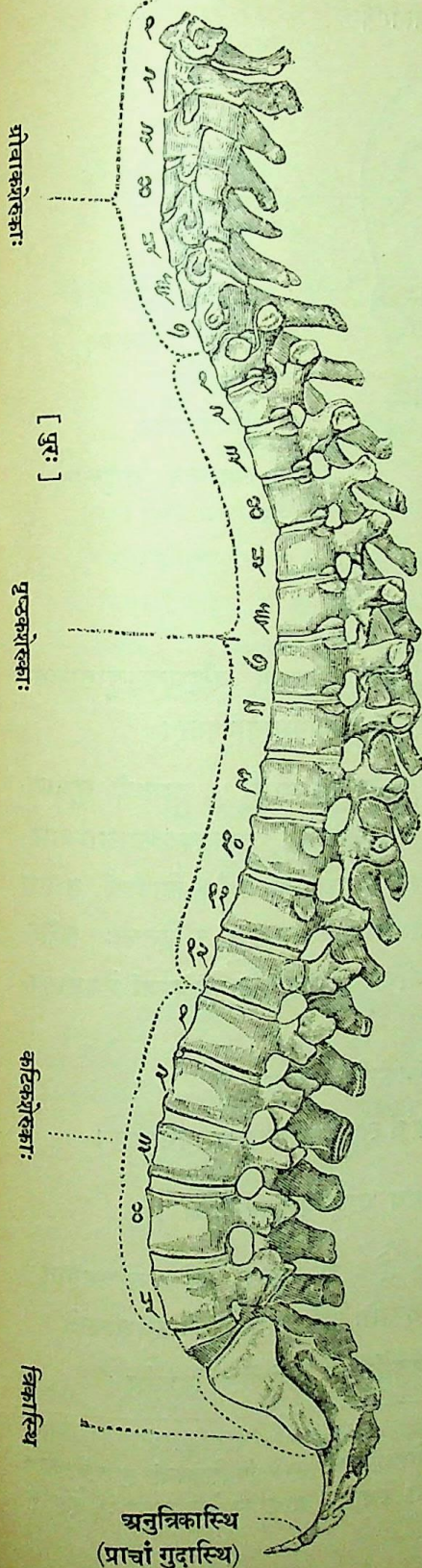
(To face page 34)

दशम (ख) चित्रम्—प्रगण्डास्थि (पश्चिमतः) ।



१०म (ख) चित्रव्याख्या—पे १ अंसपृष्ठिका अधरा । पे २ अंसाधरिका लघ्वी । पे ३ (क) त्रिशिरस्काया बाह्यं शिरः । पे ३ (ख) तस्या एव आन्तरं शिरः । सी० तयोर्मध्यस्था तिरश्चीन-सीता—गम्भीरप्रगण्डिकाख्य सिराधमन्योः बहिर्बाहुकाख्य नाड्याश्च धारणाय । पे ४ कूर्परपृष्ठिका । पे ५ मणिवन्धसङ्कोचनी अन्तःस्था ।

(११श चित्रम्—पृष्ठवंशः)



अथ द्वितीयः परिच्छेदः

(मध्यकायास्थिविज्ञानीयः) ।

तत्रादौ पृष्ठवंशं ब्रूमः ।

पृष्ठवंशो हि मध्यालम्बनं

कायस्य यमाश्रित्य वर्तन्ते शाखा-

श्चतस्रः शिरश्च । अन्तःसुषुम्ना-

काण्डधारकश्च स एव । सोऽयं

[पञ्चात्] कशेरुकासंज्ञैरुपयुज्यते—संहितै-

रीपञ्चलैः चतुर्विंशतिसंख्यकैरस्थि-

वल्यैर्निर्मितः पर्वभास्वि वंशदण्डः

अन्तःशुषिरः, स्थूलश्चाधोऽधः ।

स चायं सन्धीयते ऊर्ध्वं शिरसः

पश्चिमकपालमूलेन, अधस्तु-

तिकास्थना (दृश्यतां कङ्काल-

चित्रद्वयम्) । सम्मुखतो दृष्टश्च

कङ्काले प्रतिभाति स त्रिधा

धनुर्वक्रः, तत्र ग्रीवायां कट्याश्च

पुरस्तात् कूर्मपृष्ठवदुत्सङ्गः, पृष्ठे

तु खातोदरता (११श चित्रम्) ।

तत्र ग्रीवायां कशेरुकाः सप्त,

पृष्ठे द्वादश, कट्यां पञ्चेति साक-

ल्येन चतुर्विंशतिः । त्रिकास्थि

चानुविकास्थि चेति द्वयमानुपूर्व्या

स्थितमपि पृथगेव ।

कशेरुकाः नाम पृष्ठवंश-

निर्मापकान्यस्थिवलयानि । तत्र

सामान्यतः प्रतिकशेरुकं द्वौ भागौ

प्रधानभूतौ—कशेरुपिण्डं, कशेरु-

चक्रञ्च सह प्रवर्द्धनकैः । तत्र—

१ Vertebral Column or Spine.

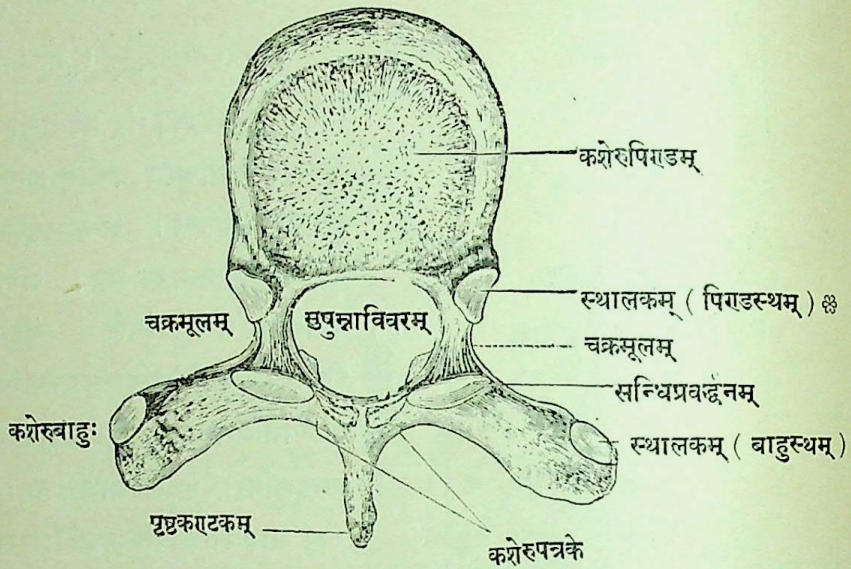
२ सन्धानञ्च कशेरुकाणां तदन्तरालस्थ-

तरूणास्थिचक्रव्यवधानेनैव, न साक्षात् ।

३ Vertebrae.

(१२श चित्रम्—पृष्ठकशेरुका)

[पुरोभागः]



[पश्चिमभागः]

कशेरुपिण्डं नाम पिण्डाकारः कशेरुपुरोभागो वहिधनसङ्घातोऽन्तःशुषिरसंघातश्च । उपलक्षितञ्च तदूर्ध्वाधःस्थाभ्यां सन्धेयभागाभ्याम् ।

कशेरुचक्रं—नाम प्रायश्चक्राकारः कशेरुकाऽपराद्धः । तन्मध्ये सुपुष्पाविवरम् । तदिदं कशेरुचक्रं दृढसंलग्नं कशेरुपिण्डेन उभयतश्चक्रमूलाभ्याम् निर्मीयते च पश्चात् पत्रकाभ्याम् । उपर्यधश्च प्रतिचक्रमूलमेकैकं छिद्रार्धं, तथाच प्रतिकशेरुचक्रं चत्वारि छिद्रार्धानि । तानि ऊर्ध्वमधश्च संहितयोः कशेरुकयोश्छिद्रार्धैर्मिलित्वा सम्पद्यन्ते तावन्ति पूर्णच्छिद्राणि सुपुष्पाप्रभवानां मेरुजाख्यनाडीणां निर्गमाय ।

अथात्र कशेरुचक्रे संगतानि सप्त प्रवर्द्धनकानि, तद्यथा—

पृष्ठकण्टकं—नाम पश्चिमस्थं प्रवर्द्धनं त्वचोऽधस्तादनुभवनीयम् ।

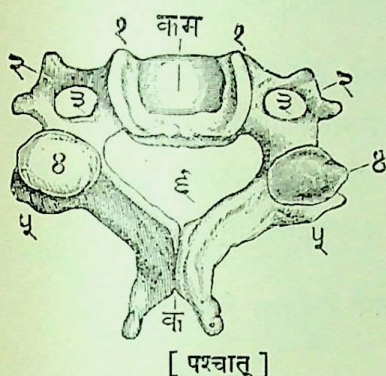
कशेरुवाहुः—संज्ञे द्वे पार्श्वयोः, त एव 'बाहुप्रवर्द्धनक'-संज्ञे ।

सन्धिप्रवर्द्धनकानि—चत्वारि—द्वे उपरिष्ठात्, द्वे चाधस्तात् । सन्धिलक्ष्माङ्कितानि च, तानि ऊर्ध्वाधःकशेरुकयोः सन्धिप्रवर्द्धनकैः सन्धीयन्ते ।

तान्येतानि सर्वकशेरुका-साधारणानि लिङ्गानि । विशेषोऽत ऊर्ध्वम् ।

१ Body of a Vertebra. २ Arch ३ Laminae. ४ Spinus Process. ५ Transverse Process. ६ Articular Process. ७ सर्वकशेरुका-साधारणत्वेऽपि लिङ्गानां पृष्ठकशेरुका तेषां स्फुटतमत्वात् चित्रे पृष्ठकशेरुकैव प्रदर्शिता । ८ स्थालकं नाम सन्धेयस्थानम्, इह तु तत् पशुकासन्धानायेत्यग्रे वक्ष्यते ।

[१३श चित्रम्—ग्रीवाकशेरुका]
(पुरोभागः)



[पश्चात्]

१३श चित्र-व्याख्या—क, कशेरुपिण्डं,
१, १, तस्यैव ओष्ठद्वयम् । २, २, बाहुप्रवर्द्धनके ।
३, ३, मातृकाच्छिद्रद्वयं ४, ४, सन्धिप्रवर्द्धनक-
द्वयमूर्ध्वस्थम्, ५, ५, तदेवाधःस्थम् । ६ सुपुच्छा-
विवरम्, क—पृष्ठकण्टकम्—इह द्विधाभिन्नम् ।

अथ ग्रीवाकशेरुकाः ।

ग्रीवाकशेरुकाः सप्त । तास्वेतानि भेदक-
लिङ्गानि (१३ श चित्रम्)—

(१) कशेरुपिण्डानि ह्रस्वानि घना-
यतपार्श्वान्योष्ठवन्ति च ।

(२) पत्रकाणि तनुह्रस्वानि अधो-
ऽधश्छादीनि च, सुपुम्नाविवरञ्च
त्रिकोणप्रायम् ।

(३) पृष्ठकण्टकानि द्विधाभिन्नाग्राणि,
दीर्घतराणि च क्रमादधोऽधः ।

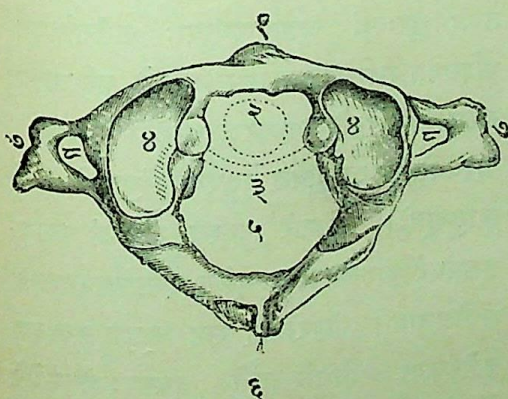
(४) बाहुप्रवर्द्धनकानि ह्रस्वानि द्विधा-
भिन्नाग्राणि सच्छिद्राणि च 'मस्तिष्क-
मातृका'ख्ययोर्धमन्योरनुप्रवेशाय । अत
पदैषां छिद्राणां 'मातृकाच्छिद्र' संज्ञा ।

(५) सन्धिप्रवर्द्धनकानि ह्रस्वतमानि
उत्तानानि च ।

[१४श चित्रम्—प्रथमा ग्रीवाकशेरुका—

चूडावलया नाम]

[पुरः]



[पश्चात्]

१४श चित्र-व्याख्या—१ कशेरुपिण्डं, २ दन्तप्रवर्द्धनकस्य
प्रवेश-सन्धानस्थानम्, ३ मध्यरज्जुकाख्यस्त्रायोः संस्थानसूचकं,
४, ४ पश्चात्कपालमूलकोटिभ्यां सन्धानाय सन्धिलच्छिद्रद्वयं
५ सुपुच्छाविवरम्, ६ पृष्ठकण्टकम् ७, ७ बाहुप्रवर्द्धनकद्वयम्
८, ८ तदन्तःस्थं मातृकाच्छिद्रद्वयम् ।

अथ विशिष्टा ग्रीवाकशेरुकाः ।

सप्तसु च ग्रीवाकशेरुकासु,
प्रथमा, द्वितीया, सप्तमी
चेति तिस्रः पृथग् लक्ष-
णीयाः, इतरवैलक्षण्यात् ।
तत्र (१४ श-चित्रम्)—

प्रथमा ग्रीवा-
कशेरुका चूडावलया^३

नाम । सा पृष्ठवंशचूडायां
वलयाकारेति तथासंज्ञा ।

सन्धीयते चेयमूर्ध्वं पश्चिम-
कपालमूलेनाधश्च दन्तचूडा-
ख्यया द्वितीय-ग्रीवाकशेरु-
कया । तत्रैव विशेषाः—

१ Cervical Vertebrae. २ Vertebral Arteries. ३ Atlas.

(१) कशेरुपिण्डं ह्रस्वं गुटिकाकारश्च (१४श चित्रम्), तत्पृष्ठतश्च सन्धिलक्ष्म दन्तचूडाख्यायाः कशेरुकाया दन्तप्रवर्द्धनेन सन्ध्यर्थम् ।

(२) चक्रमूलयोरुपरिष्ठात् शिखीबीजाकारे सन्धिलक्ष्मणी पश्चिमशिरः-कपालस्य मूलकोटिभ्यां सन्धानाय । अभ्यन्तरतश्चानयोः कलायके मध्य-रज्जुकाख्यायाः स्नायोः कोटिद्वयसंयोगाय । तथा च विभज्यते (जीवच्छरीरे) सुषुम्नाविवरं द्वयोर्भागयोः, तत्राग्रिमभागे प्रवशति दन्तप्रवर्द्धनम् ।

(३) पृष्ठकण्टकश्च तनुगुटिकाकारम् प्रायो न द्विधा भिन्नाग्रम् ।

द्वितीया ग्रीवाकशेरुका

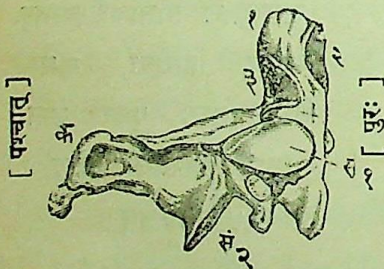
दन्तचूडा^१ नाम ।

१५श चित्रम्—द्वितीया

ग्रीवाकशेरुका—दन्तचूडा नाम ।

(पार्श्वतो दृष्टा)

[ऊर्ध्वम्]



(अधः)

१ दन्तप्रवर्द्धनकम् । २ चूडावलया-
ख्यकशेरुकायाः पिण्डपश्चिमस्थेन सन्धि-
लक्ष्मणा सन्धानचिह्नम् । ३ मध्यरज्जु-
कलायुर्ध्वणजं खातम् । क, पृष्ठ-
कण्टकम् । सं१ ऊर्ध्वस्थं सन्धिप्रवर्द्धनम्
सं२ अधःस्थं सन्धिप्रवर्द्धनम् ।

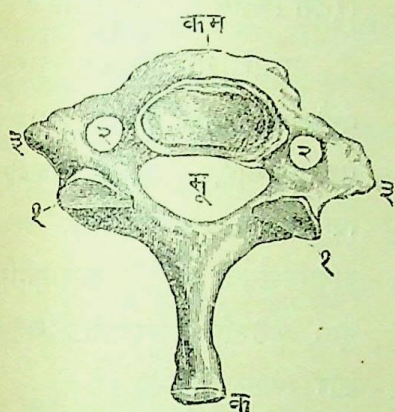
सा चूडायां दन्ताकारेण प्रवर्द्धनकेनोप-
लक्षितेति तथासंज्ञा (१५ श चित्रम्) ।
अस्य पुनः दन्त-प्रवर्द्धनकस्य चूडावलयायाः
सुषुम्नाविवरपुरोभागं प्रविष्टस्य (१४ चित्रम्)
पुरः पश्चाच्च द्वे खातोदरे सन्धिलक्ष्मणी ।
तयोः पुरःस्थं चूडावलयायाः कशेरुपिण्ड-
पश्चिमेन सन्धिलक्ष्मणा सन्धीयते, पश्चिमन्तु
संस्पृश्यावतिष्ठते मध्यरज्जुकाख्या स्नायुः ।
पार्श्वयोश्च दन्तप्रवर्द्धनकस्य संयुज्येते अन्ये
स्नायुसूत्रे । शिखरे चास्य सम्बद्धं स्नायु-
सूत्रमपरं पश्चिमकपालमूलेन दन्तप्रवर्द्धनकस्य
संयोजनाय । शिरो हि सह चूडावलयाख्य-
कशेरुकया विपरिवर्त्तते दन्तप्रवर्द्धनकमेव
मध्यकील-भूतमाश्रित्य पृष्ठवंशोपरिष्ठात् ।
एतद् विवरणविस्तरस्तु शिरोग्रीवसन्धिध्वर्णने
द्रष्टव्यः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

३६

१६श चित्रम्—सप्तमी ग्रीवा-
कशेरुका—महाकण्टकिनी नाम ।

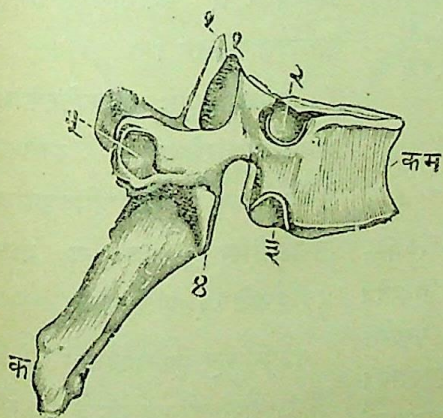
(पुरः)



१६श चित्र-व्याख्या—

कम, कशेरुपिण्डम् । सू, सुपुच्छाविवरम् । क,
पृष्ठकण्टकम् । १, १, ऊर्ध्वमुखं सन्धिप्रवर्द्धनकद्वयम्
२, २, मातृकाच्छिद्रद्वयम् ३, ३, बाहुप्रवर्द्धनके ।

१७श चित्रम्—पृष्ठकशेरुका (पार्श्वतो दृष्टा)



१७श चित्रव्याख्या—कम, कशेरुपिण्डम् ।

१, १, सन्धिप्रवर्द्धनके ऊर्ध्वमुखे । २, ३, कशेरुपिण्ड-
पार्श्वस्थं स्थालकद्वयम् । ४, अधोमुखं सन्धिप्रव-
र्द्धनकम् (दक्षिणम्) । ५, बाहुप्रवर्द्धनकस्थं स्थालकम् ।

सप्तमी ग्रीवाकशेरुका

महाकण्टकिनी नाम (१६श चित्रम्)
सा दीर्घतमेन पृष्ठकण्टकेनोपलक्षितेति
तथासंज्ञा । तत्र च महाकण्टके
सम्बध्यते ग्रीवाधरा नाम स्नायुरज्जुः^३ ।
न चेदं द्विधा भिन्नाग्रम् । तथापि
मातृकाच्छिद्रादिलिङ्गदर्शनात् शक्य-
मस्या अभिज्ञानम् ।

षड्विंशतिः पेश्यो ग्रीवाकशेरुकासु
संयुक्ताः पुरः पश्चाच्च । तासां विवरणं
ग्रीवापृष्ठपेशीवर्णने वक्ष्यामः ।

अथ पृष्ठकशेरुकाः ।

पृष्ठे कशेरुकाः द्वादश ।

तास्विमे विशेषाः (११श-१२श-
१७श चित्राणि) ।

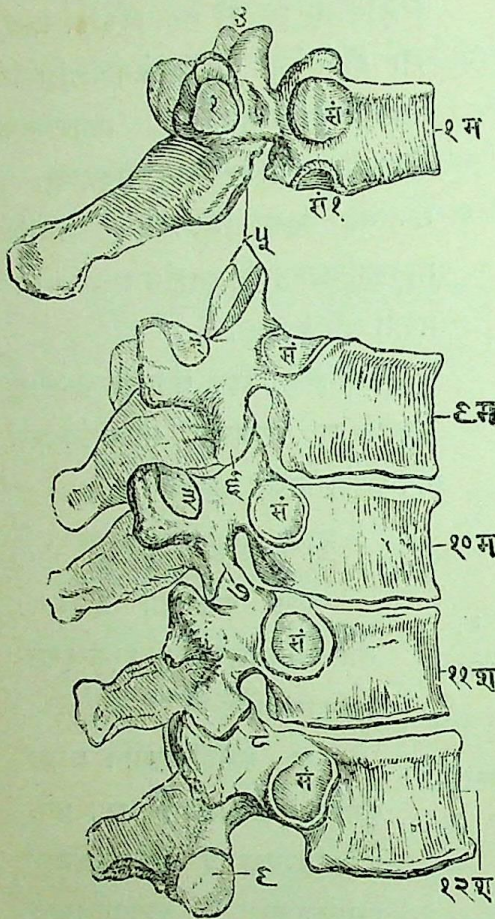
(१) कशेरुपिण्डानि मध्या-
वृत्तीनि वृत्तार्द्धप्रायाणि च । प्रति-
कशेरुपिण्डञ्च द्वे सन्धिपक्ष्मणी
स्थालकाख्ये पश्चादुभयतः,
ते पर्शुकाद्वयमूलसन्धानाय ।

(२) बाहुप्रवर्द्धनकानि प्रायो
वर्तुलाग्राणि स्थालकाख्यैः सन्धि-
पक्ष्मभिरङ्कितानि च पर्शुकार्बुदैः
सन्ध्यर्थम् । अतएव प्राचां
बाहुप्रवर्द्धनकेष्वेव स्थालकार्बुद-
संज्ञा ।

(३) पृष्ठकण्टकानि अधोऽध-
श्छादीनि दीर्घवृत्तमुखानि च

१ Vertebra Prominens. २ Ligamentum Nuchae. ३ यथा चरके (शा० ७ अ०)

[१८श चित्रम्—विशिष्टाः पृष्ठकशेरुकाः]



१८श चित्र व्याख्या ।—

१म—पृष्ठकशेरुका प्रथमा । ६म—सैव नवमी । १०म—
सैव दशमी । ११श—सैव एकादशी । १२श—सैव द्वादशी ।
१, २, ३—कशेरुवाहुस्थानि स्थालकानि पर्शुका-
सन्धानाया । ४, ५, ६, ७, ८, ९—सन्धिप्रवर्द्धनकानि ।
सं, पूर्णचक्राकारं स्थालकम् । सं १—अर्द्धचक्राकारं
तदेव ।

एकादश्यां द्वादश्याञ्च पृष्ठकशेरुकायां कशेरुपिण्डस्यैकैकस्मिन् पार्श्वे
पूर्णचक्राकारमेकैकमेव स्थालकं, बाहुप्रवर्द्धनके तु सर्वथा स्थालकाभावः । तत्रापि
द्वादशी विशेषतः कटिकशेरुकासदृशी त्रिमुखेन बाहुप्रवर्द्धनकेनोपलक्षिता चेति
विशेषः ।

अथात्र प्रथमा, नवमी, दशमी,
एकादशी, द्वादशी चेति पञ्च
पृष्ठकशेरुकाः विशेषतोऽभिज्ञेयाः
(१८श चित्रम्) । तद्यथा—

प्रथमा पृष्ठकशेरुका—अस्या
एकैकस्मिन् पार्श्वे द्वे द्वे स्थालके
पूर्णचक्राकारे, — तल्लैकं कशेरु-
पिण्डपार्श्वत ऊर्ध्वसीम्नि, अपरं
बाहुप्रवर्द्धनके । अधःसीम्नि
पुनः कशेरुपिण्डपार्श्वतोऽर्धचक्रा-
कारं स्थालकमेकमेव ।

द्वितीयान्तु पृष्ठकशेरुका-
मारभ्य अष्टमीं यावत् प्रतिकशेरु-
पार्श्वं त्रीणि त्रीणि स्थालकानि
(१७श चित्रम्) । तेषु पूर्ण-
चक्राकारमेकं बाहुप्रवर्द्धनके, अर्ध-
चक्राकारं द्वे कशेरुपिण्डपार्श्वतः
ऊर्ध्वाधःसीम्नोः ।

नवम्यां पुनः पृष्ठकशेरुकायाम्
अर्द्धचक्राकारमेकमेव स्थालक-
मेकैकस्मिन् कशेरुपिण्डपार्श्वे
ऊर्ध्वसीम्नि । अपरं च बाहु-
प्रवर्द्धनके (१८श चित्रम्) ।

दशम्यान्तु पूर्णचक्राकारं कशेरु-
पिण्डस्यैकैकस्मिन् पार्श्वे स्थालक-
मेकमेव, अपरं बाहुप्रवर्द्धनके ।

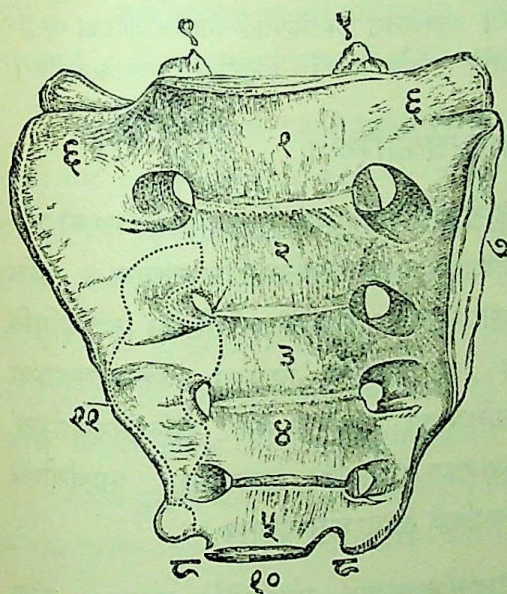
कटिकशेरुकाः—पुनः पञ्च । तास्विमे विशेषाः (११ श चित्रम्) ।

(१) कशेरुपिण्डानि बृहत्तमानि पार्श्वायतानि च । (२) पार्श्वप्रवर्धनकानि ह्रस्वानि त्रिमुखानि पक्षवदायतानि च । (३) पृष्ठकण्टकानि स्थूलह्रस्वानि परशुमुखानि च । तत्रापि पञ्चमी कटिकशेरुका विशेषेण परिच्छिद्यते ऊर्ध्व-मुखाभ्यां बाहुप्रवर्धनकाभ्यां, पृष्ठकण्टकेन च तन्वरेण ।

बहवश्च स्थूलमांसलाः पेश्यः पृष्ठ-कटि-त्रिक-कशेरुकाणां पृष्ठकण्टकेभ्यः सम्भूताः । तासु मुख्याः पृष्ठच्छदा-कटिपार्श्वच्छदा-त्रिकपृष्ठिकाप्रभृतयः । तद् विवरणं मध्य-कायपेशोवर्णनीये वक्ष्यामः ॥ तदेवं चतुर्विंशतिः कशेरुका व्याख्याताः ।

अथ त्रिकास्थि ।

(१६श चित्रम्—त्रिकास्थि)



अत्र १, २, ३, ४, ५—त्रिकास्थि-निर्मापिकाणां कशेरुकाणां सूचकानि । अन्तरालेषु च रेखाचतुष्टयं कशेरुपिण्डसंयोगसूचकम् । ६, ६,—त्रिकपक्षद्वयम् । ७—श्रोणि-सन्धिलक्षम् । ८, ८—अनुत्रिकास्थना-सन्धानाय पादद्वयम् । ९, ९—त्रिकशृङ्गाख्ये सन्धि-प्रवर्धनके, तत्पुरस्तादन्तराले च त्रिकौष्ठम् पञ्चम-कटिकशेरुपिण्डेन सन्धेयम् । १० त्रिकमूलमनुत्रिकास्थना-सन्धेयम् । ११ (रेखावेष्टितः) शृङ्गिकाख्यपेश्याः प्रभवः ।

त्रिकास्थि' नाम—

पृष्ठवंशानुबन्धेन सि श्रोणि-फलकयोरन्तरालस्थं न्युब्जपृष्ठं त्रिकोणप्रायम् अस्थिफलकम् । तदिदं स्थानमेदात् संहत-स्वरूपं कशेरुकापञ्चकमिति सूक्ष्मदृशः (१६श चित्रम्) । लिङ्गञ्चादुरत्तकशेरुपिण्डसंघात-सूचकं रेखाचतुष्टयं पुरतः, कशेरुपृथक्त्वञ्च वाल्ये ।

अत्रैतानि विशेषतो लक्ष-णीयानि—

(१) अष्टौ पुरोवर्त्ति-च्छिद्राणि (एकैकतश्चत्वारि) रेखाचतुष्टयानुबन्धेन, त्रिकपुरो-गामिनीनां नाडीनां निर्गमाय ।

(२) अष्टौ पश्चिमच्छिद्राणि (एकैकतश्चत्वारि) त्रिकपश्चिम-गामिनीनां नाडीनां निर्गमाय ।

(३) त्रिकौष्ठं त्रिकशिरसि पुरःस्थम् (१६श चित्रम्) । तच्च तदुभयतः स्थितं शृङ्गद्वयञ्च पञ्चमकटिकशेरुकापिण्डेन सन्धिप्रवर्द्धनकाभ्याञ्च सन्ध्ययते ।

(४) कण्टकानि पञ्च पृष्ठतः स्थूलह्रस्वानि ।

(५) उभयतश्च त्रिकपक्षौ श्रोणिसन्धिलक्ष्मयुतौ श्रोणिफलकाभ्यां सन्ध्यर्थम् ।

(६) त्रिकमूलं त्रिकाधःप्रान्तरूपं, तेन सन्ध्ययते अनुत्रिकास्थिचूडा । अस्यैवोभयतः त्रिकपादद्वयम् अनुत्रिकशृङ्गाभ्यां सन्धानाय ।

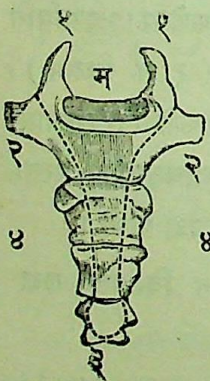
(७) त्रिकगुहा च त्रिकाभ्यन्तरस्था, “सुषुम्ना-चामर”-धारिणी ।

सप्त चात्र युग्मरूपाः पेश्यस्त्रिकास्थिः संलग्नाः—पुरस्तिष्ठः, पश्चात् चतस्रः—इति । तत्र पुरस्तादेकैकतः संलग्नास्तिष्ठः पेश्यः, यथा—त्रिकपक्षस्य बहिःसीम्नि श्रोणिपक्षिणी^२, शुण्डिकाख्या पेशी^३ च तदधस्तात् । तदधश्च निम्नार्द्धे अनुत्रिकिणी^४ । त्रिकास्थिः पश्चिमभागे तु एकैकतः संलग्नाश्चतस्रः पेश्यः, यथा—उत्तरार्द्धे सुषुम्नाच्छिद्रद्वयस्य माध्यसीम्नि कटिपार्श्वच्छिद्रा^५ । पृष्ठकण्टकान्युभयतो मेरुधारिणी^६, तद्-बहिःसीम्नि त्रिकपृष्ठिका^७ । तदधस्तात् निम्नार्द्धपार्श्वे नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा^८ इति । एतासु तिस्रो युग्मपेश्यः, मेरुधारिणी त्वेकैव मध्ये । तद्विवरणं पेश्यध्याये वक्ष्यते ।

(२० चित्रम्)

अनुत्रिकास्थि ।

(पुरोभागः)



अथ अनुत्रिकास्थि ।

अनुत्रिकं^८ नाम (२०श चित्रम्) त्रिकास्थनोऽधः-

स्थितस्त्रिकोणः काकचञ्चुनिभोऽस्थिसंघातः । तच्च क्षुद्रकशेरुकाणां चतुष्टयेन पञ्चकेन वा मिलितेन निष्पन्नमिति परीक्षकाः । अस्योर्ध्वभागे शृङ्गद्वयं त्रिकमूलस्थाभ्यां पादाभ्यां सन्धिमतः । मध्ये च तयोः सन्धिलक्ष्माङ्कितं पिण्डं पञ्चमत्रिककशेरुपिण्डेन सन्ध्यर्थम् । पार्श्वयोश्च तदुभयतः प्रवर्द्धनके स्नायुरज्जुसंयोगाय ।

इदञ्च गुदपश्चिमत्वात् गुदास्थीति प्राञ्चः । तदेव

अनेकास्थिगुटिकामयं कल्पते गवादीनां पुच्छास्थिमाला-निर्माणायेति प्राणितत्त्वविदः ।

१, १,—शृङ्गद्वयम् । २, २—स्नायुरज्जुसंयोगि प्रवर्द्धनकद्वयम् । ३ अनुत्रिकाग्रम्, तत्र पुरस्तात् रेखाङ्कित भागः पायुधारणी प्रभवः । ४, ४—अनुत्रिकिणी-पेश्योः प्रभवौ रेखाङ्कितौ । म, अधःप्रान्तं परितस्तु एका पायुधारिणी पुरस्तात्, गुद-त्रिकास्थिसन्धानस्थालकम् । संकोचनी बाह्या च पश्चात् । तद्विवरणं पेश्यध्याये वक्ष्यते ।

१ Cauda Equina. २ Iliacus. ३ Pyriformis. ४ Coccygeus. ५ Latissimus Dorsi. ६ Multifidus Spinæ. ७ Sacro-spinalis. ८ Gluteus Maximus. ९ Coccyx.

अथ श्रोणिफलकम् ।

श्रोणिफलकं^१ नाम (२१श चित्रम्)—त्रिक-नितम्ब सक्थिधारणं सुबृहदस्थिफलकं विषमाकृति कपालभूयिष्ठम् । तदेकैकस्मिन् नितम्बपार्श्वे तिर्यगवतिष्ठते कटिपार्श्वोत् सक्थिशिरो यावत् । तच्च उपर्यधः आयतं, संकुचित-मध्यं, अन्तर्विवृत्तप्रायश्च अधरार्धे । सन्धिश्चोभयोः श्रोणिफलकयोः पुरस्तात् परस्परं तरुणास्थि पत्रव्यवधानेन, पश्चात् त्रिकास्थिव्यवधानेन । एवं संहितयोश्च तयोः श्रोणिचक्रम्^२—इति संज्ञा, तन्मध्यस्थगुहायास्तु श्रोणिगुहा,^३ इति । सेयं श्रोणिगुहा पुंसो गभीरा स्वल्पायता च । नार्यास्तु उत्ताना विशालायता च, गर्भधारणाय निर्माणवैशेष्यात् श्रोणिफलकयोः ।

अथास्याः श्रोणिगुहाया उत्तरोऽंशः जघनपक्षयोरन्तरालस्थो बृहतो श्रोणिगुहा^४ नाम । अधरोऽंशस्तु लघ्वो श्रोणिगुहा, वस्तिगुहा^५ वा नाम, वस्तिगुदादि धारणात् । उत्तराऽधरांशविभाजनो च रेखाऽत्र दृश्या वस्तिकण्ठिका^६ नाम ।

आ यौवनारम्भाच्च दृश्यते प्रतिश्रोणिफलकमस्थितितयं तरुणास्थिपत्रकलय-व्यवधानेन परस्परसंयुक्तम्, तदा च सूच्यते वंक्षणोदूखलान्तःस्थेन रेखात्रितयेन मध्यकेन्द्रात् त्रिधानिगतेन तत्सन्धानम् (२१श चित्रे $\times 1, \times 2, \times 3-4$) । तथाच तदानीमेवं विभागः—जघनकपालं नाम ऊर्ध्वस्थोऽंशः विस्तृत-पक्षाकारः । कुकुन्दरास्थि नाम अधःस्थोऽंशः कुकुन्दरपिण्डोपलक्षितः । भगास्थि नाम पुरःस्थोऽंशो भगाधिष्ठानभूतः । विंश-पञ्चविंशवर्षयोर्मध्ये तु प्रायेण त्रयाणामंशानां संयोगाद् दृश्यमेकमेवास्थि श्रोणिफलकं नाम ।

समग्रे पुनरेकैकस्मिन् श्रोणिफलके द्वयं विशेषतो लक्ष्यम्—त्रयाणां तदंशानां संयोगप्रभवम्—वंक्षणोदूखलं श्रोणिगवाक्षञ्चेति । तत्र—

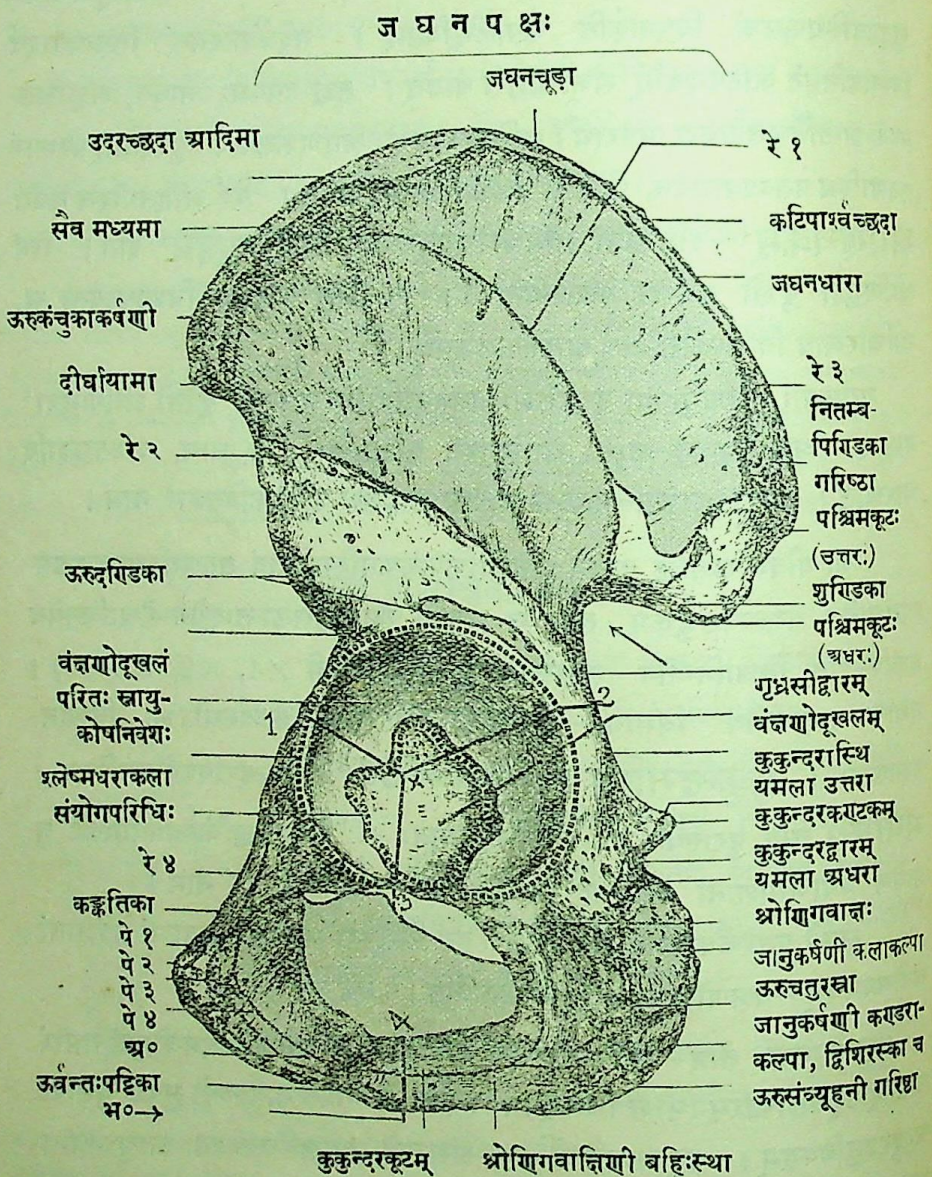
वंक्षणोदूखलं^७ नाम—श्रोणिफलकस्य बहिःपार्श्वे मध्यतः स्थितमधोमुखं गभीरं कोटरम् उदूखलाकारम् (२१श चित्रम्) । तदन्तः सन्धीयते ऊर्वस्थो मुण्डं चूडायां स्नायुरज्जुनिबद्धम् । उदूखलपरिधौ च संसज्यते तत्सन्धिवन्धनः स्नायुकोषः । तदन्तश्च दृश्यते आ यौवनारम्भाद् रेखात्रयमंशत्रितयसंघातसूचकम् ।

श्रोणिगवाक्षो नाम भगास्थि-कुकुन्दरास्थिभ्यां परिमण्डलीकृतमन्तरालं गवाक्षा-कारम् । तद् जीवच्छरीरे कलावृत्तं, पुंसि बृहत्तरं, स्त्रियान्तु नात्यायतं त्रिकोणञ्च ।

वर्णनसौकर्याय पुनरेकैकस्मिन् श्रोणिफलकांशे कल्प्यन्ते विशेषा बहवः । यथा—

१ Os Coxæ (Hip-bone). २ Pelvic girdle. ३ Pelvic Cavity. ४ False or greater Pelvis. ५ True or lesser Pelvis. ६ Ileo-pectineal line. ७ Acetabulum or Cotyloid Cavity. ८ Obturator foramen.

२११ चित्रम् श्रोणिफलकस्य बहिस्तलम् ।



चित्रव्याख्या—रे १ अग्रिम नितम्बिका रेखा । रे २ अधर नितम्बिका रेखा । रे ३ पश्चिम-
नितम्बिका रेखा । रे ४, वस्तिकगिडका रेखा । पे १ उदरदगिडका । पे २ वस्तिकचूडिका ।
पे ३ ऊरुसंन्यूहनी दीर्घा । पे ४ ऊरुसंन्यूहनी हस्वा । अ० अधरं भगास्थि शृङ्गम् । भ० भगास्थि-
कुकुन्द्रास्थिनोरग्रिमसन्धानम् । ×१ भगास्थि जघनकपालयोः संयोगरेखा । ×२ सैव जघनकपाल-
कुकुन्द्रास्थिनोः । ×३-४ सैव भगास्थि कुकुन्द्रोस्थिनोः ।

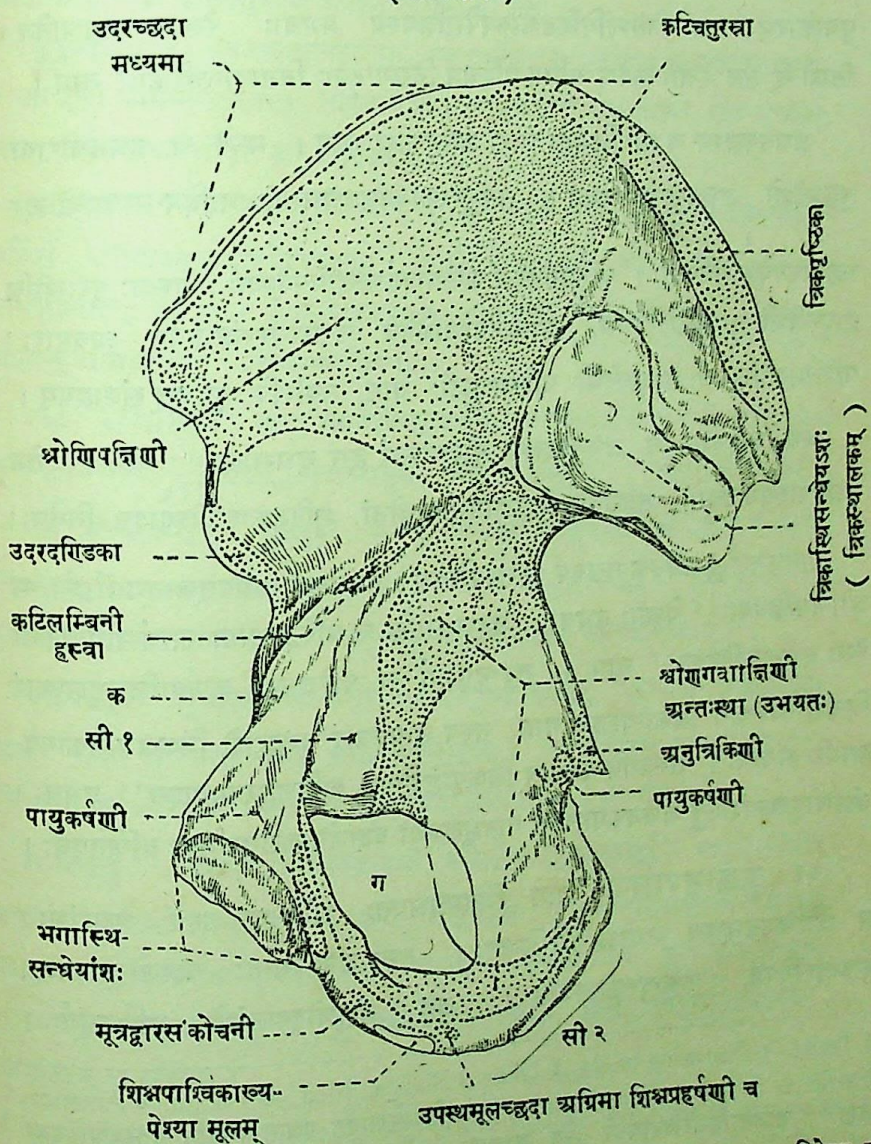
चतुर्थोऽध्यायः ।

४५

(२२ श चित्रम्)

श्रोणिफलकस्य आन्तरतलम् ।

(ऊर्ध्वभागः)



चित्र-व्याख्या—अत्र स्त्रीलिङ्गान्तपदैर्निर्दिष्टा अंशाः तत्तत्पेशीनां प्रभवा निवेशा वा ज्ञेयाः । क—वस्तिकगठिका । सी १—श्रोणिवन्त्रिकाख्यसिराधमन्योः, वन्त्रिकाख्यनाड्याश्च धारणाय सीता । ग—श्रोणिगवान् । सी २—गुदोपस्थिकाख्य नाडी-सिरा-धमनीनां धारणाय सीता ।

(१) जघनकपालं^१ नाम श्रोणिफलकस्य ऊर्ध्वगोऽंशः प्रधानभूतः कपालाकारः (२१श चित्रम्) । तस्य द्वौ भागौ—जघनपक्षः, वंक्षणोदूखलांशश्चेति । तत्र जघनपक्षो^२ नाम पक्षवदायतो जघनकपालस्य प्रशस्तो भाग उपरिष्ठः । तस्य द्वे तले, बाह्यमान्तरश्च । तयोर्बाह्यतलं जघनपृष्ठं^३ नाम पुरस्तात् स्तोकेन कूर्म-पृष्ठाकारम्, तत्र नितम्बपिण्डिकाख्यपेशीत्रयस्य प्रभवाः रेखात्रयव्यवधानेन । तिस्रो हि तत्र रेखाः क्रमेण अग्रिम-पश्चिम-निम्नगाय्याः नितम्बान्तरिकाः^४ नाम ।

जघनपक्षस्य च परिधिभूता धारा जघनधारा नाम । मध्ये च जघनधारायाः तुङ्गप्रदेशो जघनचूडा^५ नाम । तत्पुरस्ताज्जघनधारायां आदिम-मध्यमयोरुदर-च्छदाख्यपेश्योर्निवेशः । पश्चिमतश्च कटिपार्श्वच्छदाख्यपेश्याः । तस्याः पुरःसीम्नि द्वावुत्सेधौ पुरःकूटौ^६ नाम, तयोरूर्ध्वाधोभेदेन उत्तराधरसंज्ञाद्वयेन व्यवहारः । पश्चिमसीम्नि च द्वावुत्सेधौ पश्चिमकूटौ^७ नाम, तयोरपि पूर्ववत् संज्ञाद्वयम् ।

अथः पश्चिमतश्च जघनपक्षस्य तोरणाकारं द्वारं गृध्रसोद्वारं^८ नाम । तेन गृध्रस्याख्यनाड्याः, तदनुवर्तिसिराधमनीनाडीनां, शुण्डिकाख्यपेश्याश्च निर्गमः ।

आन्तरतलं तु जघनकपालस्य (२२श चित्रम्) जघनोदरं नामेष्टत्खातगर्भोऽंशः, स श्रोणिपक्षिण्याः^९ पेश्याः प्रभवः । तदथःसीम्नि च वस्तिगुहाया ऊर्ध्वसोमदर्शिनी रेखा वस्तिकण्डिका^{१०} नाम । तदानुपूर्व्या च पश्चिमतः कर्णपालिसदृशाकारं त्रिकसन्धिस्थानं त्रिकस्थालकं^{११} नाम, तस्य च पश्चाद् बन्धुरांशे त्रिकजघनिकाख्य-स्नायोः संयोगः । तस्यापि पश्चात् त्रिकपृष्ठिकायाः, कटिचतुरस्त्रायाश्च^{१२} प्रभवः । वंक्षणोदूखलांशस्तु जघनकपालस्य पादमूलस्थो वंक्षणोदूखलवर्णनया वर्णितपूर्वः ।

(२) कुकुन्दरास्थि^{१३} नाम नितम्बाश्रयतः श्रोणिफलकस्य अधरांशः । स श्रोणिगवाक्षस्य अधोऽर्द्धपरिधिभूतः । तस्य त्रयो भागाः—वंक्षणोदूखलांशः, कुकुन्दरपिण्डं, कुकुन्दरकूटञ्चेति । तत्र वंक्षणोदूखलांशो वर्णितपूर्वः ।

१ Ilium. २ Iliac wing or ala. ३ Gluteus Maxim., Med., & Minim. ४ Anterior, Posterior & Superior Gluteal Lines. तत्र पश्चिमरेखायाः पश्चात् प्रभवति नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा । पश्चिमपश्चिमरेखयोर्मध्ये सैव मध्यमा, अग्रिम-निम्नरेखयोर्मध्ये तु सैव लघ्विष्ठा । ५ Iliac crest. ६ Ext. Oblique and Int. Oblique Muscles. ७ Latissimus Dorsii. ८ Anterior Iliac Spines—Superior and Inferior. ९ Posterior Iliac Spines—Superior and Inferior. १० Great Sacro-sciatic Notch. ११ Sciatic Nerve. १२ Pyramiformis. १३ Iliacus. १४ Arcuate or Ileo-pectineal Line. १५ Auricular Surface. १६ Sacro-Spinalis & Quadratus Lumborum. १७ Ischium.

चतुर्थोऽध्यायः ।

४९

तत्पश्चात् त्रिकोणप्रायं प्रवर्द्धनकं कुकुन्दरकण्टकं^१ नाम । तत्परितो यमलाख्यपेश्यो^२ प्रभवः ।

तदधस्तात् क्षुद्रतोरणाकारं खातं कुकुन्दरद्वारम्^३, अनुगृध्रसीद्वारं वा (२१श चित्रम्) नाम, तेन अन्तःस्थायाः श्रोणिगवाक्षिणी^४-पेश्याः तदनुचरीणां सिरा-ध्रमनी-नाडीनाञ्च वस्तिगुहायां प्रवेशो निर्गमो वा ततः ।

कुकुन्दरपिण्डं^५ स्वनामध्याख्यातम्, तद् उपविशतः पुरुषस्य भारधारणमूलम् । स चतसृणां पेशीनां प्रभवः । ताश्च यथा — जानुकर्षणी कलाकल्पा, सैव कण्डुरा-कल्पा, द्विशिरस्का और्वी, ऊरुचतुरस्त्रा चेति ।

कुकुन्दरकूटं^६ नाम कुकुन्दरपिण्डादूर्ध्वं पुरःसङ्गतं शृङ्गं भगास्थनोऽधरशृङ्गेण मिलितं श्रोणिगवाक्षपरिधेरंशभूतम् तत्पार्श्विकप्रदेशो वहिःस्थायाः श्रोणि-गवाक्षिण्याः^७, गरिष्ठाया ऊरुसंव्यूहस्याश्च^८ इति द्वयोः पेश्योः प्रभवः । तदन्तः-प्रदेशस्तु अन्तःस्थायाः श्रोणिगवाक्षिण्याः ।

(३) भगास्थि^९ नाम भगाद्यधिष्ठानभूतः श्रोणिफलकस्य पुरःस्थोऽंशः । तस्य त्रयो भागाः—मुण्डम्, उत्तरशृङ्गम्, अधरशृङ्गञ्चेति । (२१।२२श चित्रयोः)

तत्र मध्यपिण्डभूतं मुण्डं^{१०}, कचिद् भगपीठं लिङ्गपीठमिति वा व्यपदिष्टम् । अन्तःसीम्नि च तस्य इतरभगास्थिसन्धानाय स्थालकमुच्चावचम् । उत्सेधे च तत् पुरःस्थे उदरदण्डिकाख्यपेश्याः^{११} निवेशः, तत् परितश्च स्नाय्वादीनाम् ।

उत्तरशृङ्गं^{१२} मुण्डात् पश्चिमतो वक्ष्णोदूखलावधिकं, परार्द्धेन तदंशनिष्पा-दकञ्च । तदेव श्रोणिगवाक्षस्य ऊर्ध्वपरिधिभूतम् । तदूर्ध्वसीमा चान्तरतलस्थया वस्तिक्कण्टिकाख्यरेखया सङ्गता वस्तिगुहाया ऊर्ध्वसीमांशं रचयति ।

अधरशृङ्गं^{१३} पुनर्भगास्थिमुण्डादधो वहिर्गत्य कुकुन्दरकूटेन सङ्गतं श्रोणि-गवाक्षस्य पुरःपरिधिभूतम् । अस्य वहिस्तले ऊरुसंव्यूहस्याख्यपेशीत्रयस्य, वाह्यायाः श्रोणिगवाक्षिण्याख्यपेश्याश्च प्रभवाः, अन्तःप्रदेशे तु अन्तःस्थायाः श्रोणिगवाक्षिण्याख्यपेश्याः । पुरोवर्त्तिधारायाञ्चास्य शिश्रप्रहर्षण्याख्यपेश्याः^{१४} शिश्रमूलस्य च संयोगः ।

१ Spine of Ischium. २ Gemellus Sup. & Inf. Muscles. ३ Lesser Sacro-Sciatic Notch. ४ Obturator Internus. ५ Tuberosity of Ischium. ६ Ascending Ramus of Ischium. ७ Obturator Externus. ८ Adductor Magnus. ९ Pubes प्राचां भगास्थि तु उभयोर्भगास्थनोः सन्धानभवम् । १० Body of Pubes. ११ Rectus Abdominis. १२ Ascending Ramus of Pubes. १३ Descending Ramus of Pubes. १४ Adductor Magnus, Longus and Brevis. १५ Erector Penis.

तदेतत् सावयवं श्रोणिफलकं समासतो व्याख्यातम् । तस्य स्नाय्वादि-
संयोगविशेषास्तु चित्रादिषु स्नायु-पेशीवर्णनेषु च द्रष्टव्याः ।

अथ अंसफलकम्

अंसफलकं^१ नाम (२२ श चित्रम्) त्रिकोणप्रायं पक्षवदायतमस्थि-
फलकं कपालभूयिष्ठमेकमेकैकतः अंसपृष्ठे । तच्च तिर्यगवस्थितं पृष्ठाद्धं
संच्छाद्य आ सप्तमपशुकामूलात् । सन्धीयते चैतत् बहिःसीममात्रे अक्षक-
प्रगण्डास्थिभ्याम्, विवर्त्तते च स्वच्छन्दमन्तःसीम्नि पश्चिमतः पेशीमात्रप्रतिबद्धम् ।

अक्षकसंहितस्य चांसफलकस्य अंसचक्रम्^२ इति संज्ञा । एकैकश्च अंस-
चक्रम् एकैकतः अंससन्धेरुपरि पटलभूतं^३ सन्धिसंरक्षणाय संयोजनाय च
पेशीस्नायूनाम् । (दृश्यतां प्रथमकङ्कालचित्रम्)

एकैकस्य पुनरंसफलकस्य पञ्च विभागाः—अंसप्राचीरकम्, अंसकूटम्,
अंसतुण्डम्, अंसपीठम्, अंसकपालिका चेति । तत्—

अंसप्राचीरकं^४ नाम (२२ श चित्रम्) अंसकपालिकापृष्ठात्तिर्यक्
समुद्गतं बहिर्मुखमस्थिफलकं खड्गसदृशाकारं त्वगध्रोऽनुभवनीयम् । तेनांस-
कपालिकापृष्ठतलस्य द्वेधा विभागः—अंसपृष्ठम्, उत्तरम् अधरं^५ चेति ।

अंसकूटं^६ नाम अंसप्राचीरकस्याग्रं सर्पफणायतमुच्चावचञ्च, तत् सम्बध्यते
अंसतुण्डसंयोजनी^७ स्नायुः । प्रभवश्चायमंसच्छदायाः पृष्ठच्छदायाश्च^८ पेश्याः ।

अंसतुण्डं^९ नाम अंसफलकस्य चूडायां हंसतुण्डाकारं बहिर्मुखं प्रवर्द्धनकम् ।
अग्रेचास्य पृष्ठतो द्विशिरस्कायाः^{१०} काकोष्ठिकायाश्च^{११} पेश्याः प्रभवः,
पुरश्च लघ्व्या उरश्छदाख्यपेश्याः । सम्बध्येते चात्र तुण्डाक्षकसंयोजनी
तुण्डांसकसंयोजनी च स्नायुः ।

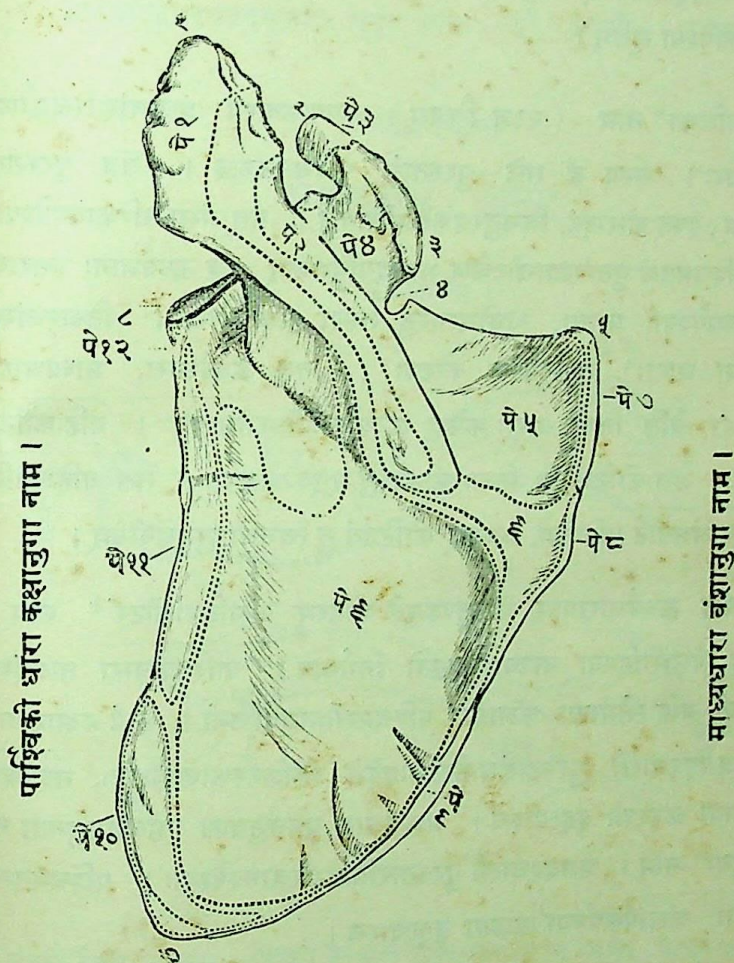
१ Scapula. २ Shoulder-girdle. ३ पटलं इति: (Roof). ४ Spine of Scapula.
५ Supra-spinous & Infra-spinous fossæ. ६ Acromion process. ७ Coraco-
acromial ligament. ८ Deltoid & Trapezeus. ९ Coracoid process. १० Biceps.
११ Coraco-brachialis. १२ Pectoralis Minor.

चतुर्थोऽध्यायः ।

४६

२३श चित्रम् ।

अंसफलकम् (वामम्) ।



२२श चित्र-व्याख्या—१-६—इत्यंक्रयोर्मध्ये अंसप्राचीरकम् । १, अंसकूटम् । २, अंस-
तुण्डम् । ३, अंसात्तकसंयोजनी-तुण्डांसकसंयोजनी चेति स्नायुद्वयस्य संयोगस्थानम् । ४, अंसशिरः-
कोटरम् । ५, अन्तःकोटिः । ६, अंसप्राचीरस्यमूलदेशः । तमाश्रित्य च विवर्तते पृष्ठच्छदाख्या पेशी
श्लेष्मधरकलापुटकव्यवधानेन । ७, अधःकोटिः । ८, बहिःकोटिस्थं स्थालकमंसपीठं नाम ।

अत्र चैता निविशन्ते पेश्यः—पेशी १, अंसच्छदा । पेशी २, पृष्ठच्छदा । पेशी ३, द्विशिरस्काया ह्रस्व-
मूलं काकोष्ठिका च । पेशी ४, द्विशिरस्काया दीर्घमूलम् । पेशी ५, अंसपृष्ठिका उत्तरा । पेशी ६, सैव
अधरा । पेशी ७, अंसोन्नमनी । पेशी ८, अंसापकर्षणी लघ्वी । पेशी ९, सैव बृहती । पेशी १०, अंसा-
धरिका बृहती । पेशी ११, सैव लघ्वी । पेशी १२, त्रिशिरस्का पेशी ।

अंसपीठं^१ नाम (२३ श चित्रम्) अंसकूटादधःस्थमंसफलकस्य वहिःकोटि-स्थितं स्थालकं, तत्र सन्धीयते प्रगण्डास्थनो मुण्डं तत्परिधिसंयुक्तेन स्नायुकोषेण प्रतिबद्धम् । तदूर्ध्वस्तात् संयुज्यते त्रिशिरस्काख्यपेश्या दीर्घमूलम्, तदधश्च त्रिशिरस्काख्यपेश्या मूलम् ।

अंसकपालिका^२ नाम (२३श चित्रम्) अंसफलकस्य प्रधानांशस्त्रिकोण-कपालिकाकारः । तस्य द्वे तले—पुरस्तलं पश्चमतलञ्च । तत्र पुरस्तलं पृष्ठाभिमुखम्, ईषत् कोरोदरं, त्रिचतुरवकरेखांकितञ्च । तत् अंसान्तरिकाख्यपेश्याः प्रभवः । पश्चमतलं पुनरंसप्राचीरकेण भागद्वयविभक्तम्, तत्र ऊर्ध्वभागः उत्तराया अंसपृष्ठिकाख्यपेश्याः प्रभवः, अधोभागस्तु तस्या एवाधरायाः । तिस्रश्चांस-कपालिकाया धाराः^३, तावत्यश्च कोट्यः^४ । तत्र ऊर्ध्वधारा, माध्यधारा, पार्श्विकधारा चेति तिस्रो धाराः क्रमेण ऊर्ध्वान्तर्वहिःसीमस्थाः । वहिःकोटिः, अन्तःकोटिः, अधःकोटिश्चेति तिस्रः कोट्यस्तु तत्कोणरूपाः । तत्र वहिःकोटिः वृत्तायतीभूय अंसपीठे परिणता, अन्यत् कोटिद्वयं तु त्वगधोऽनुभवनीयम् ।

दृश्यञ्च ऊर्ध्वधारायाम् अंसतुण्डमूले कोटरम् अंसशिरःकोटरं^५ नाम । द्वारञ्च तद् अंसारोहिण्या नाड्याः पृष्ठतो निर्गमाय । पार्श्विकधारा तावदंस-कपालिकाया वहिःसीमस्था कक्षायाः पश्चिमसीमानुवर्त्तिनी । सेयं कक्षानुगा^६ नाम । प्रभवश्चासौ पुरस्तादंसपीठाधःप्रदेशे त्रिशिरस्काख्यपेश्याः, तदधश्च अंसाधरिकाया लघ्व्याः बृहत्याश्च । माध्यधारा पुनर्धनुर्वका पृष्ठवंशमनुगता च, सेयं वंशानुगा^७ नाम । प्रभवश्चासौ पुरस्तारग्रिमाऽरित्राख्यपेश्याः । पश्चमतस्तु अंसोन्नमन्याः, अंसापकर्षण्या लघ्व्या बृहत्याश्च ।

अथ अक्षकास्थि ।

अक्षकं^८ नाम अंसमूलादुरःफलकावधि परिधवत्सङ्गतं धनुर्वकं नलकास्थि, एकमेकैकतः । तदेव 'जटु'^९-संज्ञमपि । सन्धीयते च तद् अन्तःसीम्नि उरःफलकेन,

१ Glenoid Cavity. २ Body of Scapula. ३ Borders. ४ Angles. ५ Supra-
scapular Notch. ६ Axillary border. ७ Vertebral border. ८ Clavicle.
९ परिघो नाम अर्गलः । १० अतएव जटुणोरूर्ध्वं जाता रोगाः नासान्निकर्णकण्ठादिगता
ऊर्ध्वजटुगताः इति व्यपदिश्यन्ते ।

चतुर्थाऽध्यायः ।

५१

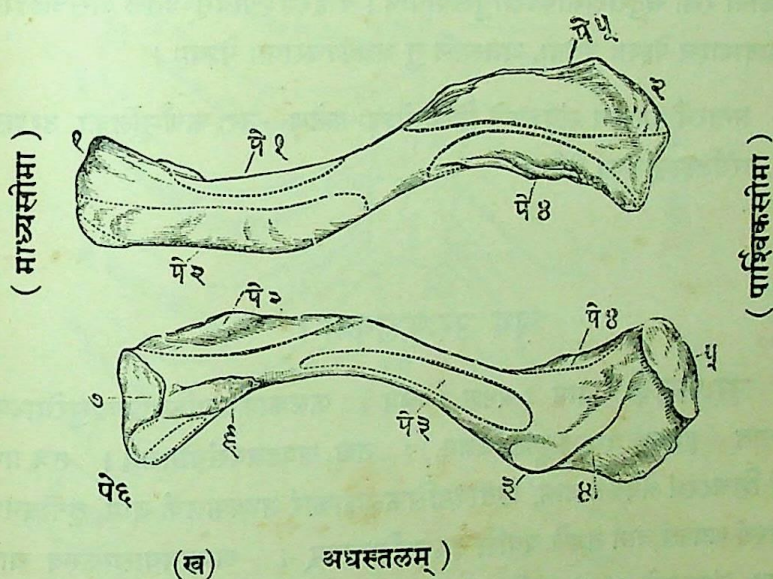
बहिर्चांसकूटेन । अंसफलकसहितस्य च तस्य तथा संहितस्य अंसचक्रम्^१
इति संज्ञा ।

इतरनलकास्थिवदस्यापि तयो भागाः—द्वौ प्रान्तौ, मध्यनलकञ्चेति ।

२३श चित्रम्

अक्षकास्थि (वामम्)

(क) (ऊर्ध्वतलम्)



(ख) (अधस्तलम्)

२३श चित्र-व्याख्या—चित्रद्वये ऊर्ध्वस्थं चित्रम् ऊर्ध्वतलस्य दर्शकम्, अधःस्थमधस्तलस्य ।
तत्र १ अन्तःप्रान्तः (उरःफलकाभिमुखः) । २, बहिःप्रान्तः (अंसाभिमुखः) । ३, त्रिकोणिकाख्य-
स्नायुसंयोगार्थमर्बुदम् । ४, तिरश्चीना रेखा चतुरस्रिकाख्यस्नायुसंयोगाय । ५, अंसकूटेन सन्धेयं
लाञ्छनम् । ६, पर्शुकाक्षकसंयोजन्याः स्नायोः संयोगाय बन्धुरः प्रदेशः । ७, प्रथमोपपर्शुकोपरिभागेन
सन्धेयमर्बुदम् । अत्र चैता निविशन्ते पेश्याः—पे १ उरःकर्णमूलिका । पे २ उरश्छदा गुर्वी ।
पे ३ अक्षकाधरा । पे ४ अंसच्छदा । पे ५ पृष्ठच्छदा । पे ६ उरो-जिह्वामूलिका ।

१ Shoulder-girdle.

अन्तःप्रान्ते चास्य द्वे सन्धिलाञ्छने उत्तरमधरञ्चेति । तयोस्तत्तरमुपरिष्ठ-
मुरःफलकपार्श्वस्थेन स्थालकेन सन्धीयते । अग्रन्तु (२४श चित्रम्) प्रथमाया
उपपर्शुकायाः शीर्षभागेन । अधस्तले चास्य वन्धुरः प्रदेशः पर्शुकाक्षकसंयोजन्याः
स्नायोः^१ संयोगाय । वहिःप्रान्ते पुनरेकं सन्धिलक्ष्म, तद् अंसकूटेन सन्ध्यर्थम्
संयुज्यते अंसाक्षकसंयोजनी स्नायुः^२ ।

मध्यनलकं पुनरक्षकास्थनोर्द्वेधा धनुर्वकं, वहिरर्द्धे उत्तानमन्तरर्द्धे कूमपृष्ठवत्
पुरस्तात् । अन्तरर्द्धश्चास्य दण्डवद्वृत्तपरिणाहः, वहिरर्द्धस्तु चिपिटावतः । तत्र
वहिरर्द्धस्य अधस्तलमवुदोपलक्षितं त्रिकोणिकाख्यस्नायुसंयोगाय । अवुदादुद्गता च
तिरश्चीना रेखा चतुरस्रिकाख्यस्नायुसंयोगाय । वहिरर्द्धश्चायमूर्ध्वतले अंसच्छदायाः
पृष्ठच्छदायाश्च पेश्याः प्रभवः, अधस्तले तु अक्षकाधरायाः पेश्याः ।

अन्तरर्धे पुनरस्य संयुज्यन्ते तिस्रः पेश्याः क्रमेण--उरः-कर्णमूलिका, उरश्छदा
गुर्वी, उरोजिह्वामूलिका चेति ।

अथ उरःफलकम् ।

उरःफलकं^३ नाम (२४श चित्रम्) फलकाकारमस्थिखण्डमुरोमध्यतः
पुरस्तात् (दृश्यतां प्रथमकङ्कालचित्रम्) । तच्च खण्डत्रयसंयोगजम् । तत्र प्रथमं
खण्डं शिखरस्थं ग्रैवेयकं नाम, द्वितीयमसिफलकाकारं मध्यफलकं नाम, तृतीयमधः-
प्रान्तस्थं अप्रपलं नाम तरुणे वयसि तरुणास्थिमयम् । खण्डत्रयात्मकस्य चास्य
उभयतः संयुज्यन्ते तरुणास्थीनि पशुकासंयोजकानि उपपर्शुकाख्यानि ।

ग्रैवेयकं^३ नाम प्रथमं खण्डं षट्कोणं कण्ठमूले । तत्र षट् स्थालकानि
साकल्येन उभयतः, तद्गथा—द्वे स्थालके अक्षकाभ्यां सन्धानाय, द्वे प्रथमाभ्यामुप-
पर्शुकाभ्यां, द्वे च द्वितीयाभ्याम् । शिखरे चास्य अर्धचन्द्राकारं खातं कण्ठकूपो
नाम । निम्नतश्चास्य द्वितीयखण्डेन संयोगः । निविशते चात्र ऐकैकतः पुर-
स्तादुरःकर्णमूलिकाख्या पेशी, पृष्ठतश्च उरोजिह्वामूलिका ।

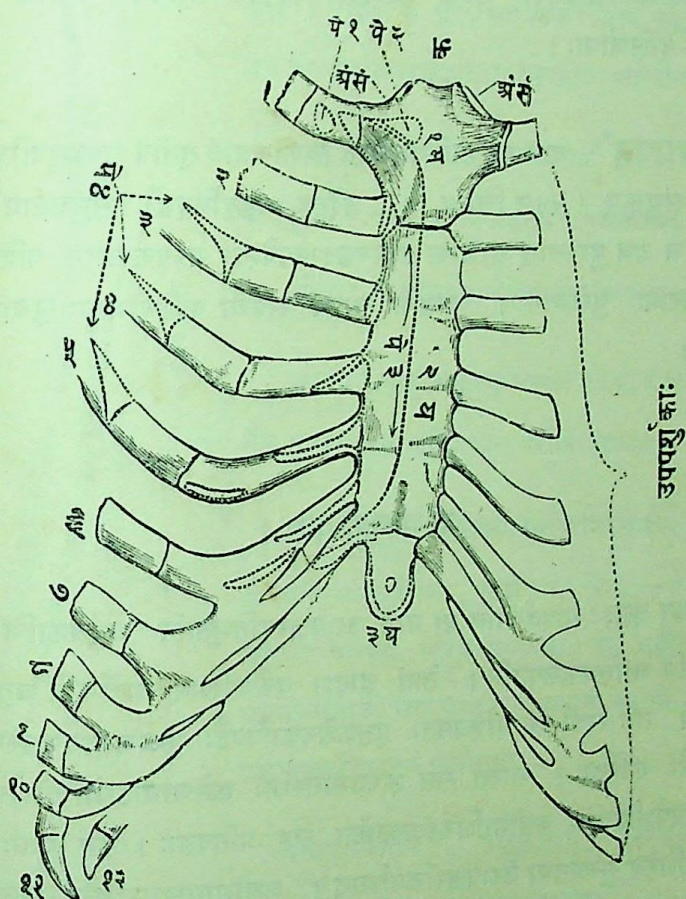
१ स्नायुद्वयञ्चैतत् शेषोक्तमंसतुण्डान्नकसंयोजनमिति स्नाय्वध्याये वक्ष्यते । २ Sternum.
३ Manubrium.

चतुर्थोऽध्यायः ।

२५श चित्रम्

उरःफलकमुपपर्शुकाश्च ।

(ऊर्ध्वम्)



मध्यफलकं^१ नाम द्वितीयं खण्डमुरःफलकस्य, तद् उपरिष्ठाद् प्रैवेयकेन संहितम् (२४श चित्रम्) खण्डचतुष्टयसंघातजं च, खण्डचतुष्टयस्य वालये पृथग्व-
स्थानात् । पट् चात्र एकैकतः स्थालकानि उपपर्शुकान्तैः सन्धानाय । पुरस्तलं
च प्रैवेयक-मध्यफलकयोः गुर्व्या उरश्छदाख्यपेश्याः प्रभवः, वामार्द्धे वामाया
दक्षिणार्द्धे दक्षिणायाः ।

अग्रपत्रं^२ नाम तरुणास्थिभूयिष्ठं त्रिकोणप्रायं तृतीयं खण्डमुपरिष्ठान्मध्य-
फलकेन संयुक्तम् (२४श चित्रम्) । तदेतद् यकृद्विवृद्धौ समुन्नताग्रं दृश्यते,
संयुज्यते च तत्र पुरस्तात् चरमाया उदरच्छदाख्यपेश्या मध्यकण्डरा, पश्चिमतश्च
महाप्राचीरायाः पुरोभागः । वार्द्धके चास्य सर्वथा कठिनीभावः सुध्राभागस्यो
पचयात् ।

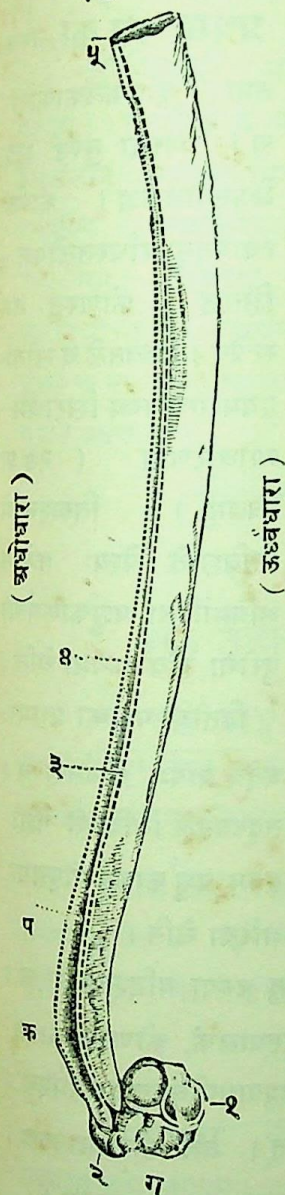
अथ पशुकाः ।

पशुकाः^३ पार्श्वकानि वा नाम उरःपञ्जरवृत्तिभूतानि^४ धनुर्वक्राणि स्थिति-
स्थापकानि चास्थिफलकानि । तेषां द्वादश एकैकस्मिन् पार्श्वे इति चतुर्विंशतिः
पशुकाः । ताः सर्वा एव पश्चिमतः पृष्ठकशेरुकापिण्डैः पुरश्च तरुणास्थिभिरुप-
पशुकाख्यैः संहिताः । तासां सप्त ऊर्ध्वभागस्थाः क्रमेणाधोऽधो दीर्घतराः, ताः
पुरस्तादुपपशुकाभिः स्वीयाभिरुःफलकेन सह प्रतिबद्धाः । ता एताः मुख्या^५
नाम, ताभिरेव मुख्यतया उरःपञ्जरनिर्माणात् । अधोभागस्थाः पुनः पञ्च पशुकाः
क्रमेणाधोऽधो ह्रस्वतराः, असम्बद्धाश्च ता उरःफलकेन । ताः गौणी^६ नाम ।
तासामपि अष्टमी नवमी दशमी चेति तिस्रः स्वैः स्वैरग्रैर्यथापूर्वमुपपशुका-
भिरैव परस्परसम्बद्धाः । एकादशी द्वादशी चेति द्वे स्वाग्रवर्तिना ह्रस्वोपपशुका-
द्वयेन संहिते अपि सर्वथा विमुक्ताग्रैः^७ नाम, उपपशुकानामग्रतः सन्धानाभावात् ।

१ Gladiolus. २ Xiphoid or Ensiform Cartilage. ३ Ribs. ४ उरःपञ्जरमुरोगुहाधारणं
पञ्जराकारं वक्ष्यमाणम् तस्य वृत्तिभूतानि वेष्टनभूतानि । ५ मुख्याः पशुकाः = True Ribs.
६ गौणी पशुकाः = False Ribs. ७ Floating Ribs.

[२६श चित्रम्—पशुका]

(पुरःप्रान्तः)



(पश्चिमप्रान्तः)

इयञ्च पशुः सप्तमी वा पशुका ।
 १, मुण्डस्थं द्विधा विभक्तं स्थाल-
 कम् । २, अर्बुदम् । क, पशुका-
 कोणः । ग, ग्रीवा । प, पशुका-
 नुगा परिखा, तदाख्यसिराधमनी-
 नाडीधारणाय । ३, ४, परिखाया-
 स्तद्वयम् उत्तराधरभेदेन, पशुका-
 न्तरिकाख्यपेशीद्वयसंयोगाय । ५,
 अग्रकोटिस्थं खातमुपपशुका-
 संयोगाय ।

अथ पडिमानि प्रतिपशुकं लक्षणीयानि साधा-
 रणलिङ्गानि—मुण्डम्, अर्बुदं, ग्रीवा, कोणः,
 काण्डम्, अग्रकोटिश्चेति । (२६श चित्रम्)

मुण्डं^१ नाम पशुकायाः पश्चिमप्रान्तो वर्तुला-
 कारः । तत्र च दृश्यं स्थालकं^२ युग्मं पृष्ठकशेखरा-
 द्वय-पिण्डस्थाभ्यामर्द्धस्थालकाभ्यां सन्धानाय ।

अर्बुदं^३ नाम तत्समीपस्थं पिण्डं स्थाल-
 काङ्कितम् । तस्य कशेखरादुत्थेन स्थालकेन सन्धिः ।

ग्रीवा^४ नाम मुण्डार्बुदयोरन्तरालस्थो भागः ।

कोणो^५ नाम अवुदपुरोवर्त्तो कोणाकारः प्रदेशः ।
 तेन दृश्यते भग्नसंहितमिव पशुकाकाण्डम् ।

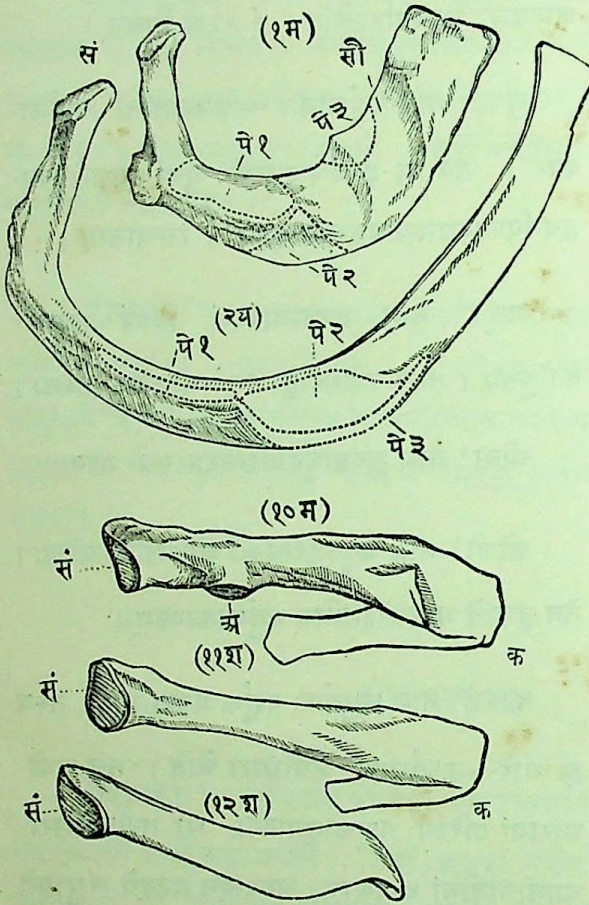
काण्डं^६ नाम धनुर्वक्रः पशुकामध्यभागः । तस्य
 द्वे धारे—ऊर्ध्वधारा अधोधारा चेति । तत्र अधो-
 धारायां परिखा पशुकानुगाख्या, सा तदाख्यसिरा-
 धमनीनाडीनां धारणाय । अस्याश्च तद्वये संयुज्यते
 पशुकान्तरिकाख्यं पेशीद्वयम् ।

अग्रकोटिर्नाम^७ पशुकायाः पुरःप्रान्त, स
 उपपशुकासंयोगाय उच्चावचखातयुतः ।

तान्येतानि साधारणलिङ्गानि तृतीयादि-नव-
 म्यन्तपशुकासु यथोक्तानि । प्रथम-द्वितीय-दश-
 मैकादशद्वादशसंख्यासु तु पशुकासु तद्वैलक्षण्यमन्ये
 च विशेषाः । तद्यथा—

१ Head. २ Circular facet or Socket. ३ Tubero-
 sity. ४ Neck ५ Angle ६ Shaft ७ Sternal end.

(२७श चित्रम् । विशिष्टपर्शुकाः ।]



२७श चित्र व्याख्या—

(१म)—प्रथमा पर्शुका । (२य)—द्वितीया ।
 (१०म)—दशमी । (११श)—एकादशी ।
 (१२श)—द्वादशी । तत्र अ—अर्बुदम् ।
 क—क्रोणः । सं, मुण्डस्थं स्थालकम् ।
 सी—सीताद्वयम् अन्नधराख्यसिराधमनी-
 धारणार्थं । पेशीनिवेशास्तु—प्रथमायां पे १,
 पर्शुकाकर्षणी मध्यमा । पे ३, पर्शुका-
 कर्षणी पुरोगा । द्वितीयायां—पे १, पर्शुका-
 कर्षणी पृष्ठगा । उभयोः पे २, पे २,
 अग्रिमरिक्तायाः मूलद्वयम् ।

प्रथमा पर्शुका ह्रस्व-
 तमा दात्रफलकाकारा ।
 च । अस्या मुण्डं क्षुद्र-
 मेकस्थालकञ्च । काण्ड-
 त्वायतमूर्ध्वाधस्तलोपल-
 क्षितञ्च । कोणस्तु ना-
 स्त्येव । ऊर्ध्वतले च सीता-
 द्वयमक्षाधराख्य-सिराधम-
 न्योर्धारणाय (२७श
 चित्रम्) । तिस्रश्चात्र
 निविशन्ते पेश्यः क्रमेण
 अग्रिमरिक्ता, पर्शुकाकर्षणी
 पुरोगा, सैव मध्यमा चेति ।

द्वितीया पर्शुका प्रथमा-
 वदेव प्रायः, दीर्घतरा च ।
 तदूर्ध्वतले निविशते पेशी-
 द्वयम् पर्शुकाकर्षणीपृष्ठगा,
 अरिक्ता चेति ।

दशमी पर्शुका तु ह्रस्वा वडिशाकारा च ।

अस्या अपि मुण्डमेकस्थालकं, कोणस्तु काण्ड-
 मध्यस्थः । एकादश्यामप्येवमर्बुदाभावश्च ।
 द्वादशी एकादशीवत् । तत्र कोणाभावश्च ।
 ता एताश्चतुर्विंशतिः पर्शुका व्याख्याताः ।

उपपर्शुकाः पुनः (२५श चित्रम्)

पर्शुकावदेव संख्यया, पर्शुकाग्रसम्बद्धा-
 स्तरुणास्थिमय्यः । तासामुरोऽस्थिषु ग्रहणम्
 प्राचां ग्रन्थेषु ।

१ दात्रं शस्यकर्तनी (Sickle) २ Subclavian Vein & Artery.

चतुर्थोऽध्यायः ।

५७

अथ उरःपञ्जरम् ।

‘उरःपञ्जरं’ नाम उरोगुहाधारणं पञ्जरमस्थिमयम् (कङ्कालचित्तद्वये दृश्यम्) । निर्मीयते च तत् पश्चिमतो द्वादशभिः पृष्ठकशेरुकाभिः, पृष्ठतः पार्श्वयोश्च तत्संलग्नाभिस्तावतीभिः पर्शुकाभिः, पुरस्तात् तु उरःफलकेन पर्शुकोपपर्शुका- सहितेन । तच्चोपरिष्ठादुन्मुक्तं कङ्काले । जीवच्छरीरे तु संवृतं मांसकलामय- प्रावरण्या । संवृतञ्च तदधस्तान्महाप्राचीराख्यपेश्या । पार्श्वयोरायतञ्च तत्- क्रमादधोऽधः । आधीयन्ते च तत्र तथासंवृते फुस्फुसद्वयं सह श्वासमार्गेण, हृदयं च स्थूलमहासिराधमन्यादिसहितम्, अन्ननलिका च । तद्विवरणं तत्तदाशय- वर्णने वक्ष्यामः ।

इति द्वितीयो मध्यकायाऽस्थिविज्ञानीयः परिच्छेदः ।

अथ तृतीयः शिरोऽस्थिविज्ञानीयः परिच्छेदः ।

इह खलु षडङ्गोऽस्मिन् शरीरे सर्वज्ञानप्राणायतनमुत्तमाङ्गं शिरः । तत्र द्वाविंशतिरस्थनाम्, अष्टाविंशतिर्वा सह कर्णास्थिषट्केन । संहितं च तदधस्तात् पृष्ठवंशेन धारणदण्डभूतेन ।

तेषाञ्च शिरोऽस्थनाम् अष्टौ शिरःसम्पुटनिर्मापकानि, चतुर्दश च मुखमण्डल- निर्मापकानि । दन्तास्तु हनुमण्डलस्थाः तदन्तर्भूताः । ते द्वाविंशत्संख्याः प्रौढानाम् । नेह ते पृथग्गण्यन्ते ३ ।

अथ शिरःसम्पुटास्थीनि ।

शिरःसम्पुटं^१ नाम सङ्गोपाङ्गमस्तुलुंगाधारभूतम् अस्थिसम्पुटम् अलावु- फलार्द्धसदृशाकारम् । तस्य चाधःसीमाद्योतकं चक्रमीदृशम् (२७श चित्रे स्पष्टम्) —

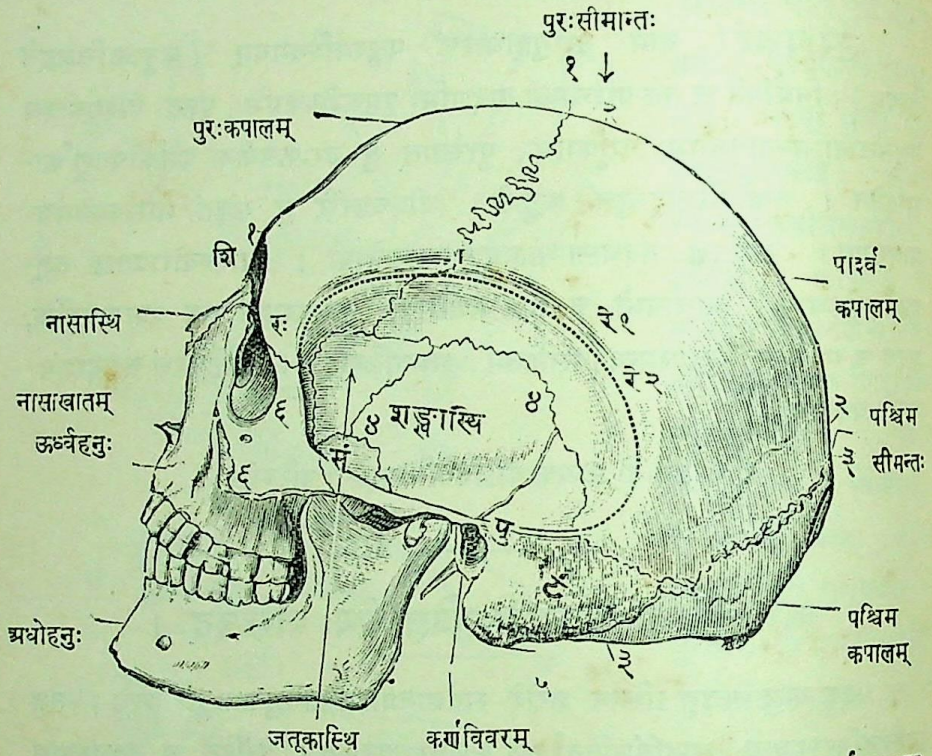
भ्रुवौ चेत् कर्णमूलाभ्यां पश्चात् केशान्तसंगते ।

तदाऽसौ सूच्यते सीमा शिरःसम्पुटनिम्नगा^२ ॥

१ Throat. २ चरक-याज्ञवल्क्यादयस्तु गणयन्त्येव तानित्युक्तपूर्वम् । ३ शिरःसम्पुटम् = Cranium. ४ अस्यह्ययमर्थः । भ्रूद्वयस्य बाह्यसीमे यदि कर्णमूलाभ्यां संयोज्येते रेखाकर्षणेन, ततश्च त एव रेखे यदि पश्चात् केशान्तं यावद् आकृष्येते, ततस्तद्रेखाद्वयसंयोगेन शिरःसम्पुटस्य निम्नसीमा दर्शिता भवति—इति ।

२८श चित्रम्—करोटिः ।

(अत्र शिरःसम्पुटस्य निम्नसीमा तैरेवाक्षरैर्दर्शिता)



चित्र-व्याख्या—१, १, इति सीमाद्वयदर्शितं पुरःकपालम् । २, २, पार्श्वकपालस्य सीमाद्वयम् । ३, ३, पश्चात्कपालम् । ४, ४, शंखास्थि । ५, तस्यैव गोस्तनांशः । ६, ६, गण्डास्थि । रे१, शंखतोरणिका उत्तरा रेखा । रे२, सैव अधरा । मध्ये शंखच्छदपेद्याः प्रभवः ।

तत्र शिरःसम्पुटनिर्मापकानि अष्टौ अस्थीनि—पुरःकपालं, पश्चिमकपालं (पश्चात्कपालं वा), पार्श्वकपाले द्वे चेति चत्वारि शिरःकपालानि । द्वे शङ्खास्थिनी शंखदेशस्थे । जतूका भर्भरकं चेति द्वे शिरः सम्पुटभूमिभूते—इति । तत्र प्रथमषट्कं स्फुटं बहिर्दृश्यम् जतूका भर्भरकं चेति द्वयं तु नासा-कण्ठादिच्छदिभूतं निगूढशरीरम् ।

करोटिस्तु समग्रमस्थिमयं शिरः सह मुखमण्डलेन । तत्र दृश्या विशेषा इहैवाऽग्रे वक्ष्यन्ते ।

अथ पश्चिमकपालम् ।

पश्चिमकपालम् (पश्चात्कपालं वा) नाम चतुषु शिरःकपालेषु प्रधानम् । तद्धि मूलबन्धनं शिरोऽस्थनाम् । सन्धीयते च तदेवाश्रित्य समग्रं शिरः पृष्ठवंशस्य चूडायाम् ।

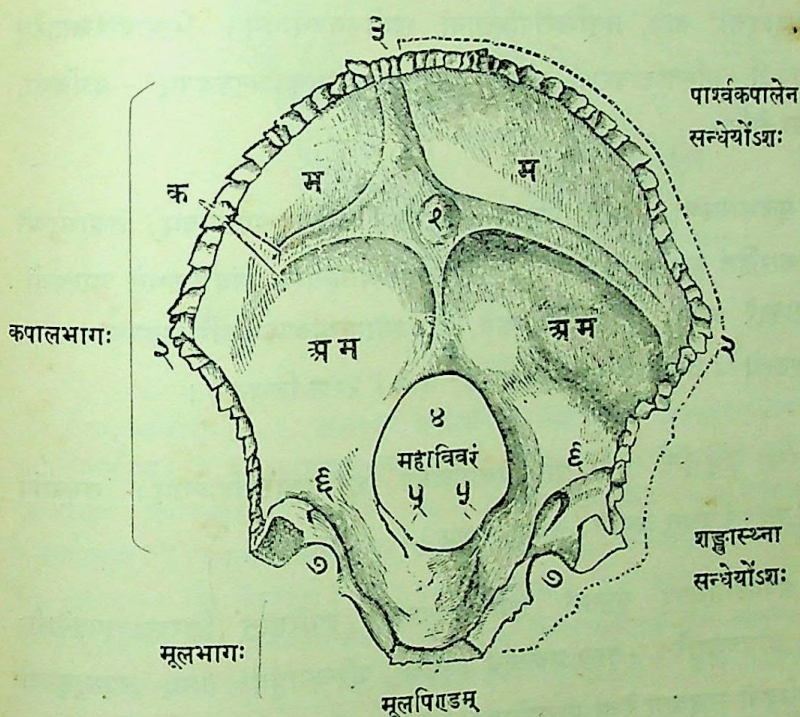
१ Occiput or Occipital Bone.

चतुर्थोऽध्यायः ।

५६

तस्य च द्वौ भागौ—कपालभागो मूलभागश्चेति । तत्र कपालभागः
सर्पफणाकार ऊर्ध्वस्थः पश्चिमः । मूलभागः सर्पग्रीवासदृशः अधःस्थः पुरोमुखः ।
संयोगेन चानयोर्निष्पद्यते महाविवरं वृत्तप्रायं सशीर्षक-सुषुम्णाकारेण धारणाय ।
(२६श।३०श चित्रयोः)

२६श चित्रम्—पश्चिमकपालस्य पुरस्तलम् ।



(जतूकास्थिशरीरेण सन्धेयम्)

चित्र-व्याख्या—१, महावर्तः । २, २, पार्श्वकोणौ । २-१-२ पार्श्विकाख्या सिरा-
परिखा । ३, पुरोधाराया मध्यबिन्दुः । ३-१-४ दीर्घिकाख्या सिरापरिखा । ४, ४, कलायकद्वयं
त्रायुसंयोगाय । ६, ६, मन्याप्रवर्द्धनके । ५, ५, मन्याखाते । क, परिखातटयोः कलासंयोगसूचकं
रेखाद्वयम् । म म—मस्तिष्कधारणाय खातद्वयम् । अम० अम—अनुमस्तिष्कपश्चिमांशधारणाय
खातद्वयम् । अत्र चेदमवधेयम् । पार्श्विकाख्यसिरापरिखातटयोः संयुज्यते जवनिका नाम दृढकला,
या मस्तिष्कानुमस्तिष्कयोर्विभजनी । ३-१-४—इत्यनुक्रमेण तु अनुदैर्घ्यमवस्थिता दात्रिका
नाम कला ।

१ Foramen Magnum.

दृश्यते च पश्चिमकपालस्य तलद्वयम्—पुरस्तलं पृष्ठतलञ्चेति । तत्र—
(क) पुरस्तलं शिरःसम्पुटाभ्यन्तरस्थम् । तत्र च—

कपालभागस्य पुरस्तलं कोरोदरं, खातचतुष्टयोपलक्षितञ्च, तत्राधीयते मस्तिष्कपश्चाद्भुजः अनुमस्तिष्कस्य पश्चिमांशश्च धम्मिल्लकसंज्ञः प्रत्येकं वाम-दक्षिणपिण्डयोर्विभक्तः (२६श चित्रम्) । गभीरञ्च तत्र सिरापरिखाचतुष्टयम् स्वस्तिकाकारं पूर्वोक्तखातचतुष्टयविभजनम् । स्वस्तिकमध्ये च तत्केन्द्रभूतः प्रदेशो महावर्त्ती^१ नाम, तत्सिरापरिखानां सम्मेलनस्थानम् । सिरापरिखातद्वेषु च संयुज्यन्ते 'मस्तिष्कावरणो' संज्ञाया दृढकलायाः आयतखण्डद्वयम्^२—दात्रिका, जवनिका चेति ।

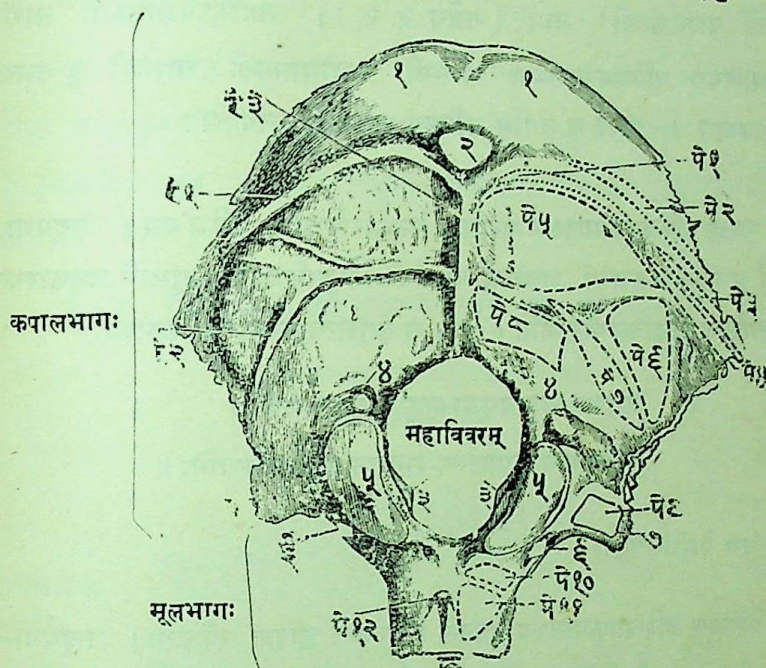
मूलभागस्य^३ (२८श चित्रम्) पुरस्तलं तु ईषत्खातप्रायम्, तत्राधीयते धम्मिल्लकसहितं सुषुम्नाशीर्षकम्^४ । कपाल-मूलभागयोश्च संयोगस्थले पार्श्वयो-रर्द्धचन्द्राकारे खाते^५ मन्याखाते नाम, ते अनुमन्याख्यस्थूलसिराद्वयधारणाय । तदुपकण्ठस्थे च प्रवर्द्धनके मन्याप्रवर्द्धनके^६ नाम (२९श चित्रम्) ।

(ख) पृष्ठतलं पुनः पश्चिमकपालस्य शिरःसम्पुटवह्निस्थम् । तस्यापि भागद्वयं पूर्ववत् पृथग् वर्ण्यते (३०श चित्रम्) । तत्र —

कपालभागस्य पृष्ठतलं कूर्मपृष्ठाकारम्, उपरिष्ठात् शिरश्छदाख्यपेशी-संवृतञ्च जीवच्छरीरे । तस्य मध्यस्थ उत्सेधः पश्चिमार्जुदं^७ नाम, तदानुपूर्व्या चाधोलम्बिनी समुन्नता रेखा मध्यालिका^८ नाम, तयोः संयुज्यते ग्रीवाधराख्या^९ स्नायुरज्जुः । उभयतश्च मध्यालिकातो वहिर्गते द्वे द्वे तोरणाकारे रेखे, तत्र ऊर्ध्वस्थे रेखे उत्तरतोरणिके^{१०} नाम, अधःस्थे तु अधरतोरणिके^{११} नाम ।

१ Two Longitudinal and Two Lateral Sinuses. २ Torcular Herophilli.
३ Falx Cerebri and Tentorium Cerebelli. ४ Basilar Portion. ५ Medulla Oblongata. ६ Jugular Fossae. ७ Jugular Veins. ८ Jugular Processes.
९ Ext. Occipital Protuberance. १० Ext. Occipital Crest. ११ Ligamentum Nuchae. १२ Superior Curved lines, १३ Inferior Curved lines.

[३०श चित्रम्—पश्चिमकपालस्य पृष्ठतलम्]



चित्र-व्याख्या—१, १, पृष्ठतलस्य कूर्मपृष्ठनिभो मसृणभागः शिरश्छदाख्यपेश्या संवृतः । २, पश्चिमावुदम् । ३, ३, कलायकद्वयं स्नायुसंयोगि । ४, ४, मूलकोटिपश्चिमगं रन्ध्रद्वयम् । ५, ५, मूलकोटिद्वयं चूडावलयास्थि सन्ध्यायि । ६, ६, तत्पुरोगं रन्ध्रद्वयम् । ७, ७, मन्याप्रबद्धनके । ८ मूलपिण्डम् । ९, ९, उत्तरतोरणिका । १०, १०, अधस्तोरणिका । ११, पश्चिमालिका । पेशीनिवेशास्तु— पे १, पृष्ठच्छदा । पे २, शिरश्छदा । पे ३, उरःकर्णमूलिका । पे ४, शिरोप्रोवविवर्त्तनी । पे ५, शिरोप्रीवपृष्ठिका । पे ६, उत्तरतिरश्चीना । पे ७, पे ८, शिरःपृष्ठदण्डिका गुर्वी, लघ्वी च । पे ९, शिरःपार्श्वदण्डिका । पे १०, पे ११, शिरःपूर्वदण्डिका लघ्वी गुर्वी च । पे १२, उत्तरा कण्ठसङ्कोचनी ।

मूलभागस्य पृष्ठतले तूभयतः शिम्बीबीजाकारौ उत्सेधौ मूलकोटिसंज्ञौ^१, तयोश्चूडावलयाख्यकशेरुकाया उपरिष्ठाभ्यां स्थालकाभ्यां सन्धिः । तदुत्संगयोश्चान्तः कलायके मध्यरज्जुकाख्यस्नायोः प्रान्तद्वयसंयोगाय । मध्ये च मूलपिण्डस्य पृष्ठतः कलायकम् उत्तरायाः कण्ठसंकोचनी पेश्याः संयोगाय । तदुपरिष्ठाच्च द्वौ द्वौ रन्ध्रमार्गौ^२ मूलकोट्योः पुरः पश्चाच्च । तत् पुरोवर्त्ति रन्ध्रमार्गद्वयं जिह्वा-मूलिन्योर्नाड्योर्निर्गमाय । पश्चिमं रन्ध्रद्वयं तु सिरापरिवाहिकानिर्गमाय ।

१ Occipital Condyles. २ Tubercles. ३ Check Ligaments. ४ Anterior and Posterior Condyloid Foramina.

धाराः पुनः कपालभागस्यातिदन्तुराः (२६श चित्रम्) । तत्पार्श्ववर्त्तिनौ च कोणौ पार्श्वकोणौ नाम (तत्रैव २, २,) । तयोर्द्वर्धभागस्थौ धारांशौ पार्श्वकपालयोः पश्चिमधाराभ्यां सन्धेयौ, अधोभागस्थौ धारांशौ तु उभयतः शङ्कास्थिभ्याम् । मध्ये च तयोर्मूलपिण्डं जतूकास्थिसंयोगि ।

एवञ्च पश्चिमकपालस्य सन्धानं षड्भिरस्थिभिः परिज्ञेयम् । तद्यथा— उत्तरार्द्धे पार्श्वकपालाभ्यां, अधरार्द्धे पार्श्वयोः शङ्कास्थिभ्यां, मूलाग्रे जतूकास्थिना, मूलकोट्योश्च चूडावल्यास्थनेति । एष च तत्सन्धानस्मारकः श्लोकः—

जतूक^१-चूडावल्या-शङ्कापार्श्वकपालकैः ।

पश्चिमस्य कपालस्य सन्धानं षड्भिरस्थिभिः ॥

अथ पेशीनिवेशाः—

पेश्यश्च पश्चिमकपालस्य पृष्ठतले संयुज्यन्ते द्वादश एकैकतः । तद्यथा— उत्तरतोरणिकोपकण्ठे तिस्रः—शिरश्छदा, पृष्ठच्छदा, उरःकर्णमूलिका चेति ; तोरणिकयोरन्तराले तिस्रः—शिरोग्रीवपृष्ठिका, उत्तरतिरश्चीना, शिरोग्रीवविवर्त्तनी उत्तरा चेति ; अधरतोरणिकाधस्तिस्रः—शिरःपृष्ठदण्डिका लघ्वी, सैव गुर्वी, शिरःपार्श्वदण्डिका चेति ; मूलभागे च तिस्रः—शिरःपूर्वदण्डिका लघ्वी गुर्वी च, उत्तरा कण्ठसंकोचनी चेति । (तत्संस्थानानि ३० चित्रे द्रष्टव्यानि) ।

अथ पार्श्वकपालास्थिनी ।

पार्श्वकपाले नाम शिरःपार्श्वस्थे कपालास्थिना चतुरस्रप्राये पुरः पश्चिमकपालयोर्मध्यस्थे । ताभ्यां मध्यरेखासंहिताभ्यां निर्मायते शिरःसम्पुटस्य छदिभागः, पार्श्वभागौ च भूम्ना ।

१ Lateral Angles. २ जतूकं जतूकास्थि । नामैकदेश ग्रहणे नाम ग्रहणम् ।
३ छदि=Roof.

चतुर्थोऽध्यायः ।

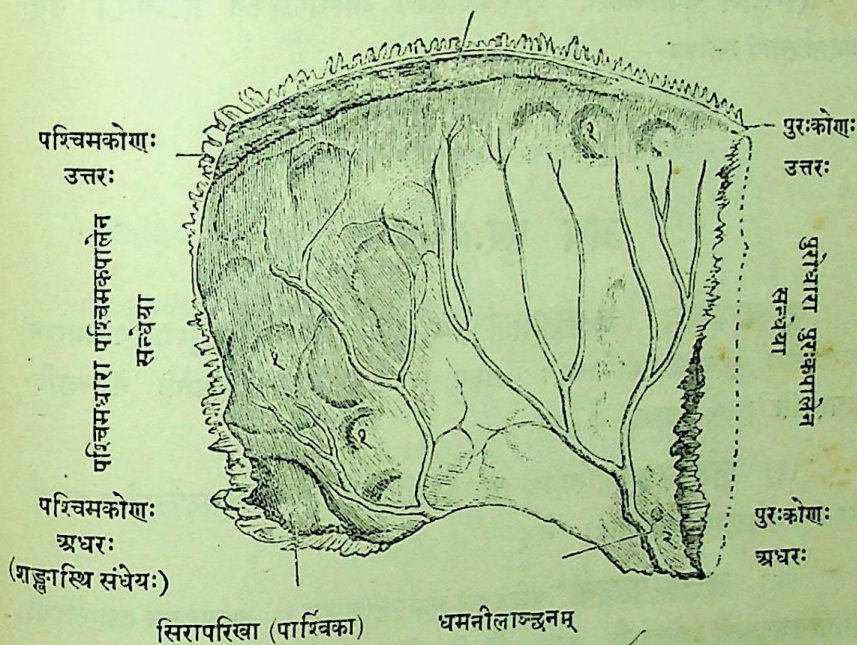
६३

एकैकस्य च पार्श्वकपालस्य द्वे तले—वहिस्तलमन्तस्तलञ्चेति । चतस्रश्च धाराः, चत्वारश्च कोणाः ।

तत्र वहिस्तलं कूर्मपृष्ठप्रायं (२८श चित्रम्), तत्र च पिण्डाकार इत्सेधः पार्श्वकुम्भाख्यः^१ । द्वे च धनुर्वक्त्रे रेखे शङ्खतोरणिका^२ उत्तरा अधरा चेति नामतः । तत्र अधरायाः शङ्खतोरणिकायाः क्रोडदेशः शङ्खच्छदाख्यपेश्या प्रभवः ।

३१श चित्रम्—पार्श्वकपालस्य आभ्यन्तरतलम् ।

ऊर्ध्वधारा—इतरपार्श्वकपालेन सन्धेया
सिरापखिा दीर्विका



अधोधारा—शङ्खास्थना सन्धेया जतुकास्थना सन्धेयांशः

[१, १, १, अङ्किताः प्रदेशाः कलाग्रन्थिखातानि । द्रष्टव्यानि चात्र धमनीप्रतानलाञ्छनानि ।]

अन्तस्तलं कोरोदरमुच्चावचश्च । तत्र स्फुटानि मस्तिष्ककलापोषण्या मध्यमधमन्याः प्रतानलाञ्छनानि, च कचित् कचित् खातानि तस्या एव कलाया ग्रन्थिवन्धननिवेशाय (३०श चित्रे १,) ।

१ Partiel Eminences. Superior and Inferior Temporal Ridges.

धाराः पुनः पार्श्वकपालस्य चतस्रो दन्तुराग्राः,—क्रमादुत्तरा, अधरा, पुरोगा, पश्चिमगा चेति । तत्र उत्तरा इतरेण पार्श्वकपालेन सन्धेया, अधरा शङ्खास्थना जतूकास्थना च, पुरोगा पुरःकपालेन, पश्चिमगा पश्चिमकपालेन ।

कोणाः पुनरस्य चत्वारः । तत्र पुरःकोणद्वयमूर्ध्वाधःस्थं क्रमादुत्तराधरसंज्ञं, पश्चिमकोणद्वयञ्च तथैव । तत्र पुरःपश्चिमौ कोणावूर्ध्ववर्तिनौ आजन्मनो वर्षं यावत् कलामयौ स्तः, ततश्च दृश्यम् स्तनन्धयशिशोः कोमलं तालकद्वयं शिरसि पुरः पश्चादवस्थितम् । अधरः पुरःकोणस्तु धमनीखाताङ्कितो जतूकास्थना सन्धेयः । अधरः पश्चिमकोणः पुनः पार्श्वकाख्यसिरापरिख्याऽङ्कितः सन्धीयते शङ्खास्थना ।

सन्धानं चैवमेकैकस्य पार्श्वकपालस्य अस्थिपञ्चकेन द्रष्टव्यम् । तत् संग्रहार्थश्चायं श्लोकः—

पुरःपश्चात्कपालाभ्यां शङ्खास्थना च जतूकया ।

सन्धिः पार्श्वकपालस्य स्वनाम्ना^३ चेति पञ्चभिः ॥

अथ पुरःकपालम् ।

पुरःकपालम् (अग्रकपालं) वा नाम शिरःसम्पुटपुरोभागनिर्माणकं कपालास्थि बृहन्मुक्तागृहाकारम् । तस्य च द्वावंशौ, ललाटभागो नेत्रच्छदि-भागश्चेति (३२ चित्रम्) । तत्र—

(१) ललाटभागस्त्रिभिः फलकैर्निर्मितः,—मध्ये ललाटफलकेन पार्श्वयोश्च पार्श्वफलकाभ्यामिति । तेषु—

(क) ललाटफलकं^१ बहिस्तले कूर्मपृष्ठाकारम् । उभयतश्च ततोत्सेधौ कुम्भतलवदुन्नतौ अग्रकुम्भौ^२ नाम, तौ मेधाविनामत्युन्नतौ प्रायः, अल्पमेधसान्तु स्तोकोन्नतौ । तयोर्मध्ये नासामूलगं स्थानं कूर्चकं^३, भ्रूमध्यं वा नाम, तत्र स्थप-न्याख्यं मर्मैति प्राञ्चः । तदानुपूर्व्या चोर्ध्वगता किञ्चिन्मातृदृश्या रेखा पुरःकपालार्धयोरावाह्यं पृथगवस्थितयोः संयोगसूचिका, सेयं गूढसीमन्तिका^४ नाम ।

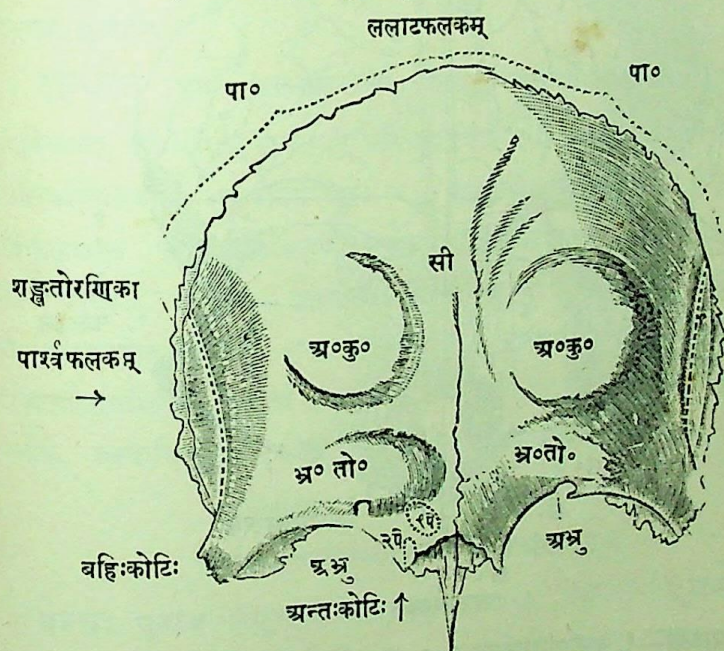
१ Anterior and Posterior Fontanelles. २ स्वनाम्ना इतरपार्श्वकपालेन । ३ Frontal Bone. ४ Frontal Portion. ५ Frontal Flate. ६ Frontal Eminences. ७ Glabella. “कूर्चमस्त्री भ्रूवोर्मध्यम्” इत्यमरः । ८ Metopic Suture. प्रौढस्य पुरःकपाले तु नेत्रं दृश्या ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

६५

उभयतश्चात् भ्रूवोरनुक्रमेण तोरणाकारावुत्सेधौ भ्रूतोरणिकाख्यौ । तयोरेकैकस्या द्वे कोटी वहिःकोटिरन्तःकोटिश्चेति, मध्यतश्च छिद्रं (कोटरमातं वा सूक्ष्मम्) अधिभ्रुवं^१ नाम (३२श चित्रम्) । तत्र बाह्यकोटिरपाङ्गदेशस्था गण्डास्थि-सन्धायिनी, अन्तःकोटिस्तु नासामूलस्था नासास्थिसन्धायिनी । छिद्रं पुनरधिभ्रु-वाख्यं तदाख्यसिरा-ध्रमनो-नाडीनां^२ निर्गमाय । भ्रूतोरणिकयोश्च मध्ये पश्चात् ललारान्तर्निगूढानि कोटराणि ललाटकोटराणि^३ नाम, तेषां नासागुहाभ्यामनुबन्धः सूक्ष्मरन्ध्रमार्गाभ्याम् । तानि जीवच्छरीरे श्लेष्मलकलावृतानि ।

३२श चित्रम्—पुरःकपालस्य वहिस्तलम् ।



अग्रकण्ठकम्

[चित्रव्याख्या—पा०—पार्श्वकपालेन सन्धेयांशः । सी०—गूढसीमन्तिका (बाल्ये दृश्या) । अ०कु०—अग्रकुम्भः । भ्र० तो०—भ्रूतोरणिका । अश्रु—अधिभ्रुवं छिद्रम् ।]

अन्तस्तलं पुनर्ललाटफलकस्य (३३श चित्रम्) कोरोदरमुपलक्षितञ्च यतस्ततः कलाग्रन्थिखातैर्ध्रमनीप्रतानांकैश्च । मध्ये चास्य सिरापरिखा, यस्यास्तटयोः संयुज्यते वराशिकाख्यकलाया दातिकाख्यो^४ मध्यभागः ।

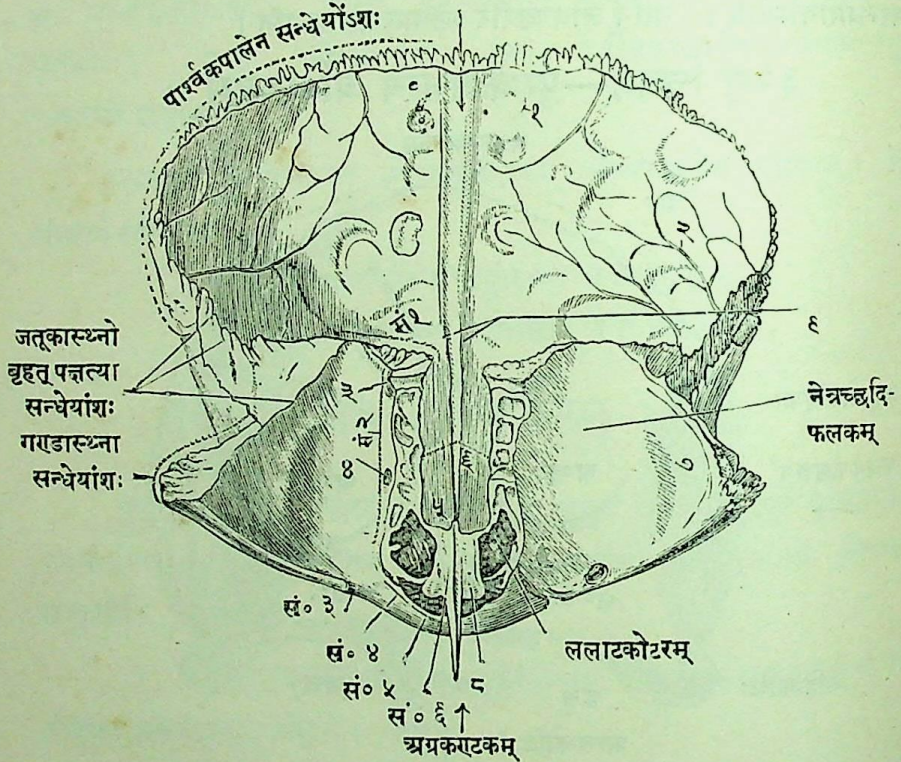
१ Superciliary ridges. २ External Angular Process. ३ Internal Angular Process. ४ Supra-orbital Foramen. ५ Supra-orbital Vein, Artery and Nerve. ६ Frontal Sinuses. ७ Depressions for Pacchionian bodies. ८ Falx Cerebri.

(ख) पार्श्वफलके^१ नाम पुरःकपालस्य ललाटफलकमुभयतः स्थिते ईषत्खातोदरे फलके, ते शङ्खच्छदाख्यपेश्योः प्रभवभूते । तयोरुर्ध्वसीमोर्दृश्ये धनुर्वके रेखे शङ्खतोरणिके^२ नाम, ताभ्यामपि तयोरेव पेश्योः प्रभवः (३३श चित्रम्) ।

३३श चित्रम्—पुरःकपालस्य अन्तस्तलम् ।

(प्रदर्शनसौकर्याय उत्तानमधोमुखञ्च कृत्वा दर्शितम्)

दीर्घिकाख्या सिरापरिखा



[चित्र-व्याख्या—१, कलाग्रन्थिखातम् । २, धमनीप्रतानांकाः । ३, ४, भार्भरकोटराणि । ५, महापरिखा । ६, तस्यास्तटद्वयम् । ७, अश्रुग्रन्थिखातम् । ८, नासागुहायाश्छदिनिर्माणकं क्षुद्रफलकम् । ९, सिरापरिखायास्तटद्वयम् । सं० १—जतूकास्थनो लघुपक्षत्या सन्धेयांशः । सं० २, भार्भरकपाश्वरेण सन्धेयांशः । सं० ३, अश्रुपीठास्थना सन्धेयांशः । सं० ४, ऊर्ध्वहन्वस्थनो नासाकूटेन सन्धेयांशः । सं० ५, नासास्थना सन्धेयांशः । सं० ६, भार्भरकस्य मध्यफलकेन सन्धेयांशः ।]

(२) नेत्रच्छदिभागः पुनः पुरःकपालस्य निर्मीयते नेत्रच्छदि-फलकाभ्यां, महापरिखा च सुषिरतटद्वयवती तन्मध्यवर्त्तिनी । तत्र—

१ Temporal Plates, २ Temporal Ridges.

नेत्रच्छदिफलके^१ नाम त्रिकोणप्राये ईपत्कोरोदरे मसृणास्थिफलके, ते नेत्रगुहयोश्छदिभूते । एकैकस्य च फलकस्य बहिरंशे ईपदालक्ष्यं खातमश्रु-
ग्रन्थिधारणाय^२ । (३३ चित्रम्)

मध्ये चानयोः फलकयोः परिखा-- महापरिखा^३ नाम । सा करोटी स्व-
तटद्वयसंहितस्य ऋर्भरकास्थनश्चालनीपटलाख्येन भागेनापूर्यते । तटद्वये चास्याः
कोटराणि ऋर्भरास्थनोऽभ्यन्तरस्थैः कोटरैरनुपङ्गीणि । तान्यपि जीवच्छरीरे
श्लेष्मलकलावृतानि । पुरस्ताच्च महापरिखायाः क्षुद्रमस्थिफलकमेकमेकैकतो
नासागुहाच्छदिनिर्मापकम् । तन्मध्यतश्च अग्रकण्टकं^४, तत्पुरोभागे नासास्थिभ्यां,
पश्चिमतश्च ऋर्भरास्थनो मध्यफलकेन सन्धेयम् । तदुभयतश्च ललाट-
कोटराणां द्वाराणि ।

सन्धानं पुनः पुरःकपालस्य द्वादशभिरस्थिभिर्द्रष्टव्यम् । तद्यथा—
महापरिखाया बहिःसीम्नि सन्धीयते अस्थिसप्तकम् यथा—पुरोऽर्द्धे नासास्थिद्वयम्,
ऊर्ध्वहन्वस्थिद्वयम्, अश्रुपीठास्थिद्वयं च ; पश्चार्द्धे ऋर्भरकास्थि चेति । नेत्र-
च्छदिफलकस्य पश्चिमान्तःकोणे एकैकतो जतूकास्थनः क्षुद्रपक्षतिः, तद्वहिः-
सीम्नि पश्चार्द्धे तस्यैव बृहत्पक्षतिरिति चतुर्था सन्धीयते जतूकास्थि ।
भ्रूतोरणिकयोर्बहिःकोट्योः गण्डास्थिद्वयम् । ललाटफलकस्य पश्चिमधारायां
पार्श्वकपालद्वयमिति (दृश्यतां ३३श्च चित्रव्याख्या) । तेषु जतूका ऋर्भरकश्चेति
द्वे एकैके, अन्यानि युग्मरूपाणि । अत्रायं सन्धिस्मारकः श्लोकः—

युग्मैर्नासाऽश्रु-गण्डोर्ध्वहनु-पार्श्वकपालकैः ।

जतूका-ऋर्भराभ्याञ्च बद्धमग्रकपालकम् ॥

पेश्यः पुनरत्र संयुज्यन्ते तिस्रो युग्मरूपाः । तद्यथा—भ्रूमध्यमुभयतो
भ्रूसंकोचनीद्वयं नेत्रनिमीलनीद्वयं च, शङ्खतोरणिकयोस्तद्वयश्च शङ्खच्छदे
पेश्यौ इति ।

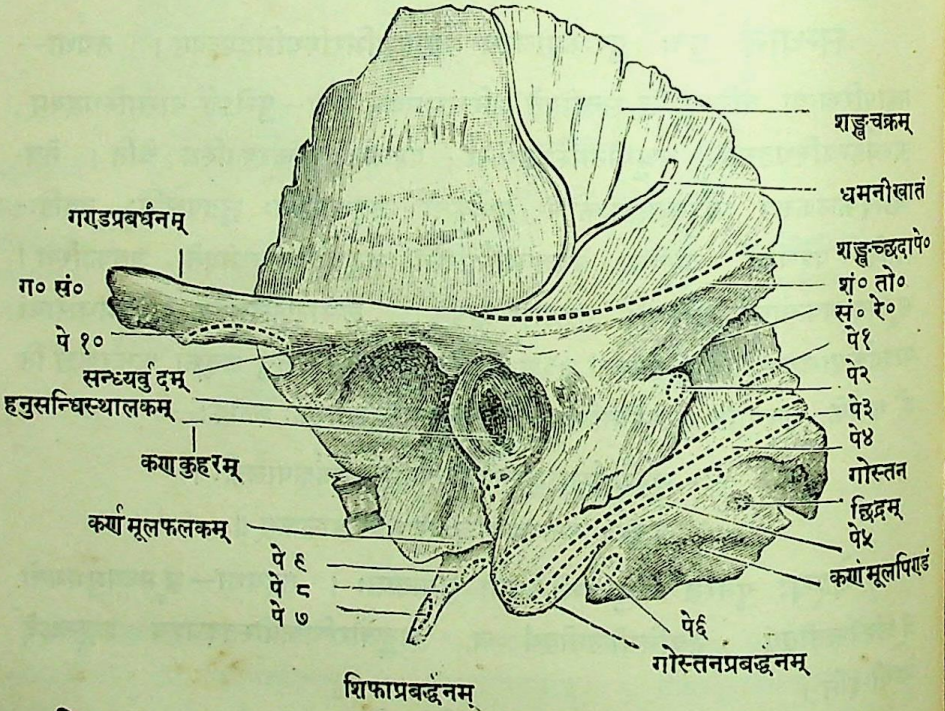
अथ शङ्खास्थिनी ।

शङ्खास्थिनी^५ द्वे शङ्खदेशस्थे पार्श्वकपालयोरधःसीमने । एकैकस्य च
शङ्खास्थनद्वयो भागाः कल्यन्ते वर्णनासौकर्याय—शङ्खचक्रं, कर्णमूलपिण्डम्,
अश्मकूटश्चेति । तत्र—

१ Orbital Plates. २ Lachrymal Fossa. ३ Ethmoid Notch. ४ Nasal Spine.
५ Temporal Bones.

(१) शंखचक्रं^१ नाम (३४श चित्रम्) शङ्खदेशनिर्माणकं चक्रप्रायमस्थि-फलकमूर्ध्वगम् । तस्य बहिस्तलं मसृणं धमनीखाताङ्कितञ्च । तश्चोत्थितं दीर्घ-मप्रतोमुखं प्रवर्द्धनकं गण्डास्थिसन्धायि गण्डप्रवर्द्धनकं^२ नाम, तस्य द्वे धारे, उत्तरा अधरा चेति । ततोत्तरधारायां संयुज्यते शङ्खावरणी नाम प्रावरणी^३ । अधरधारायां पुनरधस्तात् पुरोभागे अर्बुदं हनुसन्धिपुरःस्थं सन्ध्यर्बुदं^४ नाम । तत्पश्चात् हनुसन्धिस्थालकं^५ हनुमुण्डधारणाय । तत्सन्निहितं च पश्चात् कर्णकुहरं^६ कर्णगुहाया बहिर्द्वारभूतम् । कर्णकुहरपरिधौ च कर्णशङ्कुलीनिर्माणकाणां तरुणास्थनां संयोगः । मध्ये च स्थालक-कुहरयोस्त्रिकोणमस्थिफलकं कर्णमूल-

३४श चित्रम्—शंखास्थि (बहिस्तलम्) ।



चित्र-व्याख्या । अत्रताः संयुज्यन्ते पेश्यः यथा—पे१, शिरच्छदा । पे२, कर्णपूर्विका । पे३, उरःकर्णमूलिका । पे४, शिरोघ्रीवविवर्तनी उत्तरा । पे५, पृष्ठदण्डिकाशिरोयुजा । पे६, द्विगुम्फिका । पे७, शिफासनिता । पे८, शिफाकण्ठिका । पे९, शिफागलान्तरीया । पे१०, हनुच्छ-कषणी । गण० सं०—गण्डास्थना सन्धेयांशः । सं० रे०—शङ्खचक्र-कर्णमूलपिण्डयोः संयोगाङ्क रेखा । शं० तो० शङ्खतोरणिका रेखा ।

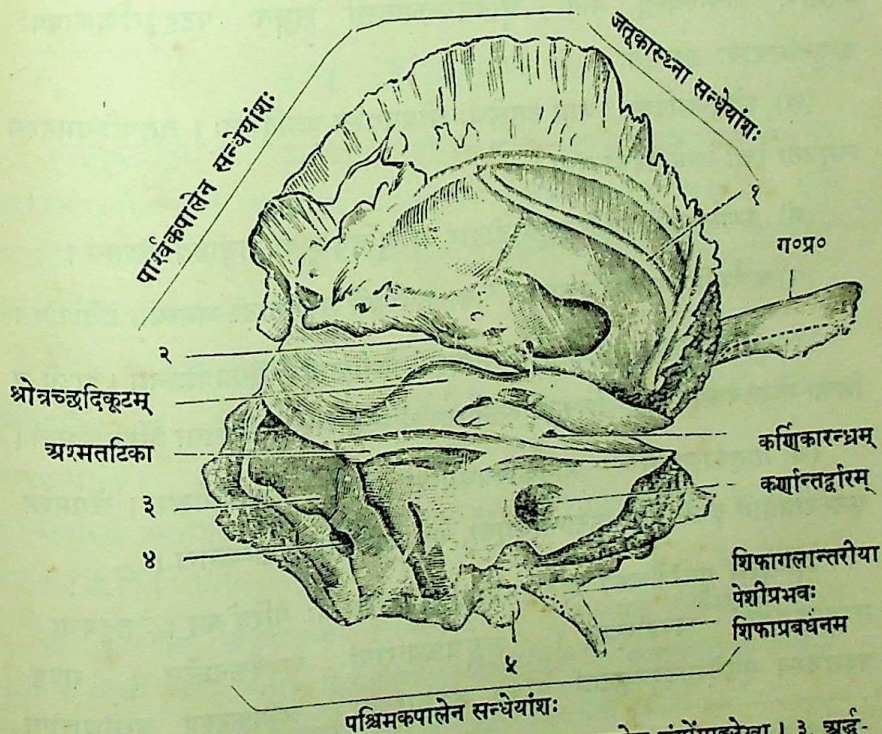
१ Squamous Portion. २ Zygomatic Process. ३ Temporal Fascia. ४ Articular Tubercle. ५ Glenoid Fossa, ६ Ext. Auditory Meatus. ७ Tympanic Plate.

फलकं नाम, तत् कर्णमूलिकाख्यस्य लालाग्रन्थेः^१ प्रवन्धनस्थानम् । गण्डप्रवर्द्धनस्य च पश्चिमधारा शङ्खतोरणिकाख्यया^२ समुन्नतरेखया सानुबन्धा, तस्याश्चाधस्ताद् दृश्या शङ्ख-कर्णमूलपिण्डयोः संयोगाङ्कुरेखा (३५ चित्रे सं० रे०) ।

अन्तस्तलन्तु शङ्खचक्रस्य मस्तिकमध्यपिण्डधारणाय किञ्चित्खातोदरं धमनीखाताङ्कुरं प्रतनुधारं महामीनशल्कखंस्थानञ्च । सन्धीयते च तस्योर्ध्वधारा पार्श्वकपालेन जतूकास्थना च पुरस्तात् । (३५ चित्रम्)

(२) कर्णमूलपिण्डं^३ नाम कर्णमूलस्थमस्थिपिण्डं गोस्तनकाख्येन^४ प्रवर्द्धनकेनोपलक्षितम् । प्रवर्द्धनञ्चैदमधोमुखम् अन्तःशुषिरञ्च । कोटराणि च तदन्तःस्थानि कर्णान्तरीयगुह्या सानुबन्धानि गोस्तनकोटराणि^५ नाम । आन्तरतले

३५ चित्रम्—शंखास्थि (अन्तस्तलम्)



चित् व्याख्या—१, धमनीप्रतानांकः । २, शङ्खाचक्रस्य अश्मकूटेन संयोगाङ्कुरेखा । ३, अर्द्ध-चन्द्रिकाख्या सिरापरिखा । ४, गोस्तनच्छिद्रम् । ५, गोस्तनप्रवर्द्धनम् । गण्डप्र०—गण्डप्रवर्द्धनम् ।

१ Parotid Gland. २ Temporal Ridge. ३ Mastoid Portion. ४ Mastoid Process. ५ Mastoid cells.

चास्य अर्धचन्द्रिका नाम सिरापरिखा^१ पार्श्विकाख्यसिरापरिख्या सानुबन्धा, छिद्रञ्च गोस्तनछिद्रं^२ नाम सिरापरिवाहिकानिर्गमाय ।

(३) अश्मकूटं^३ नाम पाषाणवदतिघनसङ्घातं कूटवच्चतुर्धारमस्थिपिण्डं शिरःसम्पुटभूमेर्मध्यभागे तिर्यक्प्रविष्टम् । तस्य चोर्ध्वदेशः शैलसानुसदृशः शिरःसम्पुटभूमिनिर्मापकतया मस्तिष्कधारणसहायः, अधोदेशः कर्णपीठ-कण्ठच्छदि-निर्मापकः । निगूढानि च तदभ्यन्तरतस्तीणि कर्णास्थीनि सूक्ष्मानि, श्रुति-यन्त्राभ्यन्तरम् । तद्विवरणमिन्द्रियखण्डे वर्णनोपमम् । अधोधारा चास्य उच्चावचा पश्चिमकपालेन सन्धेया ।

एतानि चात्र विशेषतो लक्षणीयानि (३१ श चित्रम्) ।

(क) शङ्खचक्राश्मकूटयोः संयोगाङ्कुरेखा^४ अश्मकूटस्योर्ध्वसीमस्था । तदुपकण्ठे च कूटाग्रभागसन्निधौ रन्ध्रमार्गद्वयम्, ततोर्ध्वस्थो मार्गः पटहोत्तंसिन्याख्यपेश्याः^५ प्रवेशाय, अधःस्थस्तु मार्गः श्रुतिमध्यस्त्रोतसा सङ्गतः पटहपूरणिकाख्य^६-वायुनलिकाया द्वारभूतः ।

(ख) श्रोत्रच्छदिकूटं^७ नाम उत्सेधः श्रोत्रपथस्य च्छदिभूतः । तत्पश्चिमतश्च समुन्नता रेखा अश्मतटिका नाम ।

(ग) कर्णान्तर्द्वारं^८ श्रुतिवक्त्रनाडीद्वारं वा श्रुतिवक्त्राख्यनाडीद्वयप्रवेशाय ।

(घ) कर्णभूमिरन्ध्रं^९ कर्णिकारन्ध्रं^९ वा कर्णभूमौ सूक्ष्मनाडी-धमनयोः प्रवेशाय ।

(ङ) शिफाप्रवर्द्धनकं^{१०} शिफाकारमधोमुखं पेशीस्त्रायुसंयोगप्रयोजनम् । मध्ये च शिफा-गोस्तनकयोश्छिद्रं^{११} शिफागोस्तनान्तरीयं नाम, तद् वक्त्रनाड्या वह्निर्निर्गमाय ।

(च) मातृकासुरङ्गा^{१२} -- मातृकाख्यधमन्या धारणाय रन्ध्रमार्गरूपा । सेयमश्म-कूटस्याग्रभागे दृष्टैकद्वारा कूटान्तर्निगूढा, अधोधारायाश्च दृष्टान्यद्वारा ।

सन्धानं पुनरेकैकस्य शङ्खास्थनः पञ्चभिरस्थिभिः परिज्ञेयम् । तद्यथा— गण्डप्रवर्द्धनाग्रे गण्डास्थना । शङ्खचक्रधारायां पार्श्वकपालेन । गण्ड-प्रवर्द्धनस्य मूलदेशादश्मकूटाग्रं यावत् जतूकास्थना । अश्मकूटस्य अधोधारायां

१ Sigmoid Groove. २ Mastoid Foramen. ३ Petrous Portion. ४ Petro-
Squamous Suture. ५ Tensor Tympani. ६ Eustachian tube. ७ Eminentia
Arcuata. ८ Internal Auditory Meatus. ९ Hiatus Canalis Facialis. १० Styloid
Process. ११ Stylo-mastoid Foramen. १२ Carotid Canal.

पश्चिमकपालेन । हनुसन्धिस्थालके तु जीवच्छरीरे सन्धीयते अधोहन्वस्थिमुण्डम्
स्पर्शमात्रेण । एष चात्र सन्धिस्मारकः श्लोकः ।

पार्श्व-पश्चात्कपालाभ्यां गण्डास्थना च जतूकया ।

वद्धं, स्पृष्टमधोहन्वां, शंखं स्यात् पञ्चसन्धिकम् ॥

पेश्यः पुनः संयुज्यन्ते एकैकस्मिन् शङ्खास्थि पञ्चदश । तद्यथा— शङ्खचक्र-
वहिस्तले शङ्खच्छदा, गण्डप्रवर्द्धने गण्डमूलिनी—इति द्वे । कर्णमूलपिण्डस्य
वहिस्तले ललाटसङ्कोचनी, उरःकर्णमूलिका, शिरोग्रीवविवर्त्तनी, पृष्ठपिण्डिका
शिरोयुजा, द्विगुम्फिका, कर्णपृष्ठिका चेति षट् । शिफाप्रवर्द्धनके शिफागलान्तरीया,
शिफाकण्ठिका, शिफारसनिका चेति तिस्रः । अश्मकूटभागे तालूत्तोलनी,
पटहोत्तंसनी, तालूत्तंसनी, कर्णान्तरिका चेति चतस्रः । एवं साकल्येन
पञ्चदश (तेषां संयोगस्थानानि ३४ चित्रे द्रष्टव्यानि) ।

अथ जतूकास्थि ।

जतूकास्थिः (जतुकास्थि वा) नाम शिरःसम्पुटमध्यभूमिनिर्माणकं
जतूकाकारमस्थिखण्डं सकलशिरःकपालकेन्द्रकीलभूतम् (३६श चित्रम्) । तस्य
चत्वारो भागाः—मध्ये जतूकाशरीरम्, पार्श्वयोर्बृहत्पक्षतिद्वयं तदुत्सङ्गे
लघुपक्षतिद्वयं, अधस्ताच्चरणद्वयमिति । तत्र—

(१) जतूकाशरीरं^१ नाम मध्यस्थं पिण्डमुच्चावचं शून्यगर्भञ्च ।
गर्भस्थानि चास्य कोटराणि जतूकाकोटराणि^२ नाम, तानि भ्रूरास्थिकोटरैः
सानुबन्धानि ।

अथास्य चत्वारि तलानि द्रष्टव्यानि—पुरस्तलं, पश्चमतलम्, ऊर्ध्वतलम्,
अधस्तलञ्चेति । तत्र—

(क) पुरस्तलं भ्रूरास्थनः पार्श्वपिण्डाभ्यां सन्धिमत्, मध्यतश्च तस्य
समुन्नता रेखा भ्रूरास्थनो मध्यफलकेन सन्धायिनी । चूड़ायाश्चास्य प्रवर्द्धनं
त्रिकोणकण्टकं^३ नाम, तत् भ्रूरास्थिच्छदिभूतेन फलकेन सन्ध्यर्थम् ।

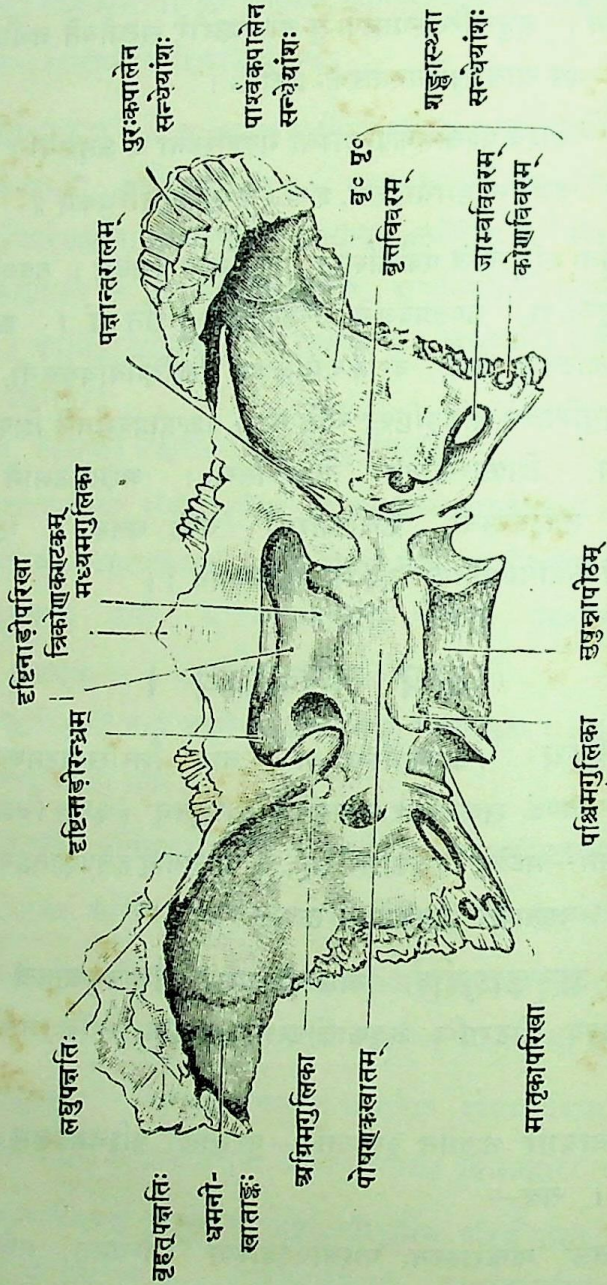
(ख) पश्चमतलं चतुरस्रं पश्चिमकपालमूलभागेन सन्धेयं, कचिदेकीभूतं वा ।

१ Sphenoid Bone. जतूका चमचटिका । जतुका, जतूका चेति द्विविधमपि रूपं साधु ।

२ Body of the Sphenoid. ३ Sphenoidal Sinuses. ४ Ethmoidal Spine.

३६श चित्रम्—जतूकास्थनः ऊर्ध्वतलम् ।

(स्वाभाविकायतनम्)



पश्चिमकपालेन सन्धेयांशः
वृ० पृ० वृहत्पत्तिपृष्ठम्, मस्तिष्कधारणाय ।

(ग) ऊर्ध्वतले त्रिकोणकण्टकस्य पश्चात् परिखा चिच्छद्वयश्च परिखाप्रान्तयोः क्रमाद् दृष्टिनाडीपरिखा^१, दृष्टिनाडीरन्ध्रे च नामतः । तत्र परिखा दृष्टिनाडी-योजिकाया^२ धारणाय, रन्ध्रद्वयन्तु दृष्टिनाड्योरक्षिगुहाप्रवेशाय । तेषां पश्चात् पोषणकार्यग्रन्थिधारणं खातं पोषणकखातं^३ नाम ।

१ Optic Foramina. २ Optic Commissure. ३ Pituitary Body. ४ Pituitary Fossa.

चतुर्थाऽध्यायः ।

७३

तस्यापि पश्चादीषदुन्नतं कूटं सुषुम्नापीठं^१ नाम सुषुम्नाशीर्षकधारणाय ।
उभयतश्च तस्य गभीरे खाते मातृकापरिखे^२ नाम, ते मातृकाधमन्योर्धारणाय ।
एकैकतश्च तत्पुरोभागे पौर्वापर्येण स्थितास्तिस्रो गुलिकाः^३ क्रमाद् अग्रिम-
मध्यम-पश्चिमाख्याः ।

(घ) अधस्तलन्तु जतुकाशरीरस्य नासागुहा-कण्ठविवरयोश्छद्भिभूतम् । तत्र
स्थूलमूला समुन्नता रेखा रंसनिका^४ नाम, सेयं नासामध्यप्राचीरभूतस्य सीरि-
कास्थनः पश्चिमप्रान्तेन दृढसन्ध्यायिनी ।

(२) बृहत्पक्षतिद्वयं^५ (३६श चित्रम्) नाम जतूकाशरीरादुभयतो
बहिर्गतमूर्ध्वाभिमुखमस्थिपत्रकद्वयम् त्रिकोणप्रायम् विशालायतञ्च । एकैकस्याश्च
पक्षतेः द्वौणि तलानि—ऊर्ध्वतलं, पुरस्तलं, बहिस्तलञ्चेति । तत्र—

(क) ऊर्ध्वतलं पक्षतिपृष्ठाख्यं मस्तिष्कभूमिभूतम् । तन्माध्यसीम्नि
विवरद्वयं—वृत्तविवरं^६ जाम्बवविवरञ्च^७ नाम, ताभ्यां पञ्चमनाड्या मध्यम-
पश्चिमयोः शाखयोर्यथाक्रमं निर्गमः । अधःकोणे चास्य पश्चिमतश्छिद्रं कोणविवरं^८
नाम, तत् कलापोषण्याख्यधमन्याः प्रवेशाय ।

(ख) पुरस्तलं चतुरस्रं नेत्रगुहाया बहिःप्राचीरभूतम् ।

(ग) बहिस्तलं विशेषादुच्चावचं शङ्खाधरिकाख्यरेखया^९ द्विभागविभक्तञ्च ।
तत्र उपरिष्ठी भागः शङ्खखातांशनिर्मापकः शङ्खच्छदाख्यपेशीप्रभवश्च, निम्नस्थो
भागो गण्डोत्तरखातस्य अन्तःपरिधिस्थः ।

(३) लघुपक्षतिद्वयं^{१०} जतूकाशरीरस्य पुरस्तादुभयतोऽवस्थितं तनु-
तोक्षणाग्रं त्रिकोणपत्रकद्वयं, तत् पुरःकपालास्थनो नेत्रच्छदिफलकाभ्यां सन्धेयम् ।
मध्ये च तयोः पुरःसंयोजकं त्रिकोणकण्टकम्^{११}, तदुभयतश्च दृष्टिनाडीरन्ध्रद्वयम् ।

एकैकतश्च लघु-बृहत्पक्षत्योरन्तरालं त्रिकोणप्रायम्—पक्षान्तरालं^{१२} नाम ।
तेन शिरःसम्पुटात् पुरो निर्गच्छन्ति—तृतीया, चतुर्थी, षष्ठी च नाम शीर्षण्या
नाड्यः, पञ्चम्याश्च नाड्याः प्रथमा शाखा नेत्रगा, सिराधमन्यश्च नेत्रसर्वाभ्यन्त्यः ।
(३६श चित्रम्)

१ Dorsum Sella. २ Carotid Grooves. ३ Clinoid Processes (anterior, middle & posterior). ४ Rostrum. ५ Greater wings. ६ Foramen Rotundum. ७ Foramen Ovale. ८ Foramen Spinosum. ९ Pterygoid Ridge. १० Lesser wings. ११ Ethmoidal Spine. १२ Superior Orbital Fissure.

(४) चरणद्वयं^१ तु जतूकास्थनस्तत्पश्चिमप्रान्तादुभयतो नोचैर्निर्गतम् । एकैकस्य च चरणस्य द्वे द्वे पत्रके--पार्श्वस्थम्, अन्तःसोमस्थञ्चेति । तत्र पार्श्वस्थं पत्रकमायतपृष्ठम्, अन्तःस्थन्तु स्वल्पायतमकुशाग्रञ्च । अंकुशञ्च^२ तदाश्रित्य विवर्त्तते तालूत्तंसनी पेशी । संयुक्ते च ते पत्रके पुरस्तादूर्ध्वभागे । पृथग्भूते च तेऽधस्तात् चरणान्तरालं^३ रचयतः । तस्य च तटद्वयं सन्धीयते ताल्वस्थना । अस्ति च संयुक्तचरणद्वयस्यान्तराले पश्चिमतो नावाकारं खातं सुगभीरं नौखातं^४ नाम यत्र संसज्येते—हनुमूलकर्षणी अधरा, तालूत्तंसनी चेति पेश्यौ ।

सन्धानं पुनर्जतूकास्थनः सप्तभिरपि शिरःसम्पुटनिर्मापकैरस्थिभिः, पञ्चभिश्च मुखमण्डलास्थिभिर्विज्ञेयम् । एष च तत्सन्धिप्रसंगः श्लोकः—

शिरःसम्पुटगैः सर्वैर्युगाभ्यां गण्डतालूनोः ।

सीरिकास्थना च संनद्धा जतूका मध्यसंस्थिता ॥

तत्सन्धानप्रकाराश्च करोटौ चित्रेषु च द्रष्टव्याः ।

पेश्यः पुनरत्र संयुज्यन्ते एकादश एकैकतः । तद्वयथा—बृहत्पक्षतेर्बहिस्तले द्वे—शङ्खच्छदा, हनुमूलकर्षणो उत्तरा चेति । लघुपक्षतेः पुरोभागे (दृष्टिनाडीरन्ध्रं परितः) षट्—नेत्रगोलकसञ्चालन्यः^५ । जतूकाचरणफलकयोश्चतस्रः—हनुमूलकर्षणी अधरा उत्तरा^६ च, तालूत्तंसनी, उत्तरा कण्ठसंकोचनी चेति । *

अथ भूर्भरास्थि ।

भूर्भरास्थि^७ नाम नासामूलगं शुषिरास्थिपत्रराशिमयं पिण्डकम्, अक्षिकोटरयोरन्तराले निगूढम् (३७ श चित्रम्) । तस्य त्रयो भागाः—मध्यफलकम्, चालनीपटलम्, पार्श्वपिण्डद्वयञ्चेति । तत्र—

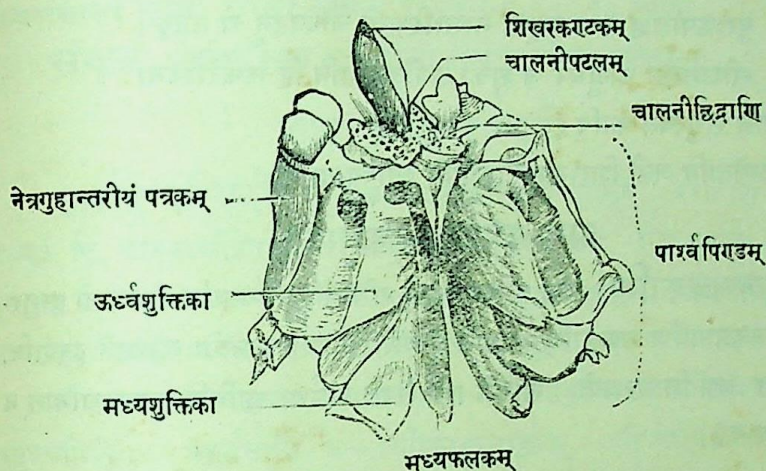
(१) मध्यफलकं^८ नाम नासागुहाभ्यन्तरे मध्यप्राचीरांशनिर्मापकमस्थिपत्रकम् । तस्याग्रधारायां सन्धीयते पुरःकपालस्य अग्रकण्ठकं, नासास्थनोश्च परस्परसंयोगजा धारा । पश्चिमधारायां जतूकास्थनः पुरस्तलस्था रसनिकाख्या आलिका, सीरिकास्थि च । अधोधारा त्वस्य नासाग्रमध्यप्राचीरभूतेन त्रिकोणतहणास्थना सन्धायिनी ।

(२) चालनीपटलं^९ नाम नासामूलेऽभ्यन्तरतः पटलभूतम्, मध्यफलक-

१ Pterygoid processess. २ Pterygoid plates. ३ Hamular process. ४ Pterygoid fissure. ५ Scaphoid Fossa. ६ तद्विवरणमिन्द्रियखण्डे द्रष्टव्यम् । ७ उत्तराया गणितपूर्वत्वात् नेह पुनर्गणना । ८ Ethmoid Bone. ९ Perpendicular Plate. १० Cribriform Plate. ११ अस्ति च पट्टश्लथनी नामापरापि सूक्ष्मपेशी तत् संसर्केति केचित् ।

३७श चित्रम्—भर्भरास्थि

(पश्चिमतो दृष्टं—स्वाभाविकायतनञ्च)



शिरसि संलग्नं, चालनीवत् सूक्ष्मच्छिद्रबहुलं पत्रकम् । तस्य चूडायाम् प्रवर्द्धनं शिखरकण्टकं^१ नाम, तत्र दात्रिकाख्यकलांशसंयोगः, छिद्रपथैश्च प्रसरन्ति गन्धग्राहिनाड्योः प्रतानाः ।

(३) पार्श्वपिण्डद्वयम्^२ मधुचक्रवत् शुषिरगर्भं प्रतनुपत्रकनिमित्तञ्च । एकैकस्य च पार्श्वपिण्डस्य षट् तलानि ऊर्ध्वाधः-पुरःपश्चिम-बाह्यान्तरसंज्ञानि । ततोऽर्ध्वतलं कोटरबहुलं पुरःकपालस्य महापरिखापरिधिना सन्धायि । अधस्तलं तु ऊर्ध्वहन्वस्थना, ताल्वस्थना च । पुरस्तलम् अश्रुपीठास्थना, ऊर्ध्वहन्वस्थना च, कोटराणि च तदन्तः नासागुह्या सानुबन्धानि । पश्चिमतलमपि शुषिरबहुलं जतूकास्थिपुरस्तलेन सन्धिमतः कोटरानुबन्धि च । वहिस्तलं श्लक्ष्णचतुष्कोणफलक-मयं नेत्रगुहान्तःसीमनिर्माणकम्, तस्य नेत्रान्तरीयपत्रक मितिसंज्ञा । अन्तस्तलं नासागुहायाः पार्श्वप्राचोरभूतं क्षुद्रशुक्तिकाकाराभ्यामस्थिफलकाभ्यामुपलक्षितम्, तयोः क्रमात् ऊर्ध्वशुक्तिका, मध्यशुक्तिका^३ चेति संज्ञे । तयोराद्या नासागुहायाः ऊर्ध्वसुरङ्गायाः, द्वितीया तु मध्यसुरङ्गायाः छदिभूता, सन्धीयते च तदधस्ताद् अधःशुक्तिकास्थि^४ । एकैकस्य चैवं पार्श्वपिण्डस्यास्थिचतुष्टयेन सन्धिः । तदुपथा—ऊर्ध्वं पुरःकपालस्य नेत्रच्छदिफलकेन, अधस्ताद् ऊर्ध्वहन्वस्थना, पुरस्ताद् अश्रुपीठास्थना, पश्चात् ताल्वस्थना चेति ।

१ Crista Galli. २ Lateral Masses or Labyrinths. ३ Os planum. ४ Superior Turbinated and Middle Turbinated Processes. ५ Inferior Turbinated Bone, अस्यैव शुक्तिकास्थीति संज्ञा ।

सन्धानं चैवं भर्भरास्थनस्त्रयोदशभिः शिरोऽस्थिभिर्विज्ञेयम् । तद्वयथा—

पुरःकपालञ्च तथा जतूका नासास्थिनी चोर्ध्वहन् च तालू ।

सीराग्रिका चाश्रुधरे च शुक्ती त्रयोदशैतानि हि भर्भरास्थनाः ॥

पेशी तु नात्र संयुज्यते कापि ।

तान्येतानि अष्टौ शिरःसम्पुटास्थीनि व्याख्यातानि ।

अथ कपालचक्रकाणि ।

कपालचक्रकाणि^१ नाम कपालास्थनां सोमन्तेषु स्थितानि समन्ततो दन्तुर-
धाराणि चक्रप्रायाणि शकलाणि । तानि प्रायशः पार्श्वकपालयोः सन्धाने दृश्यन्ति,
विशेषतश्च ब्रह्म-शिवरन्ध्रयोः सविधे । तेषां सर्वथा अनिश्चितावस्थानात् न
पृथक्संख्यानम् ।

अथ मुखमण्डलास्थीनि ।

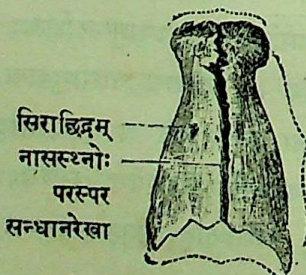
मुखमण्डलास्थीनि चतुर्दश मुखमण्डलनिर्मापकाणि । तद्वयथा—द्वे
नासास्थिनी, द्वे ऊर्ध्वहन्वस्थिनी, द्वे अश्रुपीठे, द्वे गण्डास्थिनी, द्वे ताल्वस्थिनी,
द्वे शुक्तीके चेति साकल्येन द्वादश । सीरिका, अधोहनुश्चेति एकाकिनी
अस्थिनी द्वे चेति । तत्र हन्वस्थनां प्रयोजनं भक्षण-चर्वणादि, इतरेषान्तु इन्द्रिया-
धिष्ठाननिर्माणम् ।

अथ नासास्थिनी

३८ श चित्रम्—नासास्थिनी

(सम्मुखतो दृश्ये)

ऊर्ध्वप्रान्तौ



अधःप्रान्तौ

वहिःपार्श्वः

नासास्थिनी^२ द्वे नासामूलस्थे

वहिरीषत्कूर्मपृष्ठे, अन्तःकोरोदरे च । ते
मध्यरेखायां परस्परसन्धायिनी । तयो-
रूर्ध्वप्रान्तयोः सन्धिः पुरःकपालास्थनो
नासामूलखातेन, वहिःपार्श्वयोस्तु ऊर्ध्व-
हन्वस्थनोर्नासाकूटाभ्याम् । अधःप्रान्तयोः
पुनर्नासापार्श्विकाख्य^३ —तरुणास्थिभ्यां
संयोगः । पश्चिमतश्चानयोः परस्पर-
सन्धानरेखायां सन्धीयते पुरःकपालस्थ
अग्रकण्टकं, भर्भरास्थनः शिखर-

[ME१ सन्धीयन्ते इति शेषः ।

२ Wormin Bones, ३ Nasal Bones, ४ Lateral Cartilages of the Nose,

चतुर्थोऽध्यायः ।

७

कण्टकं च । एककस्य च नासास्थनो बहिस्तले मध्यतश्छिद्रं सिराप्रवेशाय,
अभ्यन्तरतश्च सूक्ष्मा परिखा नासानाडीधारणाय । (३८ चित्रम्)

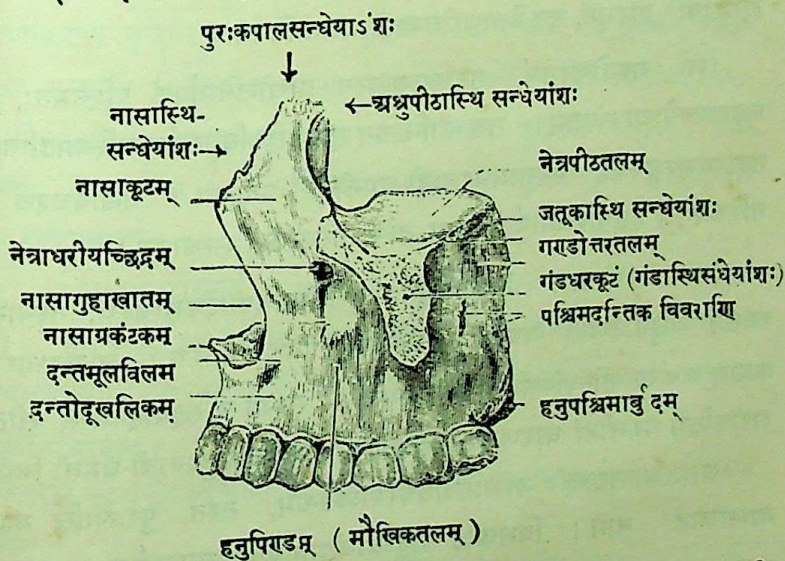
संधानं चैवमेकैकस्य नासास्थनोऽस्थिचतुष्टयेन^१ द्रष्टव्यम् ।

अथ ऊर्ध्वहन्वस्थिनी ।

ऊर्ध्वहन्वस्थिनी^२ द्वे मुखमण्डलास्थिषु प्रधानभूते (३६।४० श चित्रे) ।
ताभ्यां हि परस्परसंहिताभ्यां निर्मीयते ऊर्ध्वहनुमण्डलं सतालुपटलं सद्दन्तो-
दूखलश्च । निर्माणोपकरणे च ते प्राधान्येन नासागुहापार्श्वयोः, नेत्रपीठयोः, मुख-
मण्डलपुरःपार्श्वभागयोश्च । आकारमहत्त्वेऽपि लघुतरे ते शून्यगर्भत्वात् ।

एकैकस्य च ऊर्ध्वहन्वस्थनः पञ्च भागा— मध्ये हनुपिण्डम्, अभितश्च प्रवर्द्धन-
चतुष्टयमिति । प्रवर्द्धनानि च—उपरिष्ठान्नासाकूटम्, बहिःपार्श्वतो गण्डधर-
कूटम्, अधस्तात् तालुफलकम्, अन्तःसीमिन् दन्तोदूखलिकमिति । तत्र—

३६ श चित्रम्—ऊर्ध्वहन्वस्थि (बहिस्तलम्)

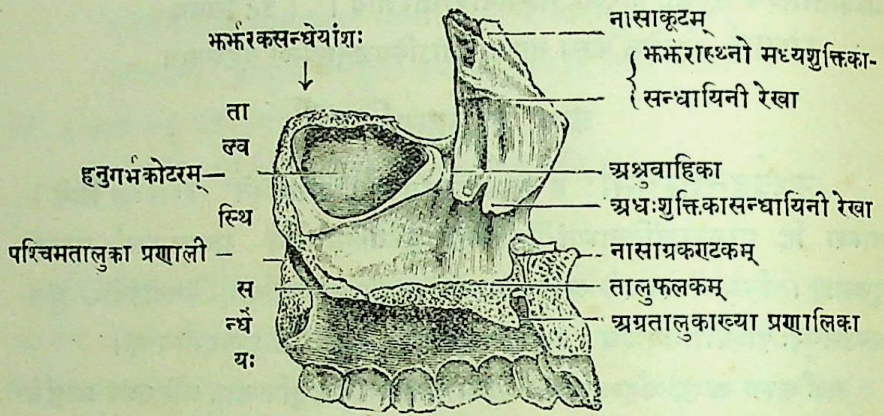


(१) हनुपिण्डं^३ नाम शून्यगर्भमस्थपिण्डं मध्यस्थम् । तस्य चत्वारि
तलानि यथा—(क) बहिस्तलं—मौखिकतलं नाम बहिर्मुखमण्डले पुरस्ताद् दृश्यम्,

१ Nasal Nerve (Ext. Branch). २ त्रिकोणतस्यास्थिभ्यां सह तु पड्भिरस्थिभिः ।

३ Superior Maxillary Bones. दृश्यते तु ऊर्ध्वहन्वस्थनोः संहितयोरैक्येन ग्रहणम् । तथा
च तन्मते एकमेव ऊर्ध्वहन्वस्थि [छ० शा० ५ अ०] । ४ Body of Maxilla,

४० श चित्रम्—ऊर्ध्वहन्वस्थि (अन्तरतलम्)



(ख) गण्डोत्तरतलं गण्डधरकूटस्य पश्चिमम्, (ग) नेत्रपीठतलं नेत्रगुहाया भूमिभूतम्,

(घ) आन्तरतलं नासाऽस्यगुहयोः पार्श्वप्राचीरभूतमिति । तेषु—(३६।४० चित्रे)

(क) मौखिकतले^१ नेत्रगुहाधःसीम्नि छिद्रं नेत्राधरीयं नाम तदाख्य-
सुरङ्गाया^२ द्वारभूतं, तत् नेत्राधरीयनाडी-धमनीनिर्गमाय ।

(ख) गण्डोत्तरतलं^३ तदाख्यखातस्य प्राचीरनिर्मापकं पश्चिमतः, तत् शङ्ख-
च्छदाख्यपेश्या संवृतम् । तत्र कानिचित् सूक्ष्माणि विवरानि पश्चिमदन्तिकाख्यानि
तदाख्यसुरङ्गपथैः^४ स्वनामधरनाडी-धमनीनां प्रवेशाय । उच्चावचश्च उत्सेधः
पश्चिममूले हनुपश्चिमार्बुदं^५ नाम, तस्य ताल्वस्थना सन्धानम् ।

(ग) नेत्रपीठतलं^६ नेत्रगुहाभूमेः पुरोभागनिष्पादकमूर्ध्वस्थं, तस्यान्तःसीम्नि
खातम् अश्रुपीठखातं^७ नाम, तत्र सन्धीयते अश्रुपीठास्थि । आन्तरधारा चास्य
क्रमात् भ्रूणक-ताल्वस्थिभ्यां सन्धायिनी । सूक्ष्मा च तदुवाहिःप्रान्ते सीता नेत्रा-
धरीयपेशी-धमनीनां धारणाय, छिद्रञ्चात्रैव अग्रदन्तिकाख्यनाडी-धमनी निर्गमाय ।

(घ) आन्तरतलं नासाख्यविवरपार्श्वस्थम्, तस्त पुरःसीम्नि महत् खातं
नासाखातं^८ नाम । विभक्तञ्च तदूर्ध्वाधोभागयोस्तालुफलकेन । तस्य ऊर्ध्व-
भागो नासागुहांशः, अधोभागस्तु मुखविवरांशः । दृश्यञ्च तत्रैव पार्श्वतो महत्
कोटरं हनुगर्भकोटरं^९ नाम, तत् सानुवन्धं नासागुहाया मध्यसुरङ्गापथेन ।

१ Facial Surface. २ Infra-orbital Canal. ३ Zygomatic Surface.
४ Posterior Dental Canals. ५ Tuberosity of Maxilla. ६ Orbital Surface.
७ Lachrymal Notch. ८ Opening of Anterior Dental Canal, ९ Nasal Fossa,
१० Antrum of Highmore.

वर्तते च तत् संहतकरोटौ ऋर्भरक-शुक्तिका-तालवस्थिभिः पिहितम्, अन्तरा-
वृत्तञ्च तत् श्लेष्मलकलया जीवच्छरीरे । अस्ति चास्य^१ तथापिहितस्य सूक्ष्मं द्वारं
शलाकाप्रवेशार्हं नासागुहान्तः । अवरुद्धञ्च तद्विद्विधभूमिश्च तद्व्रणशोथोत्पत्तौ ।

(२) नासाकूटं^२ नाम नासामूल-पार्श्वगं प्रवर्द्धनम् । तस्य सन्धिरूर्ध्व-
पुरःकपालेन, मध्यरेखायां नासास्थना, वहिःसीम्नि च अश्रुपोठास्थना । अन्तस्तलं
चास्य खातोदरं नासामध्यसुरङ्गानिर्माणाय । तत्र च रेखाद्वयं क्रमात् ऋर्भर-
कास्थनो मध्यशुक्तिकाभागेन, अधःशुक्तिकास्थना च सन्धानाय । पश्चिमतश्चास्य
स्फुटा परिखा अश्रुवाहिकाया^३ धारणाय ।

(३) गण्डधरकूटं^४ नाम त्रिकोणाकार उत्सेधो वहिःपार्श्वगः । तस्य
गण्डास्थनो बन्धुरप्रदेशेन सन्धानम् ।

(४) तालुफलकं^५ नाम तालुपुरोभागनिर्माणकमस्थिफलकम् ऊर्ध्वहनु-
पिण्डस्याऽन्तरतलादुद्भूतम् । तस्योर्ध्वतलं नासाभूमिः, अधस्तलं तालुच्छदिभूतम् ।
सन्धोयते च तत् मध्यरेखायामितरस्योर्ध्वहन्वस्थनस्तालुफलकेन । एवं संहितस्य
च तालुफलकद्वयस्य पुरोभागे मध्यरेखायां दृश्यते खातमधस्तले, तत् अग्रतालुखातं^६
नाम । तत्र चत्वारि चिह्नद्राणि नासा-तालु-गामिनीनां^७ नाडी-धमनीनां तालु-
प्रवेशाय, ऊर्ध्वतले च तालुफलकद्वयस्य मध्यरेखायां पुरोऽर्द्धं समुन्नता रेखा
सीरिकास्थनः सन्धानाय । पश्चिमधारायाञ्च तालुफलकस्य सन्धोयते
तालवस्थनो ह्रस्वपत्रकम् ।

(५) दन्तोदूखलिकं^८ नाम दन्तोदूखलधारणमर्द्धचन्द्राकारमधोमुखं
प्रवर्द्धनकम् । तत्र वाल्ये पञ्च दन्तोदूखलानि, यौवने त्वष्टौ, तानि तावत्संख्यकानां
दन्तानां धारणाय । तद्वहिःपृष्ठे चागभीरं खातं दन्तमूलविलाख्यं^९ नासा-
संकोचनीपेशीसंयोगाय ।

सन्धानं च एकैकस्योर्ध्वहन्वस्थनो नवभिरस्थिभिर्द्रष्टव्यम् । तस्य चायं
संग्रहश्लोकः—

स्वनाम्ना गण्ड-नासाऽश्रु-सीरिका-तालु शुक्तिभिः ।

ऋर्भराग्रकपालाभ्यां नवभिर्ह नुरुर्ध्वगा^{१०} ॥

१ एतच्च सर्व्वं ब्राह्मेन्द्रियवर्णानावसरे सम्यक् स्फुटीकृतम् । २ Nasal Process.
३ Lachrymal Duct. ४ Malar Process. गण्डकूटमिति तु गण्डास्थन उन्नतभागस्य
संज्ञा । ५ Palatine Process. ६ Anterior Palatine Fossa. ७ Naso-palatine Nerves
and Anterior Palatine Vessels. ८ Alveolar process. दन्तोदूखलानां धारणादियं
संज्ञा । ९ Incisive Fossa. १० सन्धोयते इति शेषः ।

पेश्यः पुनरत्र संयुज्यन्ते एकैकस्मिन् ऊर्ध्वहन्वस्थिन् द्वादश । ताः प्रायेण नेत्रोन्मीलन-निमीलन-नासाधरोष्ठसंकोचन-विस्फारण-चर्दणादिकार्याः । तासां षट् पेश्यो हनुपिण्डस्य पुरः पार्श्वतश्च सम्बध्यन्ते (ऊर्ध्वोर्ध्वम्) यथा— नासावनमनी, मुखमुद्वर्णी, नासासंकोचनी, सूक्ष्णीसमुन्नमनी, नासोष्ठकर्षणी, नासाविस्फारणी पश्चिमा चेति । तिस्रश्चापरास्तत्रैव दन्तोदूखलिकभागस्योपरिष्ठात् यथा— कपोलिका, हनुमूलकर्षणी अधरा, हनुकूटकर्षणी चेति । नासाकूटस्य पुरः पार्श्वतश्च तिस्रः यथा - नेत्रनिमीलनी, नासोष्ठकर्षणी, वक्राधोदर्शिनी चेति । सर्वासाञ्चासां पेशीनां प्रभवनिवेशादिविस्तरः पेशीखण्डे द्रष्टव्यः ।

अथ अश्र पीठास्थितौ ।

अश्रुपीठम्, अश्रुधरं वा (४१ श चितम्) नाम एकैकं क्षुद्रास्थि
नासास्थनोर्नासाकूटयोश्च पश्चादक्षिकोटरान्तःसीम्नि पुरस्तादैकैकतो निगूढम्, तत्
तनुपत्रकनिर्मितम् अर्घपात्रसदृशाकारं च । अश्रुवाहिकाधारणाच्च तस्य अश्रु-
पीठमिति संज्ञा ।

४१श चित्रम्—अश्रु पीठास्थि

(बहिस्तलम्)
पुरःकपालसन्धेयांशः



शुक्तिकासन्वेयमङ्कुशप्रवर्द्धनम् ।

अधोधारायामप्रतः अंकुशाकारप्रवर्द्धनेन शुक्तिका, पुरोधारायामूर्ध्वहन्वस्थनो नासा-
कूटम्, पश्चिमधारायां भर्भरकस्य नेत्रपाश्वर्षीठम् ।

एकैकस्य चाश्रुपीठस्य द्वे तले—
बहिस्तलमन्तस्तलञ्चेति । तत्र बहि-
स्तले अश्रुमार्गधारणाय प्रणाली—
अश्रुवाहिका^२ नाम । अन्तस्तलन्तु
भर्भरास्थनः कोटरद्वारपिधानभूतम् ।

चतस्रश्चास्य धाराः—तत्र ऊर्ध्व-

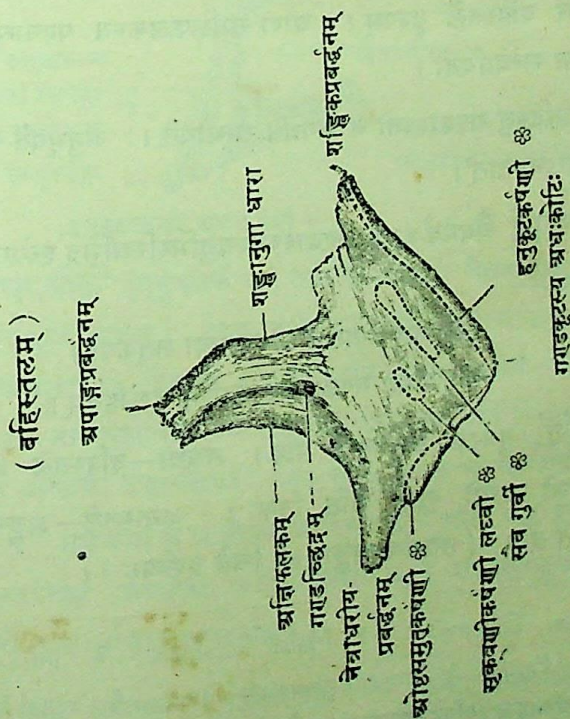
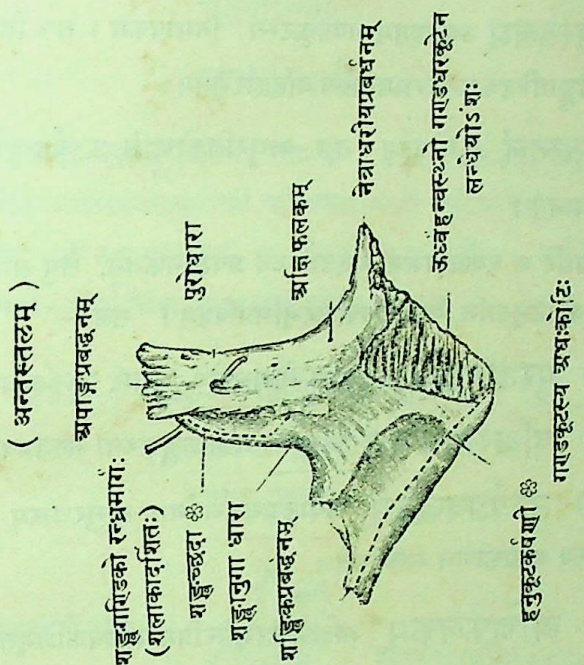
धारायां सन्धीयते पुरःकपालास्थि,

अथ गरडास्थिनी ।

गण्डास्थिनी^३ द्वे वाणाग्रफलकसदृशकाकारे गण्डयोः (४२श चित्रम्) ।
ताभ्यां निर्मीयेते गण्डोत्सेधौ, पार्श्वभूमी च नेत्रकोटरयोश्चतः । तयोरेकैकस्य द्वे
तले—बहिस्तलमन्तस्तलञ्चेति । तत्र—

१ Lachrymal Bones. २ Nasal or Lachrymal Duct. ३ Malar Bones. गण्डास्थीति
सुश्रुतकृता संज्ञा । चरके त्वस्यैव गण्डकूटमिति संज्ञा ।

४२ श चित्रम्—गण्डास्थि (वामम्)



[ॐ एतत् चिह्नं पयोसयोगस्थानसूचकम्]

बहिस्तलम् उन्नतपृष्ठम् गण्डकूटस्य^१ निर्मापकम् । तत्र विवरं गण्डविवरं^२ नाम, तत् शङ्खगण्डिकाख्यरन्ध्रमार्गस्य बहिर्द्वारभूतम् ।

अन्तस्तलं कोरोदरम्, तत् बन्धुरतिकोणांशे ऊर्ध्वहन्वस्थनां गण्डधर-
कूटस्य सन्धानम् ।

चत्वारि च एकैकस्मिन् गण्डास्थिन् प्रवर्द्धनकानि, तेषु त्रीणि क्रमात् पुरः-
पश्चिमोर्ध्वकोटिभूतानि, एकमक्षिकोटरभूमिप्रविष्टम् । तत्—

(१) पुरःप्रवर्द्धनं तोक्षणाग्रं नेताधरोयं^३ नाम, ऊर्ध्वहन्वस्थना सन्धेयम् ।

(२) पश्चिमप्रवर्द्धनं शङ्खकं^४ नाम शङ्खास्थनो गण्डप्रवर्द्धनेन सन्धायि ।

(३) ऊर्ध्वप्रवर्द्धनम्^५ अपाङ्गप्रवर्द्धनं नाम दन्तुरधारम्, तद् अपाङ्गदेशे
अप्रकपालस्य बाह्यकोणेन सन्धीयते ।

(४) अक्षिफलकम्^६ अक्षिकोटरभूमेरग्रिम-पार्श्विकांशभूतमीषत्खातोदरम्
अग्रिमोर्ध्व-प्रवर्द्धनयोर्मध्यस्थम् । तत् च शङ्खगण्डिकाख्यो रन्ध्रमार्गः^७ ऊर्ध्व-
हानव्याख्यनाडीशाखाया गण्डवक्त्रानुगायास्तदाख्यधमनीसहिताया निर्गमाय ।
तद् बहिर्द्वारं बहिस्तले दृश्यम् । धारा चाक्षिफलकस्य पश्चान्मुखी जतूकास्थनो
बृहत्पक्षत्या सन्धायिनी ।

अधःकोटिस्तु गण्डास्थनो न केनापि सन्धीयते । अनुभूयते च सा सह गण्ड-
कूटेन त्वचोऽधस्तात् ।

सन्धानं चैवमेकैकस्य गण्डास्थनश्चतुर्भिर्स्थितिभिर्द्रष्टव्यम् । श्लोकश्चायं
तत्स्मरणार्थः—

शङ्खे नाप्रकपालेन चोर्ध्वहन्वा जतूकया ।

एकैकमिह गण्डास्थि चतुर्भिर्द्रष्टव्यम् ॥

पेश्यः पुनरत्र संयुज्यन्ते पञ्च । तद्यथा—बहिस्तले ओष्ठसमुत्कर्षणी,
सृक्कणीकर्षणी लघ्वी, गुर्वी चेति तिस्रः । अन्तस्तले—शङ्खच्छदा, हनुकूट-
कर्षणी चेति द्वे । (तत्संयोगाङ्कः ४२ चित्ते द्रष्टव्याः) ।

१ Malar Tuberosity. २ Malar Foramen. ३ Infra-orbital Process.
४ Temporal Process. ५ Fronto-sphencidal Process. ६ Orbital Process. ७ Malar
Canal. गण्डच्छिद्रञ्च क्वचिद् युरमरूपं दृश्यते ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

८३

ताल्वस्थिनी ।

ताल्वस्थिनी, तालूपके वा, नाम द्वे (४३श चित्रम्) तनुपत्रकनिर्मिते विषमास्थिनी नेत्र-नासाऽस्थ-कुहराणां पश्चिमभागस्थे खनित्राकारे^१ । ते नेत्रकोटर-भूमेर्नासाभूमि-पार्श्वयोस्तालुपटलस्य च निर्माणसहायभूते । तयोरेकस्य द्वौ भागौ तनुपत्रकमयौ—दीर्घपत्रकं ह्रस्वपत्रकञ्चेति । तत्र—

४३श चित्रम्—ताल्वस्थि (वामम्) ।

(गलाभ्यन्तरतो दृष्टम्)

नेत्राभिगं प्रवर्द्धनम्



दी
र्घ
प
त्र
क
म

नेत्रगुहाभिमुखोऽंशः

ऊर्ध्वनुसन्धेयं प्रवर्द्धनम्

तालुजातुकं खातम्

जतूकास्थनः

चरणाभ्यां सन्धेया

द्विमुखीधारा

तालुकोणः

जतूकाभिमुखोऽंशः

उत्तरालिका

अधरालिका

काकलकधरं कराटकम्

तालुपश्चिमा धारा विमुक्ताग्रा

हनुकूटकर्पणी अधरा पेशी ❀

(१) दीर्घपत्रकं^२ (तुङ्गपत्रकं वा) नाम ताल्वस्थनो नेत्रकोटरान्तात्तालुमूलं यावदालम्बितमूर्ध्वमुखं पत्रकम् । तस्य पुरोधारा ऊर्ध्वह्रस्वस्थिपिण्डस्य पश्चात् सन्धेया, पश्चिमधारा तु द्विमुखी जतूकास्थनश्चरणफलकाभ्यां सन्धायिनी । तस्यान्तस्तलं मसृणं नासागुहापार्श्वस्थं समुन्नताभ्यामालिकाभ्यां त्रिभागविभक्तञ्च । तत्र ऊर्ध्ववर्त्तिनी आलिका उत्तरालिका^३ नाम, तथा सन्धीयते भर्भरास्थनोऽवयवो मध्यशुक्तिकाख्यः । अधःस्था तु आलिका अधरालिका^४ नाम, तत्र शुक्तिकास्थनः सन्धानम् । अनयोश्च मध्यस्थः प्रदेशो नासापथस्य मध्यसुरङ्ग्याऽनुपज्यते ; तदूर्ध्वाधरौ प्रदेशौ तु ऊर्ध्वाधरसुरङ्गाभ्याम् ।

१ Palate Bones. तालूपकमिति प्राचीना संज्ञा । २ खनित्रं भूमिखननयन्त्रं, कुदाल, कुदाली—वेति भाषा (Spade). ३ Vertical Plate. ४ Superior Turbinate Crest.
५ Inferior Turbinate Crest.

वहिस्तलन्तु दीर्घपत्रकस्य पश्चिमतालुकाख्यया^१ सूक्ष्मपरिखयाङ्कितम् ऊर्ध्व-
हन्वस्थन आन्तरतलेन सन्धेयम् ।

अथास्य दीर्घपत्रकस्य चूडायां द्वे प्रवर्द्धनके बहिरन्तश्च प्रसृते । तयोः
बहिर्मुखं नेत्रगुहाभूमिप्रवेशि, नेत्राभिगप्रवर्द्धनं^२ नाम, तस्य जतूका-भर्भरकोर्ध्व-
हन्वस्थनां नेत्रपोठफलकैः सन्धानम् । अन्तर्मुखं जतूकास्थिसन्ध्यायि जातूकप्रवर्द्धनं^३
नाम । सन्धौ चानयोः खातं तालुजातूकं^४ नाम, तेन तालुजातूकाख्य धमन्याः
पश्चिमनासानाड्याश्च नासाभ्यन्तरे प्रवेशः ।

(२) ह्रस्वपत्रकं^५ तलपत्रकं वा नाम दीर्घपत्रकस्य मूलादुद्गतमन्तर्मुखं
तलस्थं पत्रकम् । तस्योर्ध्वतलं नासाभूमेः, अधस्तलञ्च तालुपटलपश्चिमभागस्य
निर्मापकम् । पुरोधारा ऊर्ध्वहन्वस्थनस्तालुफलकेन सन्ध्यायिनी, पश्चिमधारा तु
विमुक्तैव, कोमलतालुधरा च । कण्टकश्चात् काकलकधरम् काकलकिन्याः
पेश्याः संयोगाय ।

ह्रस्व-दीर्घपत्रकयोः सन्धानकोणस्तु जातूककोणाख्यः स्थूल-बन्धुरो जतूका-
चरणाद्वयान्तराले प्रविष्टः ।

ह्रस्वपत्रकज्ज्वेद इतरताल्वस्थनो ह्रस्वपत्रकेण मध्यरेखायां सन्धिमतः ।
सन्धानेन चानयोरुपरिष्ठात् विरच्यते परिखा सौरिकास्थनो दृढसन्धानाय ।

सन्धानं च षड्भिरस्थिभिस्ताल्वस्थनो विज्ञेयम् । एष च तत्संग्राहकः
स्मारक श्लोकः ।

भर्भरश्च जतूका च शुक्तिका चाथ सौरिका ।

स्वसंज्ञश्चोर्ध्वहन्वस्थि ताल्वस्थना संहितानि षट् ॥

पेश्यः पुनः त्व संयुज्यन्ते चतस्रः,—उत्तरा कण्टसंकोचनी, अधरा हनु-
कूटकपर्षणी, काकलकिनी, तालुत्तंसनी चेति ।

अथ शुक्तिकास्थिनी ।

शुक्तिकास्थिनी^६ द्वे—(५०श चित्रान्तर्दृश्ये) से प्रतनुशुषिरपत्रनिर्मिते
क्षुद्रशुक्तिकाकारे, नासागुहायां निम्न मध्यसुरङ्गयोर्मध्यस्थे । ते च भर्भरकास्थनः
शुक्तिकाद्वयात् निम्नस्थे—इति तयोः क्वचित् अधःशुक्तिकेतिसंज्ञा ।

१ Posterior Palatine Canal. २ Orbital Process. ३ Sphenoidal Process.
४ Spheno-palatine notch. ५ Horizontal plate. ६ Uvula. ७ Inferior
Turbinated Bone or Inferior Nasal Concha.

एककस्याश्च शुक्तिकाया द्वे तले—अन्तस्तलं वहिस्तलञ्च । तत्राद्यं कोरोदरं नासापथस्य निम्नसुरङ्गांशनिर्मापकम्, द्वितीयं कुञ्जपृष्ठं नासामध्यप्राचीराभिमुखम् ।

अस्याश्चोर्ध्वधारा पुरोभागे ऊर्ध्वहन्वस्थना सन्ध्यायिनी, पश्चिमभागे तु ताल्वस्थना । द्वे च तत्र प्रवर्द्धनके अश्रुकूटक-भ्रूकूटकसंज्ञे^१,—तयोराद्यं सन्धीयते अश्रुधरास्थना, द्वितीयन्तु भ्रूरास्थना । अधोधारा पुनरस्या विमुक्ताग्रा । एष चास्याः सन्धिस्मारकः श्लोकः ।

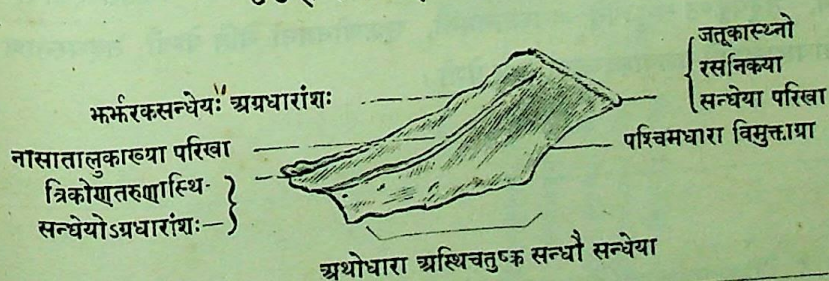
भ्रूरेणोर्ध्वहन्वस्थना ताल्वस्थना चाश्रुधारिणा ।

चतुर्भिरूर्ध्वमेव^२ स्यात् शुक्तिका दृढसंहिता ॥

अथ सोरिका ।

सीरिका^३ सोराग्रिका वा नाम (४४श चित्रम्) नासाखातस्य पश्चिम-भागे मध्यप्राचीरभूतमस्थिफलकं सीराग्रसदृशाकारं प्रतनुपत्रमयम् । अस्याश्चाग्र-धारायां संयुज्यते भ्रूरास्थनो मध्यफलकं नासाग्रप्राचीरभूतं, द्विकोणतरुणास्थि च तदधः । पश्चिमधारा त्वस्याः गलविवराभिमुखी विमुक्ताग्रैव^४ । अधोधारा ऊर्ध्वहन्वस्थनोस्ताल्वस्थनोश्च परस्परसन्धानवत्यां मध्यरेखायां संहितेति तत्रास्थि-चास्या चतुष्टयेन सन्धिः । ऊर्ध्वधारा तु परिखाङ्किता तटद्वयोपलक्षिता च, तत्र जतूकास्थनो निम्नतलस्थया रसनिकाख्यरेखया सन्धिः ।

४४श चित्रम्—सीरिकास्थि ।



^१ Lachrymal & Ethmoidal process.es.

^२ ऊर्ध्वमेव सन्धानाभिधानात् अधस्तात् सन्ध्यभावो बोध्यः । ^३ Vomer. ^४ न केनापि संहितेत्यर्थः ।

पार्श्वयोश्च सीरिकास्थः सूक्ष्मे परिखे नासातालुकाख्ये^१ तदाख्यनाड्यो-
धारणाय । एष चास्य सन्धिस्मारकः श्लोकः ।

ऊर्ध्वहन्वस्थियुगलं तालुयुग्मञ्च भर्करम् ।

जतूका चेति पट्केन संहिता सीरिका दृढम् ॥

अथ अधोहन्वस्थि ।

अधोहन्वस्थि^२ (४५श चित्रम्) तावदेकमध्वरदन्तपंक्तिधारणं मुख-
मण्डलास्थिषु बृहत्तमं दृढतमञ्च । तस्य द्वौ भागौ,—हनुमण्डलं नाम अश्वखुरा-
कारो भागः, हनुकूटद्वयञ्च हनुसन्धिप्रविष्टमुभयतः । तत्र—

(१) हनुमण्डलं^३ दन्तोदूखलधारकं मुखमण्डलाधो भाग सम्पादकम् ।
तच्चबाल्ये पृथगावस्थितयोर्वामदक्षिणार्धयोः यौवने चिबुकदेश संहितयोरेकीभावा-
न्निष्पन्नमिति शारीरविदः । तस्य च द्वे तले—बाह्यतलमान्तरतलञ्चेति, द्वे च
धारे—ऊर्ध्वधारा अधोधारा चेति ।

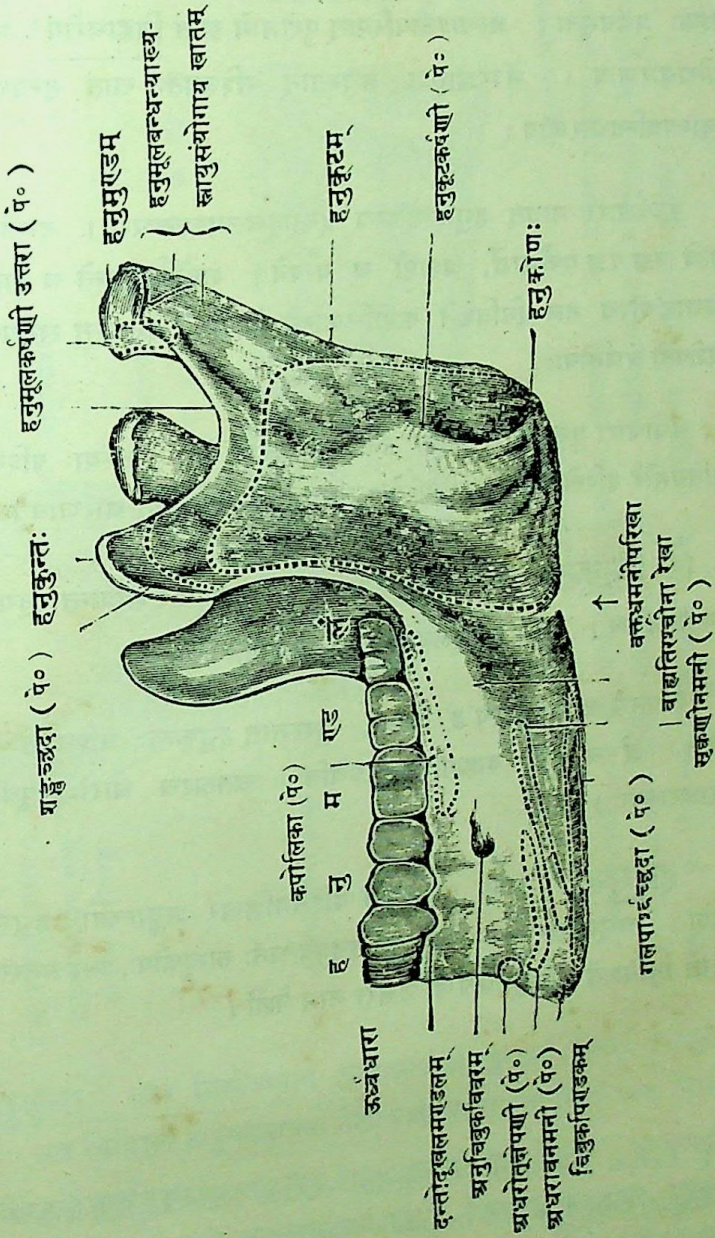
तत्र बाह्यतले चिबुकदेशस्थ उत्सेधः चिबुकपिण्डः^४ नाम । तदुभयतः अधरोत्-
क्षेपण्योः पेश्योर्निवेशः । ततश्च समुद्गता सन्धानाङ्कभूता रेखा चिबुकसन्धानिका^५
नाम । तदुभयतश्च पश्चाद् विवरे अनुचिबुकाख्ये^६ तदाख्यनाडी धमनीनां
प्रवेशाय । तयोरेकैकस्य मूलतस्तिर्यक्-पश्चिमाभिमुखा रेखा बाह्यतिरश्चीना^७
नाम,—तदुपकण्ठे संयुज्येते अधरावनमनी, सूकणीनमनो चेति पेश्यौ, तदधस्ताच्च
अधोधारासमीपे गलपार्श्वच्छदा नाम पेशी ।

१ Naso-palatine Grooves. २ Mandible. ३ Horizontal Portion or Body.
४ Mental process. ५ Symphysis menti. ६ Mental Foramina. ७ Ext.
Oblique line.

चतुर्थोऽध्यायः ।

८७

४५ श चित्रम्—अधोहन्वस्थि (बहिस्तलम्) ।



प्रत्यक्षशारीरम् ।

आन्तरतलं तावदीषत्करोदरं सर्वत्रैव, तत्र मध्यरेखामुभयतो द्वे द्वे कला-
यके—रसनाकलायके^१ नाम । तत्र पेशीचतुष्टयस्य संयोगः । तन्मूले च
तिर्धगूर्ध्वम् पश्चाद्गता रेखा आन्तरतिरश्चीना^२ नाम, सेयं मुखभूमिकण्ठिकाख्य-
पेश्याः प्रभवभूता । अस्याश्चोपरिष्ठात् पुरोभागे खातं जिह्वाधरीयं^३ नाम तदाख्य-
ग्रन्थिधारणाय । अगश्चास्या अधस्तात् पश्चिमतः खातं हन्वधरीयं^४ नाम
तदाख्यग्रन्थिधारणाय ।

ऊर्ध्वधारा तावत् हनुमण्डलस्य दन्तोदूखलमण्डलधरा । दन्तोदूखलानि च
बाल्ये पञ्च पञ्च एकैकार्द्धे, अष्टाष्टौ च यौवने । शनैर्विलोयन्ते च तानि वार्द्धके ।
पश्चार्द्धयोश्च तत्र निविशते कपोलिकाख्ये पेश्यौ । दन्तास्तु समग्रकरोटिवर्णने
विशेषतो वर्णनीयाः ।

अधोधारा पुनरस्य स्थूलाग्रा त्वङ्मात्रावरणा च । तस्याः पश्चिमप्रान्तयोः
नातिगभीरे परिखे वक्त्रधमनीपरिखे^५ नाम, ते वक्त्रधमन्यो धारणाय ।

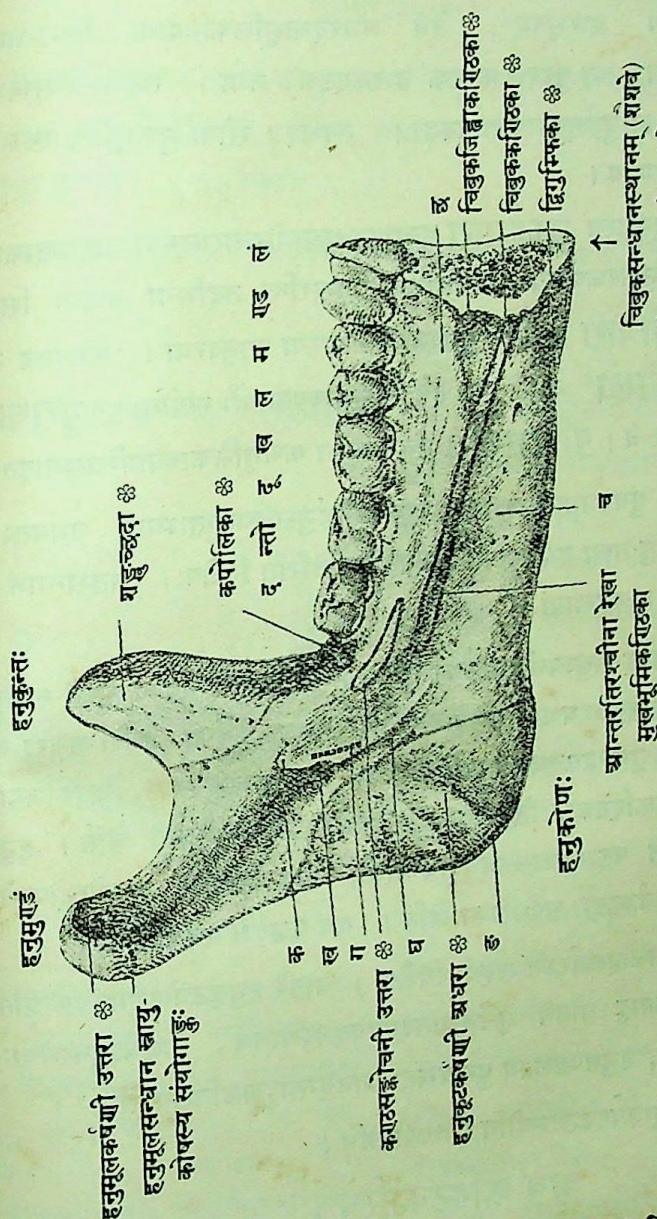
(२) हनुकूटम्^६ नाम हनुमण्डलस्य एकैकतः पश्चिमप्रान्तादुद्गतं चतुरस्र
प्रायं प्रवर्द्धनम् । तदेव हनुमूलबन्धनसंज्ञं प्राचाम्^७ ।

एकैकस्य च हनुकूटस्य द्वे शिखरे,—पुरस्तात् हनुकुन्तः, पश्चिमतो हनुमुण्ड-
ञ्चेति । द्वे च तले—बाह्यमाभ्यन्तरञ्चेति । चतस्रश्च धाराः—पूर्व पश्चिमो-
त्तराधराख्याः । तत्र—

हनुमुण्डं^८ नाम वर्तुलप्रायं पश्चिमशिखरं शङ्कास्थनो हनुसन्धिखात-
प्रवेशि । तन्मूले च परितः सम्बध्यते तत्प्रबन्धनः स्नायुकोषः, आभ्यन्तरतले चास्य
मूलतो निविशते हनुमूलकर्षणी उत्तरा नाम पेशी ।

१ Genial Tubercles. २ Internal Oblique line. ३ Sub-lingual fossa for
Sub-lingual Gland. ४ Sub-maxillary fossa for Sub-maxillary Gland. ५ Groove
for Facial Artery. ६ Ramus of Lower Jaw. ७ चरककृतेयं संज्ञा । ८ Condyle of
Lower Jaw.

४६ श चित्रम्—अधोहनुवामार्धम् (अन्तस्तलम्) ।



चित्र-व्याख्या ।—क० ख० अग्रदन्तमूलखरङ्गाया द्वारं सकाटकम् । ग० हन्वन्तःश्वगायाः स्नायोः संयोगस्थानम् । घ० मुखभूमिकगिटकाख्य नाडीधमन्योर्धारणाय सीता । ङ० हनुकोणिकाख्य स्नायुसंयोगस्थलम् । च० हन्वधरीयग्रन्थिधारणाय स्नातम् । छ—जिह्वाधरीयग्रन्थिधारणाय स्नातम् । ॥ पुनत् विह्वं पेशीसंयोगस्थानसूचकम् ।

हनुकुन्तः^१ नाम त्रिकोणप्रायं कुन्ताग्रसदृशं पुरःस्थं शिखरं हनुकूटस्य एकैकतः । तत्र निविशते शङ्खच्छद्राख्या पेशी बाह्याभ्यन्तरतलयोः । (४६ चित्रम्) बहिस्तले पुनर्हनुकूटस्य संयुज्यते हनुकूटकर्षणी नाम पेशी । अन्तस्तले तु हनुमूलकर्षणी अधरा । मध्ये चान्तस्तलस्य स्फुटं विवरम् अधराया दन्तमूल-

१ Coronoid Process.

सुरङ्गाख्यप्रणाल्या द्वारभूतम्^१, तेन अधरदन्तमूलिकाख्यानां सिरा-धमनी-
नाडीनां प्रवेशः । तत् पुरश्च कण्टकं द्वारकण्टकं^२ नाम । तदधश्च सम्बध्यते
हन्वन्तःपार्श्वगा स्नायुजंत्कास्थनानिवद्धा । तदधश्च सीता मुखभूमिकण्टिकाख्य
नाडी-धमन्योर्धारणाय ।

अथास्य हनुकूटस्य ऊर्ध्वधारा हनुमुण्ड-कुन्तयोरन्तरालस्था अर्द्धचन्द्राकारा,
तद्द्वारेण च हनुकूटकर्षण्याख्यपेशीमभितः प्रसरन्ति तदभिगा नाड्यः सिरा-
धमन्यश्च । अधोधारा तावत् हनुमण्डलाधोधारया सानुबन्धा । कोणश्च तत्र
पश्चिमतो हनुकोणो^३ नाम—तत्र हनुकोणिकाख्यस्नायोः संयोगः । पुरोधारा
तन्वी पेशीनिगूढा च । पश्चिमधारा पुनः स्थूला कर्णमूलिकाख्यग्रन्थिसमावृता ।

सन्धानं पुनरधोहन्वस्थनः शङ्खास्थनोर्हनुसन्धिखाताभ्याम् उभयतः ।
शिशोः प्रथमे वर्षे तु तस्य द्वयोरधयोः पृथगवस्थितिरिति विशेषः । तत्सन्धानं च
प्रायः प्रथमवर्षान्ते मध्यरेखायां ।

पेश्यः पुनरिह संयुज्यन्ते पञ्चदश युग्मरूपा यथोक्ताः । एष च तासां स्थान-
संक्षेपः । हनुकूटे चतस्रः यथा—हनुकूटकर्षणी, हनुमूलकर्षणा उत्तरा अधरा च,
शङ्खच्छदा चेति । हनुमण्डलस्यान्तस्तले पञ्च यथा—चिबुककण्टिका, चिबुकजिह्वा-
कण्टिका, मुखभूमिकण्टिका, द्विगुम्फिका, उत्तरा कण्टसङ्कोचनी चेति । हनु-
मण्डलस्य बहिस्तले षट् यथा—अधरावनमनी, सूक्कणोनमनी, अधरोत्क्षेपणी,
मुखमुद्रणी, गलपार्श्वच्छदा, कपोलिका चेति । एवं पञ्चदश एकैकार्द्धे ।

पतावांश्च अधोहन्वस्थिन लक्ष्यो विशेषः । बाल्ये हनुकूटयोर्हनुमण्डलं प्रति
तिर्यङ्निविष्टयोः क्रमाद् योवने भू-निखातदण्डवदवस्थानम्, वार्द्धके पुनरनयोः
विशेषतस्तिरश्चीनता, हनुमण्डलस्य पुरःप्रसरः, शनैर्दन्तोदूखलविलयश्चेति^४ ।

तान्येतानि मुखमण्डलास्थीनि व्याख्यातानि ।

अथ कण्टिकास्थि ।

कण्टिकं जिह्वामूलिकं^५ वा नाम कण्टान्तर्निगूढं रसनामूलस्थमस्थि-
वलयाधर्म, तत् नानापेशीस्नायुनिवेशभूमिभूतम् श्वासनलिकाचूडायामवतिष्ठते ।

१ Opening of Internal Dental Canal. २ Mandibular spine. ३ Sigmoid
Notch. ४ Angle of Lower Jaw. ५ अतएव वार्द्धके अधोहनोरग्रतः प्रसरो वक्त्रविकृतिविशेषश्च ।
६ Hyoid Bone.

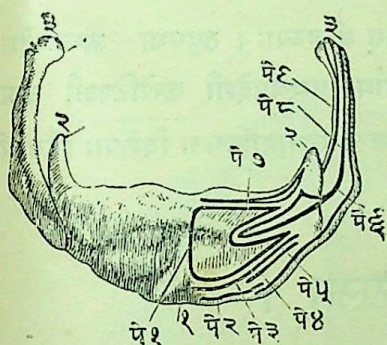
चतुर्थोऽध्यायः ।

६१

तच्च शून्यालम्बितमिव सुदीर्घस्नायुरज्जुभ्यां शङ्खास्थनोर्मूलशिफाद्वयेन प्रतिबद्धम् ।
सम्बद्धञ्च तत् पेशीभिरपि तेनैव अधोहन्वस्थना च । अतएव तदपीह
प्रसङ्गतो वर्ण्यते । (४७ चित्रम्)

तस्य च त्रयो भागाः—कण्ठकपिण्डं, महाशृङ्गद्वयं, लघुशृङ्गद्वयञ्चेति । तत्र—

(४७) चित्रम्—कण्ठकास्थि



चित्रव्याख्या—

१ कण्ठकास्थिपिण्डम् । २, ३, लघुशृङ्गद्वयम्
३, ३, महाशृङ्गद्वयम् । पेशीनिवेशास्तु—
पे १, चिबुककण्ठिका । पे २, उरःकण्ठिका ।
पे ३, मुखभूमिकण्ठिका । पे ४, अंस-
कण्ठिका । पे ५, शिफाकण्ठिका । पे ६,
अवटुकण्ठिका । पे ७, चिबुकजिह्वाकण्ठिका ।
पे ८, जिह्वाकण्ठिका । पे ९, मध्यमा
कण्ठसङ्कोचनी ।

(१) कण्ठकपिण्डं^१ नाम मध्यस्थं

स्थूलं पिण्डं मध्यरेखायां द्वयोरर्धयोः
सन्धानचिह्नाङ्कितम् । तत्र पुरस्तले
निविशन्ते द्वादश पेशयः (पट् एकैकतः) ।
ताः क्रमात् चिबुककण्ठिका, उरःकण्ठिका,
चिबुकजिह्वाकण्ठिका, मुखभूमिकण्ठिका,
शिफाकण्ठिका, अंसकण्ठिका चेति नाम ।
पृष्ठतलं तु तस्य मसृणं कलासम्बद्धञ्च
जिह्वामूले गोजिह्विकया^२ ।

(२) महाशृङ्गद्वयं^३ नाम मध्यपिण्ड-

भुभयतः पश्चिमाभिमुखं स्वनामव्याख्या-
तम् । तयोरग्रकोट्योर्दृश्ये स्फुटे अर्बुदके
स्नायुरज्जुसंयोगाय । एकैकस्मिन् महा-
शृङ्गे च निविशन्ते तिस्रः पेशयः—क्रमात्
मध्यमा कण्ठसङ्कोचनी, जिह्वाकण्ठिका,
अवटुकण्ठिका चेति ।

(३) लघुशृङ्गद्वयं^४ तु महाशृङ्गयोः
क्रोडस्थम् । तदग्रकोटिद्वयेऽपि शङ्खास्थि-
शिफाद्वयसङ्गतयोः स्नायुरज्ज्वोः संयोगः ।

१ Body or Basi-hyoid. २ गोजिह्विका नाम जिह्वामूलस्थं श्वासपथच्छादनशीलं तस्यास्थि
पिधानमग्रे वक्ष्यमाणम् । चरककृतेयं संज्ञा (Epiglottis). ३ Greater Cornua.

४ Lesser Cornua.

अथ चतुर्थः समग्रकरोटिदर्शनीय- विशेषवर्णनीयो नाम परिच्छेदः ।

करोटिर्नाम सकलशिरोऽस्थनां सङ्घातः । शिरोऽस्थीनि च सर्वाणि अधो-
हनुवर्जं स्थिरसन्धिसंहितानि । अधोहनोस्तु मुण्डाभ्यामुद्वलसन्धिः शङ्खास्थनोः
पार्श्वस्थाभ्यां स्थालकाभ्याम् । विशेषाश्चा करोटौ सङ्घातद्वया बहवः, तेषु केचित्
सूचितपूर्वाः । तानेवेदानीमपरांश्च यथावस्थितान् विस्तरेण प्रतिपादयिष्यामः
शिष्यबुद्धिवैशद्याय, शिरोऽस्थिसंस्थानवैचित्र्यावबोधाय^१ च ।

आदौ तावत् करोटेः पञ्च प्रदेशाः सम्यग् बोद्धव्याः । तद्यथा--ऊर्ध्वप्रदेशः
करोटिपटलं नाम, अधःप्रदेशः करोटिभूमिर्नाम, पार्श्वप्रदेशौ करोटिपक्षौ नाम,
पुरःप्रदेशश्च मुखमण्डलं नामेति । अपरे च नेत्र-नासागुहादिगता विशेषाः इहैवान्ते
पृथक् प्रतिपाद्याः ।

अथ करोटिपटलम् ।

करोटिपटलं^२ नाम (४८श चित्रम्) शिरःसम्पुटस्य छदिभूतो भागः ।
तस्य निर्माणमग्रतः पुरःकपालस्य ललाटफलकेन, पार्श्वयोः पार्श्वकपालाभ्यां,
पश्चिमतश्च पश्चिमकपालस्य उत्तरार्द्धेन । तस्य च द्वे तले—बाह्यमाभ्यन्तरश्चेति ।
सन्ति च स्तनन्धयशिशोः करोटौ केचिद् विशेषा इहैव सूचनीयाः । तत्र —

बाह्यतलं करोटेरुपरिभागः कूर्मपृष्ठाकारः । तत्र लक्षणीयाः पञ्च सीमन्ताः
—पुरःसीमन्तः, मध्यसीमन्तः, पश्चिमसीमन्तः, पार्श्वसीमन्तौ च द्वाविति । तेषु—

पुरःसीमन्तो नाम पुरःकपालस्य पार्श्वकपालाभ्यां सन्धानरेखा
पुरोद्वया ।

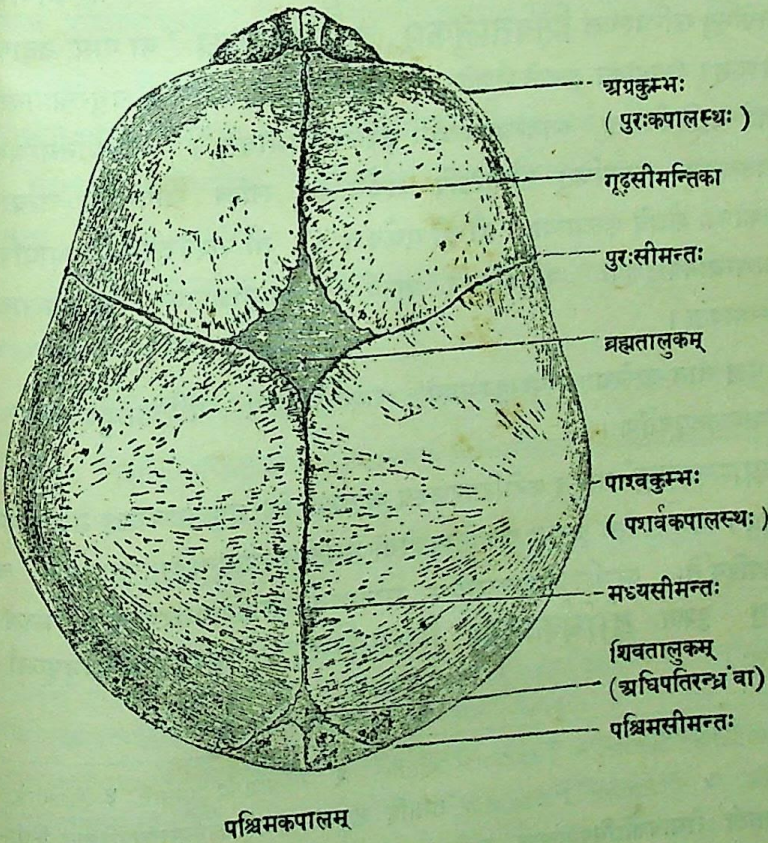
मध्यसीमन्तो^३ नाम पार्श्वकपालयोः परस्परसन्धानरेखा मध्यस्था ।

१ Skull. २ सन्ति खल्वेवंविधा बहवो विशेषाः सीमन्तादयो ये समग्रकरोटावेव सम्यग्-
दृश्या इति । ३ Roof of the Skull. ४ Coronal Suture. ५ Sagittal Suture.

४८श चित्रम्—करोटिपटलम् (स्तनन्धयशिशोः) ।

अत्र दृश्या विशेषतो ब्रह्मरन्ध्र शिवरन्ध्रयोः कोमलकलामयता ।

पुरःकपालस्य च द्वयोरर्धयोः पार्थक्यञ्च ।



पश्चिमसीमन्तो^१ नाम पश्चिमकपालस्य पार्श्वलपालाभ्यां सन्धानरेखा पश्चाद्दृश्या ।

पार्श्वसीमन्तौ^२ नाम करोटिपटलस्य पार्श्वस्थे सन्धानरेखे । तयोरेकैका रेखा अस्थिषट्कस्य सन्धानाङ्गभूता । तथाह्यत्र उपरिष्ठानि त्र्योणि पुरः-पार्श्व-पश्चिमाख्यानि कपालानि अधःस्थैस्त्रिभिः गण्ड-जतूका-शङ्खास्थिभिः संहितानि । (सन्धिप्रकारस्तु २७श चित्रे द्रष्टव्यः) ।

बाल्ये तु—गूढसीमन्तिका^३ नाम पुरःकपालार्धयोरसंहितयोर्मध्यस्था दृश्यते सूक्ष्मा सीमन्तरेखा आ षष्ठवर्षात् । सा कचिद् यूनःकरोटावपि दृश्या ।

अत्र च द्वौ सीमन्तसन्धौ विशेषतो लक्ष्यौ पुरःपश्चिमस्थौ । तत्र पुरोमध्य-सीमन्तयोः सन्धिस्थलं ब्रह्मरन्ध्रम्, ब्रह्मतालुकं^४ वा नाम । पश्चिम-मध्य-सीमन्तयोस्तु सन्धिस्थलं शिवतालुकम्, अधिपतिरन्ध्रं^५ वा नाम, तदाख्य-मर्मधारणात् । अनयोश्च दृश्यते शैशवे कोमलकलामयता, ब्रह्मरन्ध्रे चतुरस्रप्रायता, शिवरन्ध्रे च त्रिकोणता, स्तनन्धयशिशोः करोटौ स्वभावतः । अस्थिनिर्माणस्य विलम्बितत्वात् कस्यचित् कौमारेऽपि तथैव । सन्ति चापरेऽपि चत्वारः सीमन्तकोणाः शैशवे कलामयाः—द्वौ द्वौ एकैकतः । तौ पार्श्वकपालयोरधोवर्त्तिकोणद्वयसन्धानयोर्दृश्यौ एकैकस्मिन् पार्श्वे । शिशोर्जातस्य द्वित्रमासान्ते तेषामस्थिमयता ।

पञ्च चात्र उत्सेधाः—पुरःकुम्भद्वयं^६, पार्श्वकुम्भद्वयं^७, पश्चिमावुदञ्चेति^८ । तानि व्याख्यातपूर्वाणि ।

आन्तरतलं^९ तावत् करोटिपटलस्य खातोदरं किञ्चिदुच्चावचञ्च मस्तिष्क-च्छादनाय । तत्र सर्वतो दृश्याः कलापोषणीनां धमनीनां प्रतानाङ्काः, खातानि^{१०} च मस्तिष्कवहिवृतेः वराशिकाख्यकलायाः सम्बन्धनकलाग्रन्थिधारणाय । मध्य-रेखायान्तु दृश्या दीर्घिकाख्या सिरापरिखा^{१०} मध्यसीमन्तानुपूर्व्या-ऽभ्यन्तरतः ।

१ Lambdoid Suture. २ Temporal Suture. ३ Metopic Suture. ४ Anterior Fontanelle. ५ Posterior Fontanelle तथाहि सुश्रुतः—“मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्ठात् सिरा-सन्धिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्र सद्योमरणम्” (सु० शा० ६ अ०) ६ Frontal Eminences. ७ Parietal Eminences. ८ Ext. Occipital Protuberance. ९ Depressions for Prechionian Bodies. १० Longitudinal Sinus,

अथ करोटिभूमिः ।

करोटिभूमि^१ नाम करोटेऽधःप्रदेशो नानास्थिसङ्घातमयः सर्वत उच्चावचः । तस्या द्वे तले,—ऊर्ध्वतलं शिरोगुहान्तर्निगूढं करोटिपीठं मस्तिष्कपीठं वा नाम । अधस्तलं मुख-कण्ठगुहयोश्छदिभूतं शिरोगुहाबाह्यम् तत् करोटिभूमितलं, करोटितलं वा नाम—इति ।

करोटिपीठम् ।

करोटिपीठं, मस्तिष्कपीठं वा नाम (४६श् चित्रम्) करोटिभूमेः ऊर्ध्वतलं शिरोगुहान्तरीयं मस्तिष्कांशानां धारणाय खातोदरम् । तच्च करोटिपटलापसारणेन^२ दृश्यम् । खातानि चात्र त्रीणि महाखातानि^३ नाम । तेषां पुरोगं महाखात् मस्तिष्कस्य पुरःपिण्डधारणाय । मध्यगं मध्यपिण्डधारणाय । पश्चिमगं पश्चिमपिण्डस्य सानुमस्तिष्क-सुषुम्नाशीर्षकस्य धारणाय । तत्—

(क) पुरोगं महाखातं — पुरःकपालस्य^४ नेत्रच्छदिफलकाभ्यां भर्भरास्थनश्चालनीपटलेन च तन्मध्यसंहितेन निर्मिततलं विशेषादुच्चावचम् । तस्य पश्चिमसीमनिर्मापकं जतूकास्थनो लघुपक्षतिद्वयं, तन्मध्यस्थं त्रिकोण-कण्ठकञ्च । तत्रैते विशेषाः—

(१) दीर्घिकाख्य-सिरापरिखाया अप्रमाणः समुन्नतरेखारूपः । तत् दातिकाख्यकलाया अग्रिमांशसंयोगः ।

(२) शिखरंकण्टकं^५ नाम भर्भरास्थिचूडास्थितं प्रवर्द्धनं वर्णितपूर्वम् ।

(३) चालनीपटलं^६ बहुच्छिद्रमयं गन्धग्राहिण्योः प्रथमाख्यनाड्योर्धारणाय, छिद्राणि च तत्र तत्प्रताननिर्गमाय ।

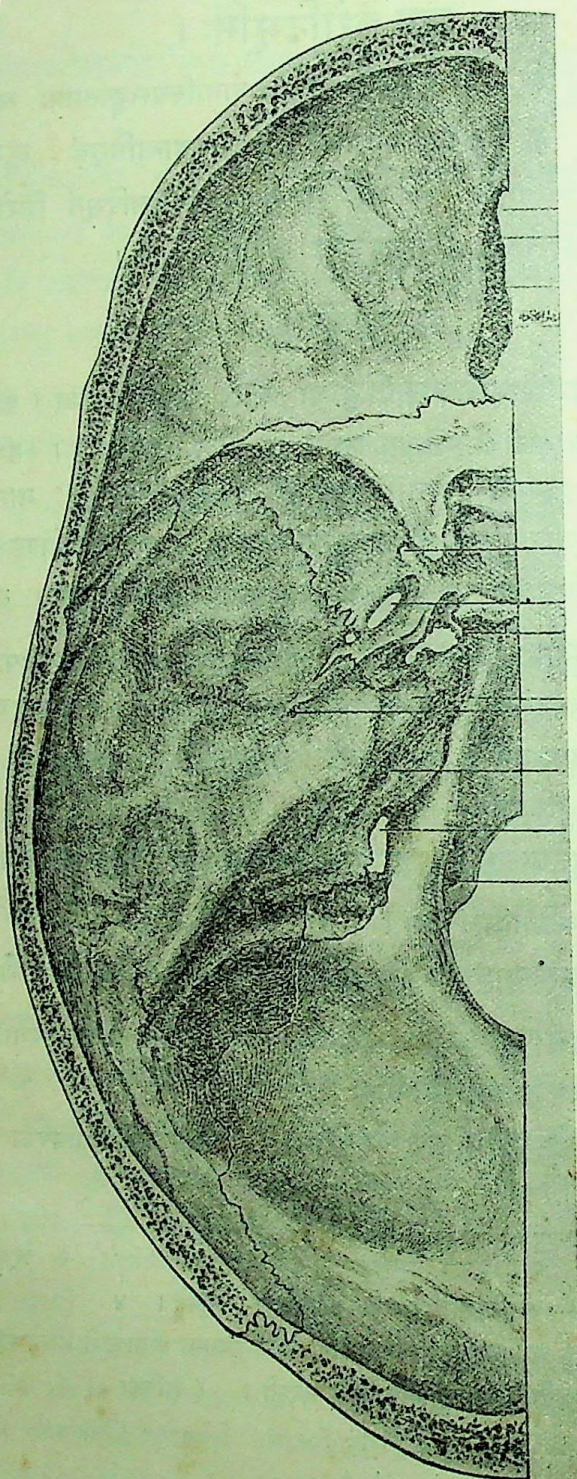
(४) धमनीप्रतानाङ्काः^७—पुरोगाया मस्तिष्ककलापोषण्या धमन्या धारणाय ।

१ Base of Skull. २ Upper surface of the Base of Skull. ३ भ्रुवोरधस्तात् करपत्रेण पूर्वापरच्छेदात् करोटिच्छदिमागस्य अपसारणं क्रियते । ४ Large Fossæ. ५ Anterior Fossa. ६ दात्रिका नाम मस्तिष्कावरणयाः कलाया दात्राकारो भागो मस्तिष्कस्य वामदक्षिणार्धविभाजक—इति मस्तिष्कवर्णनावसरे वक्ष्यते । (दात्रिका = Falx Cerebri). ७ Crista Galli. ८ Cribriform Plate for the First or Olfactory Nerves. ९ Markings of Anterior Meningeal Arteries.

[वामार्धम्]

४६ श चित्रम्—करोटिपीठं

पार्श्वकपालांशः
शङ्खस्थिसंहितः



भ्रूरास्थनः
चालनीपटलस्थानि
छिद्राणि गन्धग्राहि-
नाडीप्रतानप्रवेशाय

जतूकास्थनो लघुपक्षिः
दृष्टिनाडीरन्ध्रम्
पक्षान्तरालम्
वृत्तविवरम्
जाम्बवविवरम्
मातृकापरिखा
त्रिधारग्रन्थि-खातम्
वक्त्रनाडीरन्ध्रम्
कर्णान्तर्द्वारम्
अनुमन्याविवरम्
मूलकोटिपुरोगं छिद्रम्

पार्श्विकाख्या
सिरापरिखा

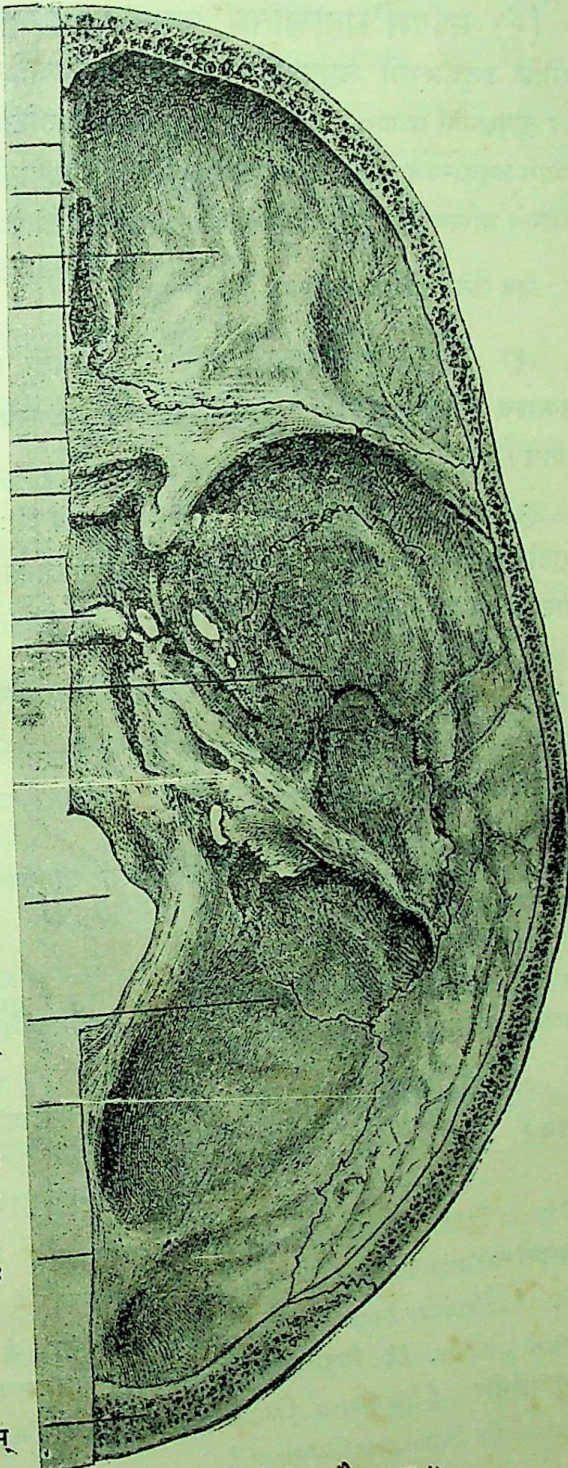
पश्चात्कपालम्

चित्रद्वयस्य संयोगात् चित्रे या पूणता बुधैः ।

नाम मस्तिष्कभूमेरुर्ध्वतलम्

[दक्षिणाङ्गम्]

पुरःकपालम्
 दीर्घिकाख्य-सिरा-
 परिखाया अग्रभागः—
 शिखरकण्टकम्
 पुरोगं महाखातम्
 चालनीपटलम्
 जतूकास्थनः
 त्रिकोणकण्टकम्
 लघुपक्ष्मतिश्च
 दृष्टिनाडीपरिखा
 दृष्टिनाडीरन्ध्रम्
 पोषणकखातम्
 जतूकास्थनो बृहत्पक्ष्मतिः
 मध्यममहाखातम्
 सुषुम्नापीठम्
 शङ्खुस्थनः अश्मतटिका
 महाविवरम्
 शङ्खुपश्चिमकपालयोः
 सन्धानरेखा
 पश्चिममहाखातम्
 पार्श्व-पश्चिमकपालयोः
 सन्धानरेखा
 महावर्तः
 पश्चिमकपालम्



एकैकार्धे यथा यत् स्यादन्यार्धेऽपि तथैव तत् ॥

(२) मध्यमं महाखातम्^१ उभयतो गभीरं मध्यतश्च समुन्नतम् । तस्य पुरःसीम्नि जतूकास्थनो लघुपक्षतिद्वयं त्रिकोणकण्टकसहितम् । पश्चिमसीम्नि तु तस्यैव सुषुम्नपीठं मध्यतः, उभयतश्च शङ्खास्थनोरश्मतटिके । निर्मीयते च तत् मध्यभागे जतूकास्थनः शरीरेण, पार्श्वयोस्तु तस्यैव बृहत्पक्षतिभ्यां शङ्खास्थिभ्याञ्च । तत्राधीयते मस्तिष्कस्य शङ्खिकपिण्डमेकैकतः सहान्यैर्विशेषैः ।

अत्र चैते विशेषाः संलक्ष्याः (४६ चित्रम्) —

(१) दृष्टिनाडीपरिखा^२ मध्यतः दृष्टिनाडी योजिकाया धारणाय । तदुभयतश्च दृष्टिनाडीरन्ध्रे^३ दृष्टिनाडीद्वयस्य^४ चाक्षुषधमनीभ्यां^५ सहितस्य निर्गमाय ।

(२) पञ्चान्तरालं^६ नाम त्रिकोणविवरमेकैकतः, तद् व्याख्यातपूर्वम् । तेन तृतीय-चतुर्थ-षष्ठ-नाडीनां, पञ्चमनाड्या नेत्रगात्रशाखायाः, सिराधमनीनाञ्च नेत्रगानामक्षिगुहयोः प्रवेशः ।

(३) पोषणकखातं^७ पोषणकाख्यक्षुद्रग्रन्थिधारणम् मध्यतः ।

(४) वृत्तविवरं^८ जाम्बविवरञ्च^९ एकैकतः, क्रमात् पञ्चमनाड्याः मध्यम पश्चिमशाखयोर्निर्गमार्थम् ।

(५) मातृकापरिखा^{१०} एकैकतः, सा मातृकाधमन्यास्त्रिकोणिकाख्य-सिरासरित्परिवृताया धारणाय ।

(६) त्रिधारग्रन्थिखातम्^{११} एकैकतः, तत् पञ्चमनाड्यास्त्रिधारग्रन्थि-धारणार्थं शङ्खास्थनोऽश्मकूटाग्रे दृश्यम् ।

(७) धमनीप्रतानाङ्काश्च^{१२} मध्यमायाः कलापोषणीधमन्याः प्रतान-धारणाय ।

१ Middle Fossa. २ Groove for optic Commissure. ३ Optic Foramina.
४ दृष्टिनाड्यौ = Optic Nerves. ५ Ophthalmic Arteries. ६ Foramen Lacerum
Anticus. ७ Pituitary Fossa. ८ Foramen Rotundum. ९ Foramen Ovale.
१० Carotid grooves. ११ त्रिधारग्रन्थिर्नाम पञ्चमनाड्या धारात्रयस्य मूलभूतो नाडीग्रन्थिः स
यथास्थानं वर्णनीयः (Semilunar Ganglion). तद्धारणार्थमिदं खातमिति तथा संज्ञा
(Depression for Semilunar Ganglion).

(३) पश्चिममहाखातं^१ पुनरतिगभीरं बृहत्तमञ्च । तत्ताधीयन्ते मस्तिष्कस्य पश्चिमं पिण्डमनुमस्तिष्कं सुषुम्नाशीर्षकञ्च । निर्मयते च तत् स्तोकमात्रेण जतूकाशरीरेणाग्रतः, पश्चिमकपालेन मध्यतः, पार्श्वयोः शङ्खास्थिभ्यां पार्श्वकपालयोः पश्चिमाधारकोणाभ्याञ्च स्तोकेन । विभागश्चास्य मध्यममहाखातात् शङ्खास्थनः अश्मतटिकाभ्याम् । अश्मतटिकयोस्तु संयुज्यते जवनिकाख्यो मस्तिष्कविभाजकः मस्तिष्कवृत्ति कलाभागः^२ ।

एते च पश्चिममहाखाते दृश्या विशेषाः—(४६ चित्रम्)

(१) सुषुम्नापीठं^३ वर्णितपूर्वम्, मध्यतः ।

(२) कर्णान्तद्वारम्^४ (एकैकतः) श्रुतिवक्त्राख्यनाडीद्वयप्रवेशाय ।

(३) महाविवरं^५ पश्चिमकपालमूल-मध्यस्थं सशीर्षकसुषुम्नानिर्गमाय ।

(४) मूलकोटिपुरोगं^६ विवरम् (एकैकतः), द्वादशनाड्याः निर्गमाय ।

(५) अनुमन्याविवरम्^७ एकैकतः, तत् पश्चिमकपालपार्श्वस्थं

मन्याखातमेव शङ्खास्थिसन्धानेन विवरीभूतम् । तेन अनुमन्याख्यस्थूलसिराया नवम-दशमैकादशाख्यनाडीनाञ्च निर्गमः, प्रवेशश्च कलापोषकधमनीद्वयस्य ।

(६) पार्श्विकाख्या सिरापरिखा^८ या पश्चिमकपालस्य पुरस्तले अनुप्रस्थमवस्थिता वर्णितपूर्वा । अपरा च तदनुपङ्गिणी सिरापरिखा अर्द्धचन्द्रिका नाम मन्याविवरान्ता एकैकतः । तत्र च दृश्यं गोस्तनच्छिद्रम् तत्परिखाप्रवेशिसिराधारणाय एकैकतः । ते शङ्खास्थनः कर्णमूल-पिण्डवर्णने (३५ चित्रम्) वर्णितपूर्वं ।

(७) दीर्घिकायाः सिरापरिखायाः पश्चिमप्रान्तः, महावर्त्तश्च^९ । ते च पार्श्व-पश्चिमकपालवर्णने व्याख्याते ।

१ Posterior Fossa. २ Tentorium Cerebelli. जवनिकावत् मस्तिष्कानुमस्तिष्कयो-
रन्तरालेऽवस्थानादियं संज्ञा । ३ Dorsum Sella. ४ Internal Auditory Meatus.
५ Foramen Magnum. ६ Anterior Condylloid Foramen. ७ Jugular Fossa.
८ Lateral Sinus. ९ Sigmoid groove. १० Mastoid Foramen. ११ Longitudinal
Sinus. १२ Torcular Herophili.

करोटितलम् ।

करोटितलं, करोटिभूमितलं वा नाम (४७श चित्रम्) करोटिभूमे-
रधस्तलम्, तदतिमातमुच्चावचं मुख-गलविवरयोश्छदिभूतम् । तस्य त्रयो
भागाः—पुरोभागः ऊर्ध्वहनुमण्डलप्रधानस्तालुपटलधरः, मध्यभागः तालुमहा-
विवरयोरन्तरालस्थः कण्ठविलच्छदिभूतः, पश्चिमभागः महाविवरादारभ्य उत्तर-
तोरणिकान्तः । तत्र—

(क) पुरोभागे लक्षणीये द्वे—दन्तोदूखलमण्डलं, तालुपटलञ्च । तयोः—

दन्तोदूखलमण्डलं^१ दन्तोदूखलानां षोडशानां धारणम् । दन्ता ह्यत्र
ऊर्ध्वहनुमण्डले एकैकार्धे अष्टाष्टौ—इति षोडश । तद्यथा—कर्त्तनकाख्य^२ एकः
मध्यरेखापार्श्वे, तदुवहिःपार्श्वे एको रदनकाख्यः^३, तदुवहिःपार्श्वे द्वौ अग्रचर्वणकाख्यौ,^४
चरमतश्च पश्चात् त्रयः पश्चिमचर्वणकाख्याः^५ (४७श चित्रम्) । अष्टम
चर्वणकाणाञ्च चतुर्णां प्रसिद्धा ज्ञानदशन^६ संज्ञा, तेषां यौवनारम्भे प्रौढौ वा
समुद्गमः । राजदन्तौ^७ इति तु ऊर्ध्वहनुमण्डले मध्यरेखामुभयतः स्थितयोः
कर्त्तनकदन्तयोः संज्ञा प्राचीना । तत्र कर्त्तनक-रदनकानामेकैकं मूलम्,
अग्रचर्वणकानां द्वे द्वे, पश्चिमचर्वणकानान्तु त्रीणि त्रीणि मूलानि ।

त एते प्रौढस्योर्ध्वहनुमण्डलस्था दन्ता व्याख्याताः । अधोहनुमण्डले-
ऽप्येवम् । एवञ्च साकल्येनोभयोर्हनुमण्डलयोः दन्ता द्वाविंशत् प्रौढस्य । यौवना-
रम्भे तु अष्टाविंशतिरेव, ज्ञानदशननां विलम्बेनोद्भावात् ।

बाल्ये तु एकैकस्मिन् हनुमण्डले दशैव दन्ताः—एकैकार्धे पञ्च पञ्चेति,
पश्चिमचर्वणकानामभावात् । एवञ्च साकल्येन बाल्ये दशना विंशतिरेव ।
ते विनश्चराः^८ प्राग्यौवनारम्भात् । दन्तनिर्माणविस्तरन्तु अग्रे कथयिष्यामः ।

१ Base of the Skull. २ दन्तोदूखलानां धारणादूर्ध्वहन्वोर्मिलितयोर्दन्तोदूखलमण्डलमिति
संज्ञा (Alveolar Arch). ३ Incisors. ४ Canine. ५ Bicuspid or Premolars.
६ Molars. ७ Wisdom Tooth. लोकेऽपि “अकल दांत”—इति संज्ञा । ८ “राजदन्तौ तु
मध्यस्थादुपरि श्रेणिकौ क्वचित्” इति हेमचन्द्रः । विनश्चरत्वाच्च तेषां “दुग्धदन्ता” इति संज्ञा लोके ।

तालुपटलं^१ नाम मुखविवरस्य च्छदिभागः स ऊर्ध्वहन्वस्थोस्तालु-
फलकाभ्यां, तालवस्थोश्च ह्रस्वपत्रकाभ्यां मध्यरेखायां संहिताभ्यां निर्मितः ।
तस्य च मध्यभागे या परस्परसन्धानरेखा अनुलम्बा, सा ऊर्ध्वहनुतालु-
फलकयोस्ताल्वस्थिभ्यां सन्धानाङ्कुरेखया अनुप्रस्थया लङ्घिता । अनयोश्च रेखयोः
परस्परलङ्घिनोः स्वस्तिकसीमन्तिकेति^२ संज्ञा । तत्र मध्यरेखायामग्रतः
खातं चतुश्छिद्रम् अग्रतालुखातं^३ नाम । तस्य पूर्वापरच्छिद्राभ्यां^४ नासातालु-
काख्यनाड्योः, पार्श्वच्छिद्राभ्याञ्च^५ धमन्योः, क्रमान्नासाभूमौ तालुपटले च प्रवेशः ।
अनुप्रस्थरेखायास्तु प्रान्तयोरेकैकतश्छिद्रम् पश्चिमतालुविवरं^६ नाम, ताभ्यां
तालुनाड्योस्तालुपटले प्रवेशः ।

पश्चिमप्रान्ते च तालुपटलस्य मध्यरेखायां कण्टकं—तालुपृष्ठकण्टकं^७
काकल-कण्टकं वा नाम, तत्र काकलकस्य^८ संयोगः । पश्चिमप्रान्तधारायां तु
कीमलतालुनः ।

(ख) मध्यभागे पुनः करोटितलस्य लक्षणीयानि—

कण्ठपटलं, गलविलपटलं वा नाम गलविलच्छदिभूतो भागः
जतूकाशरीरस्य पश्चिमकपालमूलपिण्डेन सन्धानान्निष्पन्नः । तत्सन्धानरेखा चात्र
स्फुटा मूलजातूका^९ नाम । तस्य पुरोभागे पश्चिमं नासागुहाद्वारं सीरिकास्थना
द्विधा विभक्तम्, तत्र चैकैकतो जतूकाचरणद्वयं तत्पार्श्वसीमभूतम् ।

अन्यच्चात्र करोटितले दृश्यम् अनुमन्याविवरम् अनुमन्याख्यसिरा-
धारणाय । मातृकासुरङ्गाद्वारं^{१०} च तद्वहिःस्थं अन्तर्मातृकाधमनीप्रवेशार्थम् ।

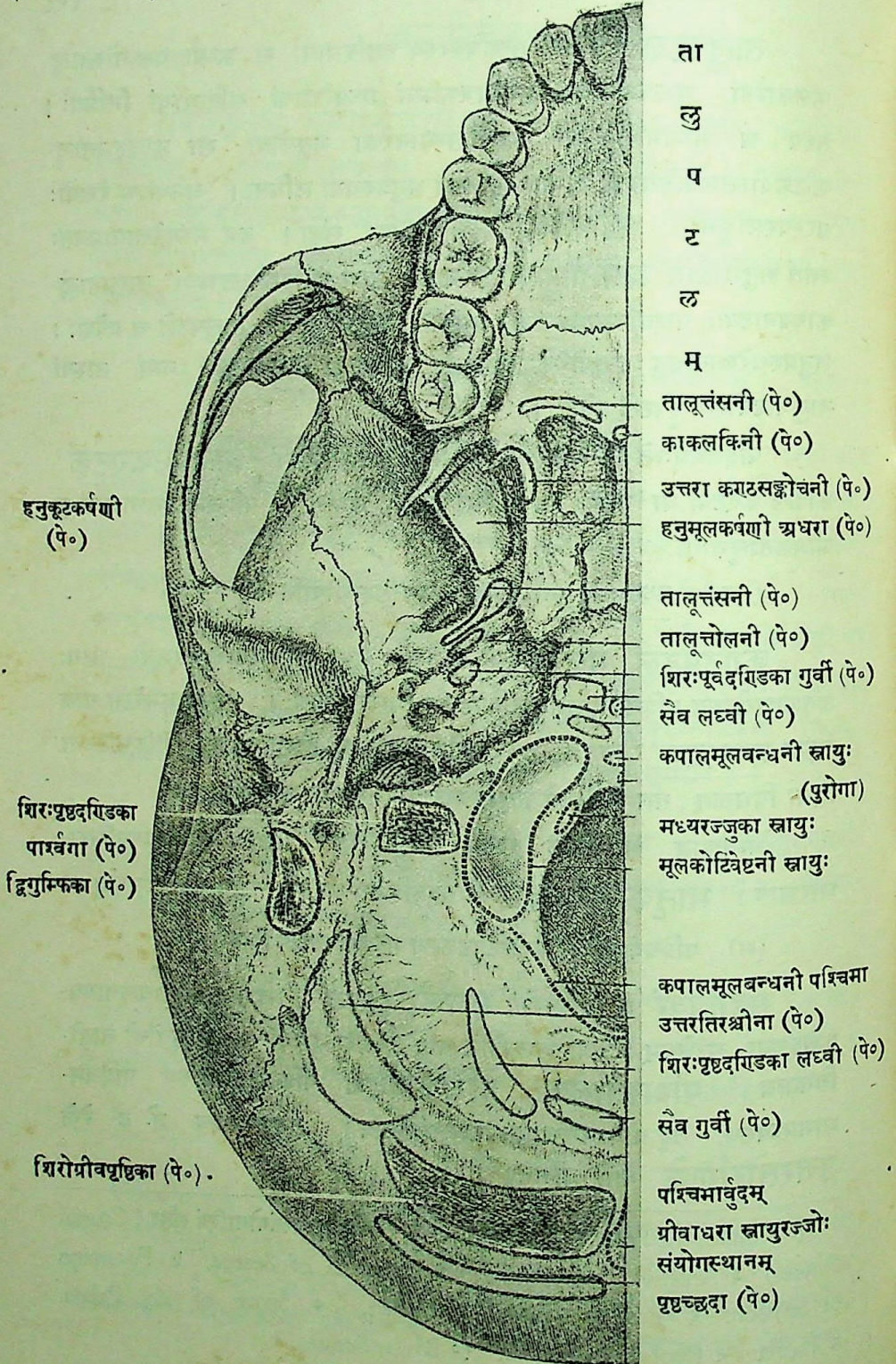
(ग) पश्चिमभागे तु करोटिपटलस्य मध्यतो लक्षणीयान्येतानि—

महाविवरं सुषुम्नाधारणं, मूलकोटिद्वयञ्च तदुभयतश्चूडावल्याख्य-
कशेरुकया सन्धेयम् । प्रतिमूलकोटि च द्वे विवरे पुरःपश्चिमस्थे पूर्वोक्ते नाडी-
निर्गमाय । पश्चिमालिका, पश्चिमार्बुदञ्च पश्चिमकपालस्य पश्चिम-
भागमध्यस्थं, तद् ग्रीवाधराख्यस्नायुरज्जुसंयोगाय । तदुभयतश्च द्वे द्वे रेखे
उत्तरतोरणिके नाम वर्णितपूर्वे ।

१ Vault of the Palate. २ स्वस्तिकाकारेण रेखयोः परस्परसंयोगादियं संज्ञा (Crucial Suture) ३ Anterior Palatine Fossa. ४ Foramina of Scarpa. ५ Foramina of Stenson. ६ Posterior Palatine Foramen. ७ Spine of the Palate. ८ Uvula. ९ Roof of the Throat. १० Basilar Suture.

(वामार्द्धम्)

[५० श चित्रम्—



चित्रद्वयस्य संयोगात् विज्ञेया पूर्णता बुधैः ।

करोटितलम्

(दक्षिणार्द्धम्)

कर्त्तनकौ

← रदनकः

अग्रचर्वणकौ

त्रयः पश्चिमचर्वणकाः

हनुजातृकखातम्

← गण्डचक्रम्

गंडोत्तरखातम्

शङ्खास्थि

पश्चिमकपालम्

अग्रतालुखातं
(सविवरचतुष्टयम्)

ऊर्ध्वहनोः

तालुफलकम्

स्वस्तिकसीमन्तिका

तालवस्थनो ह्रस्वपत्रकम्

पश्चिमतालुविवरम्

तालुपृष्ठकण्टकम्

जतूकाचरणस्थमङ्कुशम्

नासागुहायाः पश्चिमद्वारम्

जतूकास्थनो बृहत्पञ्जतिः

सौरिकास्थि

जाम्बवविवरम्

मातृकापरिखाद्वारम्

पश्चिमकपालस्य मूलपिण्डम्

मातृकाविवरम्

मूलकोटिपुरःस्थं विवरम्

मध्यरज्जुकाख्य-

न्नायुसंयोगि कलायकम्

मूलकोटिः

महाविवरम्

मूलकोटिपश्चिमं विवरम्

गोस्तनच्छिद्रम्

पश्चिमालिका

पश्चिमाबुदम्

उत्तरतोरणिका

पश्चिमकपालम्

एकैकार्धे यथा यत् स्याद् अन्यार्द्धेऽपि तथैव तत् ।

एकैकस्मिंश्च पार्श्वे करोटितलस्य लक्षणीया एते विशेषाः—

गण्डोत्तरकूटं, गण्डास्थि, गण्डप्रवर्द्धनकञ्चेति त्रयं मिलितं गण्डचक्रं^१ नाम, तद् गण्डोत्तरखातस्य बहिःपरिधिभूतम् । शङ्खास्थि तु दृश्यानि—

हनुसन्धिस्थालकं हनुमुण्डधारणार्थम्, कर्णकुहरं कर्णबहिर्द्वारभूतम्, गोस्तनप्रवर्द्धनकं शिफाप्रवर्द्धनकञ्च । तानि वर्णितपूर्वानि ।

सन्धानाङ्गाश्चात्र ऊर्ध्वहन्वस्थनो—गण्डास्थना जतूकाबृहत्पक्षत्या च । गण्डास्थनः—ऊर्ध्वहनु-शङ्खास्थि-जतूकाभिः । शङ्खास्थनश्च — जतूकागण्डास्थि-पश्चिमकपालैरिति ।

पेश्यः पुनरिहः करोटितलस्य एकैकार्द्धे संयुज्यन्ते बहवः । तासां प्रभव-निवेश-नाम-संख्यादीनि चित्रेषु द्रष्टव्यानि, स्मर्त्तव्यानि च पेशीवर्णनतः ।

सैषा करोटिभूमिरुभयोस्तलयोर्व्याख्याता ।

अथ करोटिपक्षौ ।

करोटिपक्षौ^२ नाम करोटिपार्श्वदेशौ त्रिकोणप्रायौ ज्याकृष्टधनुराकारौ (५१श चित्रम्) । तयोरेकैकस्योर्ध्वसीमा शङ्खतोरणिका नाम धनुर्वक्रा रेखा अपाङ्गतः पश्चिमसीमन्तावधि प्रसृता । अधःसीमा त्वधोहनोः कोण एव । ऊर्ध्वसीमगायाश्च रेखायाः प्रान्तद्वयं चेत् संयोज्यते हनुकोणेन, तदा करोटिपक्षस्य पूर्वापरसीमोर्निर्देशः । (५२ चित्रम्)

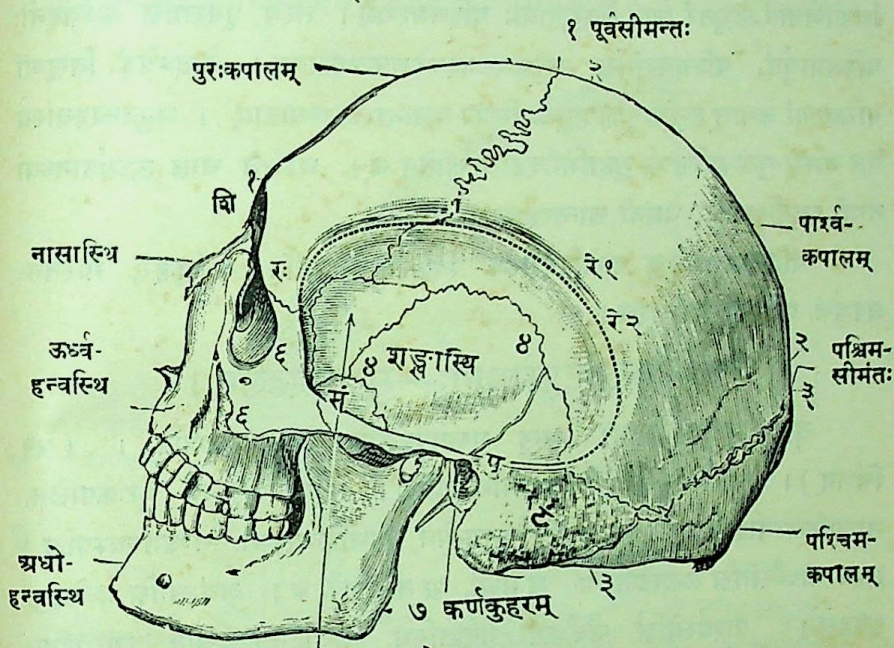
निर्माणं च तस्य पञ्चानामस्थनां संयोगेन—पुरस्तात् पुरःकपालेन । पार्श्वतः पार्श्वकपालेन, शङ्खास्थना, जतूकास्थना च । पश्चमतः पश्चिमकपालेन । सोमन्ताश्च तत्तत्सन्धानकृतास्तैव दृश्याः ।

एकैकस्य च करोटिपक्षस्य द्वौ भागौ,—पुरोभागो हनुसन्धिस्थालकस्य पुरःस्थः, पश्चिमभागस्तत्पश्चिमस्थश्चेति । तत्र—

पुरोभागे दृश्यानि त्रयोणि खातानि—शङ्खखातं, गण्डोत्तरखातं, हनुजातूक-खातञ्चेति । तेषु—

१ तदेतत् त्रयं चक्रार्द्धाकारं गण्डबहिःस्थम् (Zygomatic arch). २ Side of the skull (Norma Lateralis).

५१ चित्रम्—करोटिपक्षः (वामः) ।



हनुकोणः
जतूकास्थि नो बृहत्पक्षतिः

(रे १ = शङ्खतोरणिका रेखा)

अङ्गयोजना च इकरोटिपक्षनिर्देशाय त्थम्—६-६-७-३-३-३-१-२ः । शङ्खतोरणिकाप्रान्तौ च ६-३—इत्यङ्गाभ्यां योजनयौ ।

(क) शङ्खखातं^१ नाम अद्वचन्द्राकां खातं गण्डचक्रादूर्ध्वस्थम् । तस्य च निर्माणमस्थिपञ्चकांशैर्द्रष्टव्यम् । तद्वया—

गण्डं पुरःकपालञ्च जतूकापक्षतिस्तथा ।

शङ्खं पार्श्वकपालञ्च पञ्चकं शङ्खखातकृत् ॥

पर्यते च तद् समांसरीरे शङ्खच्छदाख्यपेश्या तत्र संयुक्तेन, छादयति च तां शङ्खावरणी नाम स्थूलकलामयी प्रावरणी ॥

(ख) गण्डोत्तरखातं^२ गण्डान्तरखातं वा नाम गण्डचक्रान्तःसीमस्थं खातं हनुकुन्तधारणम् । तदप्यापूर्यते शङ्खच्छदाख्यपेश्या अधोभागेन, पेशीभ्याञ्च हनुकूटकर्षणीसंज्ञाभ्याम् । धार्यन्ते च तत्र आन्तरहानव्याः सिराधमन्यः, पञ्चमनाड्या हानव्यशाखाश्च ।

अनयोश्च खातयोरपृथक्त्वेऽपि ऊर्ध्वाधरांशभेदात् संज्ञाद्वयम् ।

१ Temporal Fossa. २ Infra-temporal or Zygomatic Fossa.

(ग) हनुजातूकखातं^१ नाम ऊर्ध्वहनुजतूकास्थनोः सन्धानोपरि स्थितं त्रिकोणप्रायं लघुतरं खातं नेत्रगुहायाः पश्चिमस्थम् । तस्य पूर्वसीम्नि ऊर्ध्वहनुः पश्चिमावुदं, पश्चिमसीम्नि जतूकास्थनश्चरणफलकद्वयम् । केन्द्रञ्चेदं तिसृणां परिखाणां क्रमात् हनुजातूका-हनुचरणिका-पक्षान्तरालाख्यानाम्^२ । अनुबन्धश्चास्य नेत्र-नासा-मुख-मस्तिष्क-गुहाभिर्गण्डाधरखातेन च । धार्यन्ते चात्र ऊर्ध्वहानव्या नाडी सप्रन्थिका^३, धमनी चान्तरहानव्या नाम ।

पश्चिमभागे तु करोटिपक्षस्य विशेषादर्शनीयानि—कर्णकुहरं, गोस्तन-प्रवर्द्धनं, पश्चिमसीमन्तश्च ।

अथ करोटिपुरोभागः—मुखमण्डलम् ।

करोटिपुरोभागः^४ खलु मुखमण्डलनिर्मापको वृत्तप्रायः । (५२ चित्रम्) । निर्मायते चासौ अष्टाभिरस्थिभिः । तद्यथा—ऊर्ध्वं पुरःकपालेन, नासास्थिभ्याञ्च । अधस्तात् ऊर्ध्वहनुयुग्मेन, अधोहन्वस्थना, गण्डास्थिभ्याञ्च । तस्य चोर्ध्वसीम्नि ललाटफलकं, भ्रूमध्यं, भ्रूतोरणिके च । अधःसीम्नि अधोहनु-मण्डलम् । पार्श्वसीम्नि चैकैकतो गण्डास्थि, अधोहनुकूटञ्चेति—चतुःसीम-निर्देशः । तत्र चैतानि लक्षणीयानि अधोऽधः क्रमेण—

(१) कूर्चकं^५ (भ्रूमध्यं वा), वर्णितपूर्वम् । तदुभयतश्च भ्रूतोरणिके^६ ।

(२) नासास्थिनी परस्परसन्धानरेखासहिते । अनयोश्च पुरःकपालेन सन्धानस्थानं नासामूलं नाम । नासास्थनोश्च संहितयोर्नासासेतुरिति संज्ञा ।

(३) नासापुरोद्वारं^७ त्रिकोणप्रायम् । सन्धीयते चास्य परिधिः पार्श्वयोर्नासापार्श्विकाभ्यां तरुणास्थिभ्यां, मध्ये च नासाग्रप्राचीराख्येन तरुणास्थना । अधःसीम्नि चास्य भूमौ दृश्यं नासाग्रकण्टकम्^८ । दन्तमूलविलश्च तदधस्तादेकैकतः ।

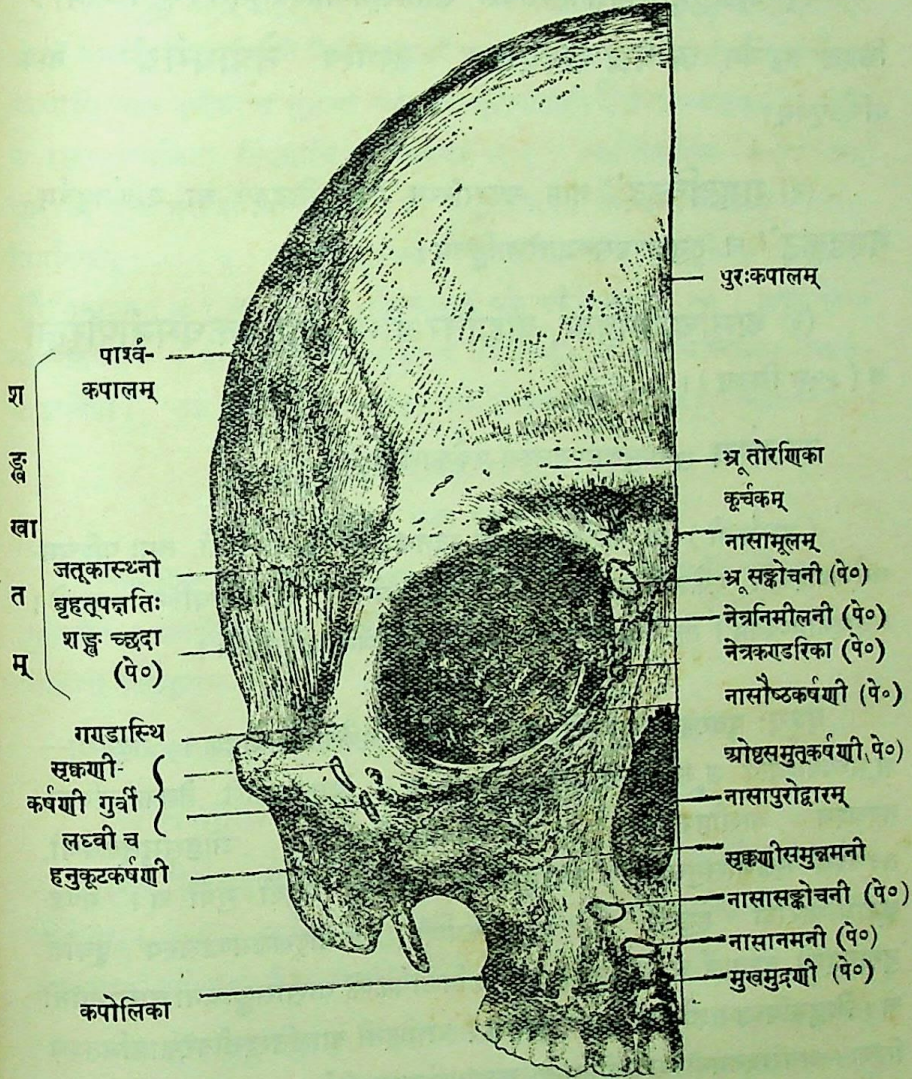
(४) सोदूखलं दन्तमण्डलद्वयम्, चिबुकसन्धानिका रेखा, चिबुक-पिण्डश्च ।

१ Spheno-maxillary Fossa. २ Spheno-maxillary, Pterygo-maxillary and Sphenoidal Fissures. ३ Superior Maxillary Nerve with Meckel's ganglion. ४ Anterior Region of the Skull (Norma Facialis). ५ Glabella. ६ Superciliary Ridges. ७ Nasion. ८ Bridge of the Nose. ९ Anterior Nares. १० Sub-nasal Point.

चतुर्थोऽध्यायः ।

१०७

५२ चित्रम्—मुखमण्डलस्य दक्षिणार्द्धम् (अधोहनुवर्जम्)



चर्वणकाः रदनकः कर्त्तनकौ

इमानि चात्र मुखमण्डल पार्श्वतो दृश्यानि एकैकार्धे—

(१) नेत्रगुहा^१ अक्षिगोलकधरा सप्तास्थिनिर्मितप्राचीरा (५२ चित्रम्) ।

छिद्रञ्च तदूर्ध्वम् अधिभ्रु^२ वाख्यम् । तदधश्च नेत्राधरीयं^३ नाम वर्णितपूर्वम् ।

(२) गण्डच्छिद्रं^४ नाम गण्डास्थिन् छिद्रं छिद्रद्वयं वा वर्णितपूर्वम्, गण्डकूटं^५ च हनु-गण्डसन्धानरेखाङ्कितम् ।

(३) अनुचिबुकविवरं^६, बाह्यतिरश्चीना रेखा, वक्त्रधमनीपरिखा^७ च (४५ चित्रम्) ।

दन्ताश्च समग्रमुखमण्डलस्य एकैकार्धे यथा—

(ऊर्ध्वहनौ) द्वौ कर्त्तनकौ, एको रदनकः, द्वौ अग्रचर्वणकौ, त्रयः पश्चिम-चर्वणकाश्चेति एकैकार्धे ऊर्ध्वहनोरष्टौ । एवं षोडश ऊर्ध्वहन्वस्थि समग्रे । अधोहनावप्येवम् । तद्विवरणविस्तरः करोटितलवर्णने वर्णितपूर्वः ।

पेश्यः पुनरत्र संयुज्यन्ते मुखमण्डलस्य एकैकार्धे षोडश । तद्यथा— भ्रूमध्यपार्श्वतो भ्रूसङ्कोचनी नेत्रनिमीलनी च ; नेत्रान्तःकोणे नेत्रकण्डरिका, तदधश्च नासौष्ठकर्षणी ; नेत्राधरीयविवरोपरिष्ठात् ओष्ठसमुत्कर्षणी, तदधश्च सूक्षणीसमुन्नमनी । गण्डकूटे सूक्षणीकर्षणी लघ्वी गुर्वी च । गण्डकूटाधोधारायां हनुकूटे च हनुकूटकर्षणी । दन्तोदूखलमण्डलस्य पूर्वार्द्धे मुखमुद्रणी, पश्चार्द्धे च कपोलिका, दन्तमूलविलोपकण्ठे नासासङ्कोचनी नासानमनी च ; चिबुकपिण्डपार्श्वतः चिबुकोत्क्षेपणी । अधोहनौ बाह्यतिरश्चीनरेखामभितश्च तिस्रः—अधरावनमनी, सूक्षणीनमनी, गलपार्श्वच्छदा चेति । (४५, ५२ चित्रयोः)

१ Orbit. नेत्रगुहाविशेषास्तु अनुपदं पृथग् वर्णनीयाः ३ Supra-orbital Foramen.

३ Infra-orbital Foramen. ४ Malar Foramen. ५ Malar Prominence.

६ Mental Foramen. ७ Groove for Facial Artery.

चतुर्थोऽध्यायः ।

१०६

अथ नेत्रगुहे ।

नेत्रगुहे नेत्रकोटरे^१ वा नाम (५२ चित्रम्) धुस्तूरपुष्पसदृशायतने^२ कोटरे नासामुभयतः स्थिते नेत्रगोलकधरे । तयोरेकैका सप्तास्थिनिर्मितप्राचीरा । अस्थोनि चात्र एकैकस्यां गुहायां चत्वारि गुहावहिर्द्वारपरिधिनिष्पादकानि, त्रीणि च गुहामूलमभितः स्थितानि । तदुपस्था—(१) अश्रुपीठास्थि—अश्रुवाहिका-धारणम् अन्तःपरिधिनिर्मापकम् । (२) अग्रकपालस्य नेत्रच्छदिफलकमूर्ध्वपरिधि-निर्मापकम् । (३) ऊर्ध्वहन्वस्थनो नेत्रपीठफलकं नेत्रभूमिनिष्पादकमधः-परिधिस्थम् । (४) गण्डास्थनः अक्षिफलकं बहिःपरिधिस्थम् । (५) जतूकास्थनः पक्षतिद्वयम् । (६) ताल्वस्थनश्चूडास्थं प्रवर्द्धनम् । (७) भर्भरकस्य नेत्रान्तः-पीठञ्चेति । तत्र शेष त्रयं नेत्रगुहामूलमभितः प्रततम् । एष चैषां संग्रहश्लोकः—

अश्रूध्वहनुगण्डाग्रकपालैर्द्वारि वेष्टिता ।

मूले नेत्रगुहा नद्धा जतूका तालु-भर्भरैः ॥

साकल्येन तु—जतूका-भर्भरकाऽग्रकपालानामुभयोर्नेत्रगुहयोः प्रवेशात् नेत्र-गुहाद्वये^३ एकादशैवास्थिनीति विशेषः । सन्धानाङ्गाश्चात्र तत्तदस्थनामालक्ष्या-विशेषेण नेत्रगुहान्तः ।

एकैकस्याश्च नेत्रगुहायाः षड् भागाः कल्प्यन्ते । तदुपस्था—

(क) नेत्रगुहाद्वारं^४ वृत्तायतं यथोक्तपरिधिकम् ।

(ख) नेत्रगुहामूलं^५ धुस्तूरपुष्पवृन्तवत् संकुचितप्रायं यथोक्तेनास्थितयेन संवेष्टितम् । तत्र च दृश्यं दृष्टिनाडीरन्ध्रं^६ पक्षान्तःरालश्च वर्णितपूर्वम्, नेत्रगुहान्तः-प्रवेशिनीनां दृष्टिनाडी-सिरा-धमनीनां प्रवेशाय ।

(ग) नेत्रगुहाच्छदिः^७ गुहापटलभूतः, स अग्रकपालस्य नेत्रच्छदिफलकेन जतूकास्थनो लघुपक्षत्या च निर्मितः । दृश्यते चात्र बहिःकोणे अश्रुग्रन्थिखातम्, अन्तःकोणे च वक्रोर्ध्वदिशि^८ न्याय्यनेत्रपेश्याः आकर्षसंयोगभूमिः^९ ।

१ Orbits. २ सादृश्यञ्च पुरःप्रान्ते छविस्तृततया पश्चिमप्रान्ते च सङ्कुचिततया । ३ अश्रु-पदेनात्र अश्रुपीठास्थि गृह्यते । नद्धा सम्बद्धा संवेष्टितेति यावत् । ४ तेषां त्रयाणां मध्यस्थत्वात् न चतुर्दश । ५ Anterior Opening of the Orbit. ६ Posterior Opening of the Orbit, ७ Roof of the Orbit. ८ सेयं नेत्रपेशी अङ्गुष्ठाकारेण तस्यास्थिमयेनाकर्षणं धृता तदाभित्य विवर्तते । स चाकर्ष इह संलग्न इति । तदेतत् पेश्याध्याये वर्णयिष्यते ।

(घ) नेत्रगुहाभूमिः^१ भूम्ना ऊर्ध्वहनोर्नेत्रपीठफलकेन, स्तोकमात्राभ्याञ्च गण्डतालवस्थनोर्शाभ्यां निर्मिता समतलप्राया ।

(ङ) अन्तःप्राचीरं^२ च नेत्रगुहायाः ऊर्ध्वहनोर्नासाकूटपार्श्वेनाऽश्रुपीठेन, भ्रूरास्थनो नेत्रान्तःफलकेन, स्तोकमात्रेण च जतूकाशरीरपार्श्वेन निर्मितम् । तत्र च विशेषतो दृश्या अश्रुवाहिका नासाभिमुखी^३ ।

(च) बहिःप्राचीरं^४ तु नेत्रगुहायाः पूर्वार्द्धे गण्डास्थनोऽक्षिफलकेन, पश्चार्द्धे तु जतूकास्थनो बृहत्पक्षत्या निर्मितम् । दृश्यञ्चात्र शङ्खगण्डिकरन्ध्रमार्गस्य^५ विवरं, विवरद्वयं वा कदाचित् ।

अनुबन्धश्च एकैकस्या नेत्रगुहायाः द्वाभ्यां गुहाभ्यां, त्रिभिश्च खातैः । तद्वयथा—दृष्टिनाडीरन्ध्र-पक्षान्तरालाभ्यां शिरोगुहया । अश्रुवाहिकापथेन नासागुहया । खातानि च तदनुबन्धीनि शंख-गण्डोत्तर-हनुजातूकाख्यानि हनुजातूकाख्य परिखापथेन ।

विवराणि च नेत्रगुहान्तर्बहिश्च तत्परिधौ नवसंख्यानि । तद्वयथा—मूले—दृष्टिनाडीरन्ध्रम्^६ दृष्टिनाड्योः प्रवेशाय । तद्बहिः पक्षान्तरालं^७, तेन तृतीय-चतुर्थ-षष्ठ-नाडीनां पञ्चमनाड्याः नेत्रगुहायाः नेत्रगुहान्तर्बहिःसिरा-धमनीनां नेत्रगुहाप्रवेशः । हनुजातूकाखातञ्च^८ । तदन्तःसोमिभ्रूकरकविवरद्वयं^९ सूक्ष्मम् । अन्तःकोणे अश्रुवाहिका^{१०} । ऊर्ध्वपरिधौ अधिभ्रुवम्^{११} । अधःपरिधौ नेत्राधरीयं^{१२} विवरम् । बहिःकोणे शङ्खगण्डिकाख्यो^{१३} रन्ध्रमार्गश्चेति ।

पेश्यस्तु नेत्रगुहावेष्टनप्राचीरेषु संयुज्यन्ते सप्त—क्रमात् ऊर्ध्वदर्शिनी, अधोदर्शिनी अन्तर्दर्शिनी, बहिर्दर्शिनी, वक्रोर्ध्वदर्शिनी, वक्राधोदर्शिनी चेति—षट् नेत्रगोलके सम्बद्धाः । सप्तमी च अश्रुविसर्जनी^{१४} नाम अश्रुवाहिकायाः पश्चिमत इति ।

सेयं नेत्रगुहा नातिविस्तरं व्याख्याता ।

१ Floor of the Orbit. २ Inner wall. ३ अतिघृतमश्रुजलमनेनैव अश्रुवाहिकापथेन नासाभ्यन्तरे प्रविशति । ४ Outer wall. ५ Malar Canal. ६ Optic Foramen. ७ Foramen Lacerum Anticus. ८ Spheno-maxillary Fissure. ९ Ethmoidal Canals. १० Lachrymal Canal. ११ Supra-orbital Foramen. १२ Infra-orbital Foramen. १३ Tempero-malar Canal. १४ Tensor Tarsi.

चतुर्थोऽध्यायः ।

१११

अथ नासागुहे ।

नासागुहे^१ द्वे घ्राणेन्द्रियाधिष्ठाने श्वासवायोरादानविसर्जनद्वारभूते च । तयोर्मध्यतः प्राचीरकं प्रतन्वास्थिमयम् । सम्बन्धश्च तयोः प्रधानतो गलविलेन^२, अनुबन्धश्च अप्रकपाल-जातूका-भ्रूकरकोर्ध्वहनुगर्भस्थैः कोटरैः । निर्माणञ्च चतुर्दशभिरस्थिभिः, — भ्रूकर-जतूका-पुरःकपालाख्यैस्त्रिभिः शिरोऽस्थिभिः, अधोहनु-गण्डास्थिद्वयवर्जं सर्वैः मुखमण्डलास्थिभिश्चेति^३ ।

एकैकस्याश्च नासागुहायाः षड् भागाः कल्प्यन्ते वर्णनासौकर्याय । तद्व्यथा (५३ चित्रम्)—

गुहाच्छदिः, गुहाभूमिः, अन्तःप्राचीरम्, बहिःप्राचीरम्, नासापुरोद्वारम्, नासापश्चिमद्वारञ्चेति ।

तिस्रश्च एकैकस्यां नासागुहायां सुरङ्गाः— ऊर्ध्वसुरङ्गा, मध्यसुरङ्गा, अधःसुरङ्गा चेति । ताः बहिःप्राचीरवर्णनायामन्तर्भूताः । तत्र—

नासागुहाच्छदिः^४ नासागुहायाः पटलम् । तस्य निर्माणमप्रतो नासास्थिभ्यां, समूलेन च पुरःकपालस्याप्रकण्टकेन ; मध्ये भ्रूकरास्थनश्चालनी-पटलेन । पश्चिमतो जतूकास्थनः शरीरपिण्डेन । तत्र नासास्थितले नासानाड्योः, चालनीपटलस्थैश्छिद्रैश्च घ्राणनाडीप्रतानानां नासान्तःप्रवेशः ।

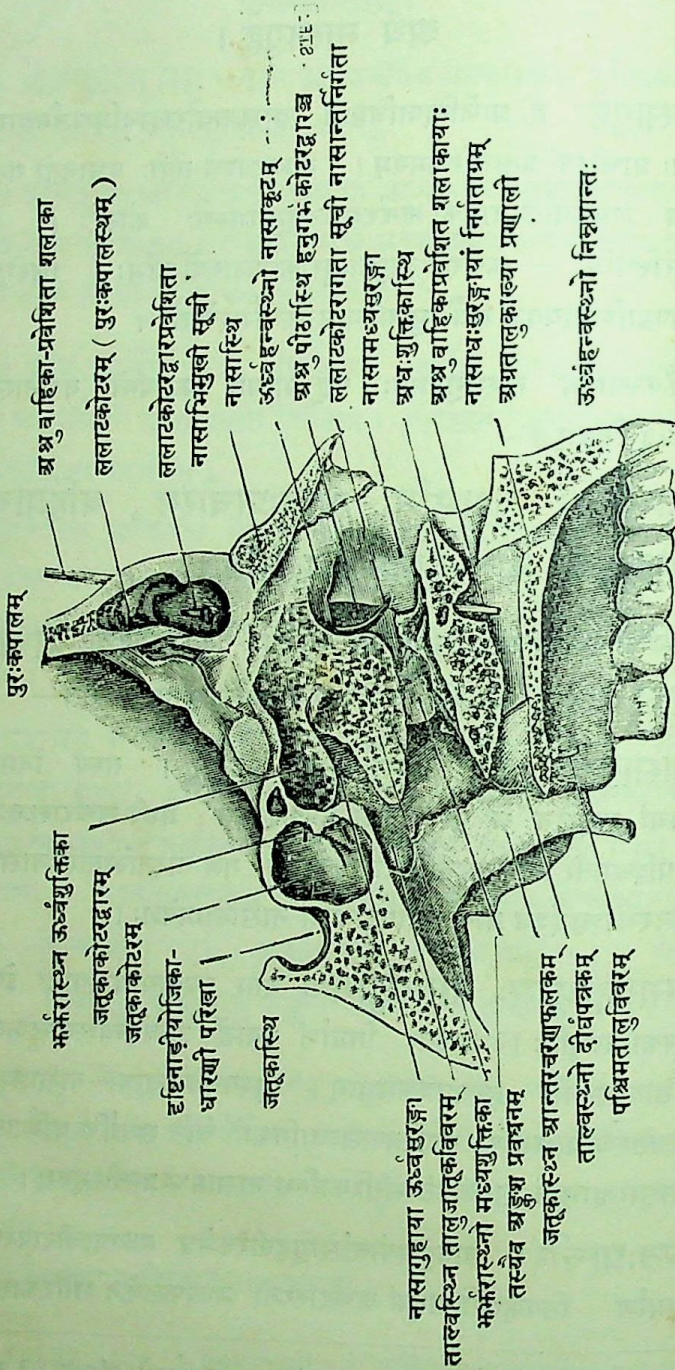
नासागुहाभूमिः^५, नासाभूमिर्वा नाम स्वनामव्याख्याता ईषत्कोरो-दरा नासिकातलभूमिः । तस्या निर्माणं पूवार्द्धे ऊर्ध्वहन्वोस्तालुफलकाभ्यां, पश्चार्द्धे ताल्वस्थनोः ह्रस्वपत्रकाभ्याम् । दृश्यानि चात्र—नासाप्रकण्टकम्, अप्रतालुकखातस्थविवराणि, स्वस्तिकसन्धानिका^६ चेति सर्वाणि वर्णितपूर्वाणि । मध्ये च नासागुहाभूमौ सन्धीयते सीरिकास्थि नासामध्यप्राचीरभूतम् ।

अन्तःप्राचीरं^७ तावदुभयोर्नासागुहयोरेकमेव मध्यप्राचीरापरपर्यायम् । तस्य निर्माणं त्रिकुसंहिताभ्यां भ्रूकरास्थनो मध्यफलकेन सीरिकास्थना च ।

१ Nasal fossæ. २ गलविलं नाम गलाभ्यन्तरं नासा-मुखकुहरयोः पश्चिमम् । ३ एकादशभि-रिति फलितार्थः । ४ Roof of Nose. ५ Floor of Nose, ६ सेयम् ऊर्ध्वहन्वोस्तालुफलकयोः ताल्वस्थनोः ह्रस्वपत्रकयोश्च सन्धानरेखा स्वस्तिकाकारा वर्णितपूर्वा । ७ Inner wall of Nasal passage.

५३३ चित्रम्—वाम नासागुहाया अभ्यन्तरम् ।

(वहिःप्राचीरान्तर्दृश्या विशेषाः अस्थिवच्छेदेन दर्शिताः)



चतुर्थोऽध्यायः ।

११३

किञ्चेदं मध्यप्राचीरं प्रायेण दक्षिणतो वामतो वा ईषदानतं^१ दृश्यते करोटौ स्वभावात् । अस्थनोश्च तयोः सन्धानम्—अग्रतस्त्रिकोणतरुणास्थना, पश्चिमतश्च जतूकास्थनो रसनिकया^२ । दृश्यञ्चास्य नासामध्यप्राचीरस्य तलद्वयं वामदक्षिण-भेदात् । तलद्वये च लक्षणीये सीरिकानुपूर्व्या नासातालुकाख्यनाडीद्वयधारिण्यौ परिखे, अनल्पानि च सूक्ष्मच्छिद्राणि नाडी-धमनीनां प्रतानधारणाय ।

वहिःप्राचीरं^३ पुनर्नासागुहाया एकैकस्याः पृथगेव । तस्य निर्माणमग्रतः ऊर्ध्वहनोर्नासाकूटेनाश्रुपीठेन च, मध्ये ऋर्करपाश्वर्षपिण्डेनोर्ध्वहनुपिण्डेन शुक्तिकास्थना च, पश्चिमतस्तालवस्थनो दीर्घपत्रकेण जतूकास्थनश्चरणफलकेन चाऽन्तःसीमस्थेन ।

तिस्रः खलु एकैकस्यां नासागुहायां सुरङ्गाः—ऊर्ध्वमध्याधःसंज्ञैः शुक्तिका-पत्रकैर्विभक्ताः, क्रमात्—ऊर्ध्वसुरङ्गा, मध्यसुरङ्गा, अधःसुरङ्गा चेति । तत्र—

(१) **ऊर्ध्वसुरङ्गा^४** नाम ऊर्ध्वतमो नासागुहामार्गो ह्रस्वतमश्च^५ । सा नासागुहायाः पश्चाद्धमात्रे वर्तते ऋर्करास्थन ऊर्ध्व-मध्यशुक्तिकाभागयोरन्तरालस्था । त्रीणि चात्र प्रकाशन्ते विचराणि, तद्यथा—पश्चात् तालुजातूकं नाम तदाख्यनाडी-धमनीनां प्रवेशाय, अग्रतो ऋर्करकोटरद्वारं नाम ऋर्करास्थिपश्चिम-कोटरानुबन्धि, चूड़ायाश्च^६ जतूकाद्वारं नाम यद् जतूकास्थिपिण्डान्तरीयेण कोटरेण सानुबन्धमिति । तत्र पुराणपीनसादिरोगेषु तयोः कोटरयोरन्तः पूयप्रवेशेण तत्तदस्थनां जर्जरीभावः काले मस्तिष्कविकृतिश्च दृश्यते बहुधा ।

(२) **मध्यसुरङ्गा^७** नाम मध्याधः-शुक्तिकयोरन्तरालस्थो मार्गो मध्यमाकारः । तत्रैकं विवरं ऋर्करकोटरमार्गेण ललाटकोटरानुबन्धि । अपरमूर्ध्वहनुपिण्ड-मध्यस्थस्य हनुगर्भकोटरस्य^८ द्वारभूतम् । पुराणनासारोगेषु तयोरपि कोटरयोः प्रायः पूयसञ्चारो विकृतयश्च तत्कृता विविधाः ।

(३) **अधःसुरङ्गा^९** तावद् अधःशुक्तिकास्थनोऽधस्ताद् दृश्यो दीर्घतमो मार्गः समग्रस्य नासावहिःप्राचीरस्यानुवृत्त्या वर्तमानः । तस्य पूर्वार्द्धे अश्रु-वाहिकाया द्वारं, तदतिप्रवृत्तस्य अश्रुजलस्य नासागुहाप्रवेशाय ।

नासापुरोद्वारं^{१०} नाम करोटौ नासागुहायाः पुरोभागस्थं सुमहत् द्वारं

१ विशेषादानतञ्चेत् रोग एव सः । २ सेयं जतूकास्थनः पुरस्तलस्था समुन्नता रेखा वर्णितपूर्वा । ३ Outer wall of Nasal passage. ४ Superior Meatus. ५ ऊर्ध्वभागे नासागुहायाः सङ्कुचितत्वात् । ६ नासागुहायाः शिखरोपान्ते । ७ Middle Meatus. ८ हनुगर्भ-कोटरश्च ७८ पृष्ठे वर्णितम् । ९ Interior Meatus. १० Anterior Nares.

वाह्याभिमुखं ताम्बूलपत्राकारम् । दृश्यते च तत् समांसशरीरे तरुणास्थिसंयोगात् संकुचिततरं, द्विभागविभक्तञ्च नासाप्रस्थत्रिकोणतरुणास्थिसहितेन नासामध्य-
प्राचीरेण वर्णितपूर्वेण । तस्योर्ध्वसीम्नि नासास्थिनी, पार्श्वयोरधःसीम्नि चोर्ध्व-
हन्वस्थिनी परस्परसंहिते ।

नासापश्चिमद्वारं^१ तावद् वृत्तप्रायं नासागुहायाः पश्चिमं द्वारं गल-
विलाभिमुखम् । तस्य पश्चिमतो गलविलच्छदिभूतं पश्चिमकपालस्य मूल-
पिण्डम् । ऊर्ध्वसीम्नि जतूकाशरीरम् । अधःसीम्नि ताल्वस्थनो ह्रस्वपत्रकद्वयम् ।
पार्श्वयोस्तु जतूकाचरणद्वयमान्तराख्यम् । द्विभागविभक्तञ्च तत् सीरिकास्थना-
यथोक्तसन्धानेन ।

सेयं नासागुहा नातिविस्तरं व्याख्याता । तद्विस्तरस्तु इन्द्रियखण्डे
प्राणेन्द्रियवर्णनावसरे वक्तव्यः ।

अथ समग्रकरोटिदृश्याः त्वाचभागाः ।

त्वाचभागास्तावत् त्वङ्मात्रावरणा अस्थिभागाः । तेषु केचित् करोटी
विशेषतो लक्षणीयाः । तैर्हि परिज्ञातैः साधु समुन्नीयन्ते शिरोगुहान्तरीयानां
मस्तिष्कादीनां विशेषा यथास्थानं वक्ष्यमाणाः ।

ते च सप्तविंशतिसंख्या वर्णितपूर्वाः । तद्वयथा— द्वे भ्रूतोरणिके, द्वे गण्ड-
चक्रे, द्वे गण्डकूटे, द्वे गोस्तनप्रवर्धने, एकं पश्चिमावुदम्, द्वे उत्तरतोरणिके
(तदुभयतः पश्चिमकपालस्थे), द्वौ पार्श्वकुम्भौ, द्वे शङ्खतोरणिके, द्वौ पुरकुम्भौ, द्वौ
नासास्थिनी, द्वौ नेत्रगुहापरिधी, द्वौ हनुकोणौ, एका हन्वधरोया धारा, एकं
चिबुकपिण्डञ्चेति ।

तदेतदस्थिखण्डं समाप्तम् । शिक्षणीयञ्चेदमतियत्नादीक्षणोन्मेवाय ।

कीकसे^२ यदि कार्कश्यं तथाप्यादीयतामिदम् ।

ज्ञानगङ्गाम्बुसङ्गत्या दिव्या तनुरतो यतः^३ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

इत्यस्थिखण्डम् समाप्तम् ।

१ Posterior Nares. २ एतदर्थं त्वक्शब्दात् शैषिकोऽण् प्रत्ययः । त्वाचभागाः = Sub-
cutaneous Parts. ३ करोटिरुपरि रेखापातादिभिः मस्तुलुंगांशानां स्थानानि सम्यग् ज्ञायन्ते, तानि
विस्तरमिमा नेह लिखितानि, आकरेषु द्रष्टव्यानि । ४ अस्मिन् अस्थिखण्डे । ५ यतो हेतोः
अस्मिन् ज्ञानरूपगङ्गाजलसम्पर्कात् दिव्यतनुलाभः तनुविषयकपूर्णज्ञानलाभ इति यावत्, भवितेति
शेषः । यथा हि गङ्गाजलेऽस्थिनिःक्षेपात् तत्सङ्गतिमात्रेण दिव्यातनुर्भवति तद्वत् ।

अथ सन्धि-स्नायुखण्डम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः सन्धि-स्नायुसामान्यविज्ञानीयमध्यायं^१ व्याख्यास्यामः ।

इह खलु सन्धय इत्यस्थनामेव^२ सन्धयो वर्णनीयाः, इतरसन्धीनामसंख्येय-
त्वादप्रयोजनत्वाच्च । आहुश्च—

“अस्थनान्तु सन्धयो ह्येते केवलाः परिकीर्तिताः ।

पेशी-स्नायु-सिराणान्तु सन्धिसंख्या न विद्यते ॥” इति—

(सु० शा० ५ अ०) ।

ते च सन्धयो द्विविधाः—“चेष्टावन्तः स्थिराश्च ।

शाखासु हन्वोः कट्याञ्च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः ।

शेषास्तु सन्धयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः ॥” इति—

अन्ये तु मन्यन्ते—चेष्टावन्तः सन्धयो द्विविधाः, बहुचेष्टाः अल्पचेष्टाश्चेति ।
एवञ्च द्विविधाः सन्धयः—बहुचेष्टाः^३, अल्पचेष्टाः^४ अचेष्टाश्चेति^५ । तत्र शाखासु
अधोहनुकोट्योश्च बहुचेष्टाः । पृष्ठवंशादौ अल्पचेष्टाः । अन्यत्र पुनरचेष्टाः, त एव
स्थिरसन्धि संज्ञाः ।

तत्र चेष्टावत्सु सन्धिषु सम्बध्यते अस्थिद्वयम् अस्थित्वयं वा सान्द्रमसृण-
शणगुच्छसमाभिः प्रतानवतीभिः स्नायुरज्जुभिः स्नायुकोषैश्च^६ । सन्ध्येयभागाश्च
तत्रास्थानां तरुणास्थिपत्रकसमावृताः, सुसंश्लिष्टाश्च स्नायुभिः श्लेष्मधरकलापुट-
व्यवधानेन परस्परोपरि सम्यग्वर्तनाय । तदाहुः—

“स्नेहाभ्यक्ते यथा त्वक्षे चक्रं साधु प्रवर्तते ।

सन्धयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा ॥” इति

(सु० शा० ५ अ०)

१ सामान्यतः सन्धि-स्नायुविज्ञानार्थोऽयमध्याय इत्यमिसन्धिः । २ सन्धयः=Joints
or Articulations of Bones. ३ Diarthroses or Movable joints. ४ Amphiarthroses or Mixed Articulations. ५ Synarthroses or Immovable Joints.
६ काश्चित् स्नायवो रज्ज्वाकाराः, काश्चित् कोपाकाराः—इति द्विधा निर्देशः । स्नायुरज्जवः, स्नायवः
=Ligaments. स्नायुकोषाः=Articular Capsules. ७ श्लेष्मधरा कला=Synovial
Membrane or Sac. श्लेष्मा त्विह श्लेषको नाम=Synovia.

अचेष्टाः पुनः सन्धयः प्रतनुस्नायुजालसंहताः दन्तुरधारादिभिर्निरन्तर-
संश्लिष्टाश्च', तेषु हि प्रयोजनाभावात् श्लेष्मधरकलाया अभावः ।

आकृतितः पुनरष्टविधाः सन्धयः प्राचाम् — 'कोरोदूखल-सामुद्र-प्रतर-तुन्न-
सेवनी-वायस-तुण्ड-मण्डल-शङ्खावर्त्ताः । तेषामंगुलि-मणिवन्ध-गुल्फ-जानु-कूर्परेषु
कोराः सन्धयः । कक्षा-वङ्क्षण-दशनेषु उदूखलाः । अंसकूट-गुद-भग-नितम्बेषु^१
सामुद्राः । ग्रीवा-पृष्ठवंशयोः प्रतराः । शिरः-कटिकपालेषु तुन्नसेवनी । हन्वो-
रुभयतस्तु वायसतुण्डः । कण्ठ- (हृदय-नेत्र-) क्लोमनाडीषु^२ मण्डलाः^३ ।
श्रोत्रशृङ्गाटकेषु शङ्खावर्त्ताः^४ ।' (सु० शा० ५ अ०)

विस्तरोऽत ऊर्ध्वम् ।

तत्र कोरा नाम सन्धयो बहुचेष्टाः, कोरगर्भेष्वस्थिप्रान्तेषु उत्सेध-
वतामस्थिभागानां सन्धानरूपाः । ते चतुर्विधाः— खल्लकोरः, परस्परकोरः,
चक्रकोरः, सन्दंशकोरश्चेति । तेषु—

(१) खल्लकोरः^५ मणिवन्धे गुल्फसन्धौ च स्वनामव्याख्यातः ।

(२) परस्परकोरः^६ पर्याणकसदृशस्थालकयोः परस्परसन्धानरूपः,
यथा—अंगुष्ठमूले^७ ।

(३) चक्रकोरः^८ मध्यकीलमाश्रित्य चक्रस्यैव विवर्त्तनप्रदः सन्धिः,
यथा—चूडावलयासहितस्य शिरसो दन्तचूडाख्यकशेरुकया^९ ।

(४) सन्दंशकोरः^{१०} सन्दंशाकारस्यास्थिभागस्य सन्धाने यथा—
कूर्पूरसन्धौ^{११} ।

१ निरन्तरमव्यवधानेन परस्परानुप्रविष्टाः । २ अंसपीठेति क्वचित् पाठः, स प्रामादिक
एव । कक्षायां पृथगेव कोरसन्धेरभिधानात्, अंसपीठस्य च तत्रैव सम्भवात् । अंसकूटेति
पाठे तु अंसकूटान्नकयोः सन्धिरुच्यते, तेन चांसचक्रनिर्माणात्, सामुद्रसन्धिता युज्यत एव ।
सामुद्राः सम्पुटाः । ३ कण्ठनाड्यां ऊर्ध्वस्थ श्वासनाल्याम् । क्लोमनाड्यः फुस्फुसप्रवेशि-
श्वासमार्गाः । इहापि केषुचित् मुद्रितपुस्तकेषु कण्ठहृदयनेत्रे त्यादिपाठः प्रामादिक एव प्रतिभाति,
हृदयादौ अस्थनामदर्शनात् । ४ मण्डलाकाराणां तरुणास्थनामुपर्युपरि निवेशादियं संज्ञा । दृश्यतां
फुस्फुसवर्णने क्लोमनलिका वर्णनम् । ५ कर्णपालयोः तरुणास्थनां शङ्खवर्त्ताकारतो निवेशादियं
संज्ञा । ६ Condylod Articulations. ७ Reciprocal Reception (Saddle Joints.)
८ पर्याणकाख्यस्य कूर्चास्थनः अंगुष्ठमूलशलाकया सन्धाने इति भावः । ९ Trachoides
(Pivot-Joints.) तत्र हि दन्तचूडास्थप्रवर्द्धनं मध्यकीलभूतमाश्रित्य विवर्त्तते चूडावलया नाम
कशेरुका । ११ Ginglymus. १२ अन्तःप्रकोष्ठ-प्रगण्डास्थनोरुर्ध्वसन्धाने ।

उदूखला^१ नाम सन्धयोऽपि बहुचेष्टाः उदूखलवद् गभीरप्रायेष्वस्थि-
भागेषु इतरास्थिमुण्डानां सन्धानरूपाः । तेषु हि स्वीदूखलानाश्रित्य सर्वतो^२
विवर्तन्ते तानि तान्यस्थीनि, यथा—कक्षा-वङ्क्षणसन्धिषु ।

दशनोदूखला^३ पुनर्दृढस्थिरा सन्धयः पृथगेव मन्तव्याः ।

सामुद्रगाः^४ नाम समुद्रगनिर्मापका इव सन्धयः स्वल्पचेष्टाः । ते श्रोणि-
चक्रांसचक्रादिषु दृश्याः ।

प्रतरा^५ नाम प्रतरणशीलैरिव ईषच्चलैः समतलांशाभ्यां परस्परसंहितैरस्थि-
खण्डैर्निर्मिताः सन्धयः । ते त्रिविधाः सन्धानप्रकारवैशेष्यात्—चलप्रतरः,
युक्तप्रतरः, दृढप्रतरश्चेति । तत्र—श्लेष्मधरकलापुटव्यवधानेन चलत्वबाहुल्ये सति
चलप्रतराख्यः सन्धिः, यथा—करःचरणःकूर्चास्थ्नां परस्परसंयोगे । अन्तरालस्थया
स्नायुरज्ज्वा दृढकलया वा संयोगे युक्तप्रतरः, यथा—प्रकोष्ठास्थनोर्जङ्घास्थनोश्च
नलकयोः परस्परसन्धाने । अन्तरालस्थेन तरुणास्थिचक्रेण सजातीयानां
दृढसन्धाने तु दृढप्रतरः यथा—पृष्ठवंशे परस्परं कशेरुकाणाम् ।

तुन्नसेवन्यः^६ नाम परस्परप्रवेशिनीभिर्दन्तुरधारादिभिर्निर्मिताः शिरः-
कपालान्तरालाः सन्धयः । ते शिरःकपालेषु दृश्याः, कटिकपालेषु च प्राग् यौवनात् ।
ताश्च द्विविधाः—सीमन्तसेवनी, प्रस्तसेवनी चेति । तत्र शिरःकपालसन्धानेषु
सीमन्तसेवन्यः सीमन्तनासा प्रसिद्धाः । सीरिकास्थनो जट्टकास्थना सन्धाने तु
प्रस्तसेवनी^७ ।

वायसतुण्डाख्यस्तु सन्धिः अधोहनुमुण्डयोः शङ्खास्थिगताभ्यां हनुसन्धि-
स्थालकाभ्यां सन्धानान्मुखव्यादानादिसम्पादकः । स तु कोरसन्धेरेव खल्लकोराख्यो
भेदो युगमरूपः, तस्य कोरग्रहणेनैव ग्रहणात् न पृथग् विभागार्हतेति सूक्ष्मदृशः ।

मण्डल-शङ्खावर्त्ताः पुनः क्रमात् श्वासपथ-कर्णपालिगताः तरुणास्थि-
सन्धयः स्वनामव्याख्याताः । तेषां नेह ग्रहणम्, तरुणास्थनामस्थि संख्याने अग्रहणात् ।

एते च सन्धिसंग्रहस्मारकाः श्लोकाः—

अचेष्टास्तुन्नसेवन्यः सीमन्त-प्रस्तभेदतः ।

शिरोऽस्थिषु समादिष्टा दशनोदूखलास्तथा ॥

अत्यचेष्टास्तु सामुद्रगाः श्रोणिचक्रांसचक्रयोः ।

प्रतरास्त्रिविधास्त्वन्ये पृष्ठवंशादिषु स्थिताः ॥

१ Enarthosis (Ball-and-socket Joints). २ ऊर्ध्वमधः पार्श्वयोश्चेति भावः ।
३ Gomphosis. ४ सामुद्रगाः सम्पुटाः । ५ Arthrodia. ६ Sutures. ७ Schindylolysis.

अथात्र बहुचेष्टाः स्युः कोराश्चोदूखलास्तथा ।

आद्याश्चतुर्धा गुल्फादिष्वन्ये कक्षादिगोचराः ॥

प्राचां वायसतुण्डो यो युग्मकोरः स एव हि ।

शङ्खावर्त्ता मण्डलाश्च तरुणास्थिगताः स्मृताः ॥

अथात्र चेष्टावत्षु सन्धिषु स्नायुसन्ततिनिबद्धेषु चत्वारो विशेषाः पृथग्-
द्रष्टव्याः—अस्थनां सन्धेयांशः, सन्ध्यन्तरीयतरुणास्थीनि, स्नायवः, श्लेष्मधरा
कलाश्चेति । तत्र—

(१) अस्थनां सन्धेयांशाः दृढचिक्रणास्थिमयाः । ते चाऽच्छाद्यन्ते तरुणास्थि-
पत्रकैः सुकोमल-मसृणैः सन्धानकाले ।

(२) तरुणास्थीनि तावद् द्विविधानि सन्धिसम्बन्धीनि—सन्धिवेष्टनानि
सन्ध्यन्तरालस्थानि चेति । तत्र सन्धिवेष्टनानि सन्धेयानामस्थ्यंशानां छादकानि
श्रृङ्खलासम्पादनाय । इतराणि तेषामन्तरालेषु स्थितानि चक्र-त्रिकोणाकाराणि ।
तत्र चक्राकाराणि कशेरुकान्तरालेषु, त्रिकोणाकाराणि तु मणिवन्धादौ । तेषु च
कानिचित् स्थितिस्थापकानि तादृशस्नायुसूत्रभूयिष्ठानि च ।

(३) स्नायवस्तावत् सन्धिवन्धनकारिण्यः शणसूत्राभद्रदन्तुभिर्निर्मिताः
त्रिविधाः—रज्जुरूपाः कोषरूपाः, कलारूपाश्चेति । तत्र रज्जुरूपाः सन्धिमभितः
पृथक् परस्पराश्लेषेणवाऽवस्थिताः । कोषरूपाः^२ कोषवत् सन्धिवेष्टनकारिण्यः ।
ता एता द्विविधा अपि जानुवंक्षणादिसन्धिषु दृश्यन्ते । कलापरूपास्तु^३ स्नायवः
सुदृढकलामय्यो वर्णितपूर्वा जङ्घान्तरालाद्या अस्थिद्वयान्तरालच्छादनेन तत्संयोजन्यः ।
प्राञ्चस्त्वाचक्षते—

“स्नायूश्चतुर्विधा विद्यात्तास्तु सर्वा निबोध मे ।

प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथ्व्यश्च शुषिरास्तथा ॥

प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसन्धिषु चाप्यथ ।

वृत्तास्तु कण्डराः सर्वाः विज्ञेयाः कुशलैरिह ॥

आमपकाशयान्तेषु वस्तौ च शुषिराः^४ खलु ।

पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च^५ शिरस्यथ^६ ॥” (सु० शा० ५३०)

१ Ligamentous bands. २ Capsular ligaments. ३ Inter-osseous-membranes.

४ आमाशयादिप्रान्तेषु स्नायुसूत्रमयानामंगुरीयकसदृशभागानां दर्शनादिति भावः । ५ पृथुलाः
प्रच्छदवदायताः, ताश्च प्रच्छदाकारपेशीनां प्रान्तेषु दृश्याः (= Apponeurosis). ६ दृश्यतां
दम पृष्ठे “नौर्यथा” इत्यादि पाठोऽपि ।

प्रथमोऽध्यायः ।

११६

तत्र प्रतानवत्यस्तावद् गृह्यन्ते सन्ध्यध्याये । तदन्यास्तु पेश्यंशरूपाः पेशी-
वर्णने आशयवर्णने च वर्णनीयाः ।

वर्णतश्च द्विविधाः स्नायवः—शुभ्राः पीताश्च । तत्र शुभ्राः सर्वत्र दृश्यन्ते
अन्यत्र ग्रीवाधरायाः स्नायुरज्वाः, कशेरुचक्रान्तरालाभ्यश्च स्नायुभ्यः । सा च
ताश्च स्नायवः पीताभाः स्थितिस्थापकतन्तुबहुलाश्चेति विशेषः ।

श्लेष्मधरकलाः पुनः चेष्टावतां सन्धीनामन्तरावरण्यः कोषरूपाः सम-
न्तात् सन्धेयांशेषु संसक्ताः । तदन्तश्च स्रवति श्लेषकः श्लेष्मा^१ नियतं, येन न
क्षीयन्ते सन्धेयभागाः, सम्यक् प्रवर्तन्ते च सन्धिमाश्रिता विविधाश्चेष्टाः । आहुश्च—

“स्नेहाभ्यक्ते यथा त्वक्षे चक्रं साधु प्रवर्तते ।

सन्धयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा ॥” (सु० शा० ४ अ०)

ताश्च त्रिविधाः—सन्ध्यन्तरीयाः, कण्डरानुगाः, त्वाचाश्च । तत्र सन्ध्यन्तरीयाः
सन्ध्यन्तःस्थितेष्वस्थिभागेषु संसक्ताः निश्छिद्रकोषाः । सन्ध्यश्च तत्र स्नायुकोष-
समावृताः । कण्डरानुगाः^२ गतागतशीलानां कण्डराणां वेष्टनभूताः । त्वाचाः^३
पुनः त्वङ्मात्रावरणानामस्थिभागानामुपरिष्ठाः त्वगस्थनोरन्तरालस्थाः कला-
पुटकरूपाः । तासु सन्ध्यन्तरीया एवेह सन्ध्यध्यायेऽधिकृताः ।

अचेष्टेषु पुनः सन्धिषु प्रयोजनाभावात् श्लेष्मधरकलाभावः—इत्युक्तपूर्वम् ।
तदेतत् सन्धिसामान्यविज्ञानं व्याख्यातम् । विशेषोऽत ऊर्ध्वम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः सन्धिविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इह खलु सामान्यतः परिज्ञातेष्वपि सन्धिषु विशेषाः अवश्यं ज्ञातव्या भवन्ति,
सन्धीनां स्थान-संस्थान-चेष्टादिविज्ञानार्थं सन्धिमुक्तादिप्रतीकारार्थञ्च । तानेवेदानीं
विशेषान् प्रविभज्य समासतो वक्ष्यामः ।

वर्णनासौकर्याय चात्र शिरःपूर्वं वर्ण्यन्ते सन्धयः । शिरःसन्धिषु च अधो-
हनुसन्धानं शिरोग्रीवसन्धानञ्चेति द्वावेव चेष्टावन्तौ सन्धी व्याख्येयौ । इतरे

१ Yellow Elastic fibrous tissue. २ Synovial membrane. ३ Synovia.

४ Tendon-sheaths. ५ Bursæ. ६ सन्धिमुक्तं सन्धिच्युतिः (Dislocation).

१२०

प्रत्यक्षशारीरम् ।

तु शिरःसन्धयः सीमन्ताद्याः समग्रकरोटिवर्णने सन्धिसामान्यविज्ञाने च वर्णितपूर्वा
इति नेह पुनरुच्यन्ते ।

शिरोऽनन्तरञ्चात्र व्याकरणीयाः पृष्ठवंशोरःकटिशिखागताः सन्धयः— इति
वर्णन क्रमोद्देशः ।

अथ शिरः-सन्धिषु

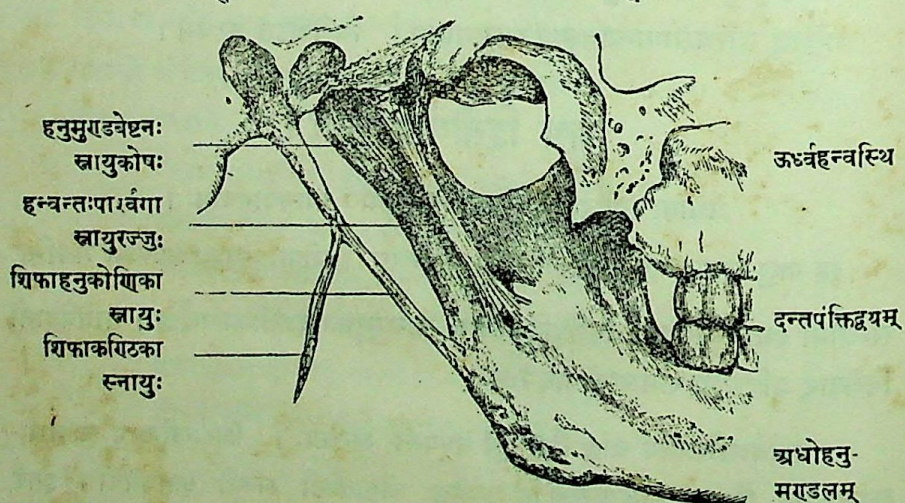
अधोहनुसन्धानम् ।

अधोहनुस्तावत् सन्धीयते शङ्खस्थिगतयोः हनुसन्धिस्थालकयोः, कर्णो-
पकण्ठे स्वमुण्डाभ्याम् । (५४ चित्रम्) । सन्धिश्चायं युग्माकोराख्यो बहुचेष्टः,
प्राचां वायसतुण्डाख्यः । आश्रित्य चेममधोहनोः सम्पद्यते ऊर्ध्वाधश्चलनं भूम्ना,
स्तोकेन च पुरः-पश्चिमतः पार्श्वयोश्च । पुरश्च एकैकस्य हनुमुण्डस्य
शङ्खस्थनो गण्डप्रवर्द्धनमूलस्थं सन्ध्यर्बुदम्, पश्चात् कर्णकूहरस्य पूर्वपरिधिः,
उपरिष्ठाच्च शङ्खालिकाख्या धारा । संयम्यते च हनुमुण्डमेकैकतः स्वकोये स्थालके
तैरेवोत्सेधैः ।

५४श चित्रम्—अधोहनुसन्धानम् (दक्षिणम्)

शङ्खस्थि

जतूकास्थि



[दृश्यञ्चेह वामार्द्धस्य अभ्यन्तरतलमेव मध्यरेखाच्छेदेन]

१ Double Condylloid Articulations.

द्वितीयोऽध्यायः ।

१२१

एकैकतश्च हनुमुण्डसन्धौ लक्षणीया इमे विशेषाः—

(१) हनुमुण्डवेष्टनः स्नायुकोपः^१, तदन्तश्च तरुणास्थिचक्रं स्थालक-हनु-मुण्डयोरन्तरालस्थम्, तदुभयतश्च श्लेष्मधरकलापुटकद्वयम् । सन्धेयभागाश्च तत्र तरुणास्थिसमावृताः ।

(२) हनुमुण्डवाह्या स्नायुः^२, शङ्खास्थनः सन्ध्यवृद्धात् हनुमुण्डस्य मूलावधि-तिर्यक् सम्बद्धा ।

(३) हन्वन्तःपार्श्वंगा स्नायुः^३, जतूकावृहत्पक्षतेः कोणतः हनुकूटान्तरतले दन्तमूलविवरोपकण्ठं यावत् सङ्गता तिरश्चीना ।

(४) शिफाहनुकोणिका स्नायुः^४, शङ्खास्थनः शिफाप्रवर्द्धनात् हनुकोणं यावत् सङ्गता । ता एताः पेशीसमन्विता अथोहनुसन्धेः सन्धारण्य एकैकतः ।

अथ शिरोग्रीवसन्धिः ।

शिरोग्रीव-सन्धिर्नाम शिरसः सन्धिः पृष्ठवंशस्य अनुग्रीवांशेन (५५।५६ चित्रयोः) । तत्र च पश्चिमकपालं सन्धीयते चूड़ावलयया, सा च पश्चिमकपालञ्च दन्तचूडयेति त्रिधा द्रष्टव्यं सन्धानम् । यथा—

(क) पश्चिमकपाल-चूड़ावलययोः सन्धिः^५ पश्चिमकपालमूल-कोट्योः सन्धाने कोराख्यः, अवशिष्टांशे तु प्रतराख्यः । स्नायवश्चात्र षट् कपाल-मूलचूडिकाख्याः । तद्वयथा—

कपालमूलचूडिका अग्रिमा^६ । सेयं पश्चिमकपालास्थनो मूलभागस्य महा-विवर-पुरःपरिधिभूतस्य चूड़ावलयापूर्वार्द्धेन संयोजनी ।

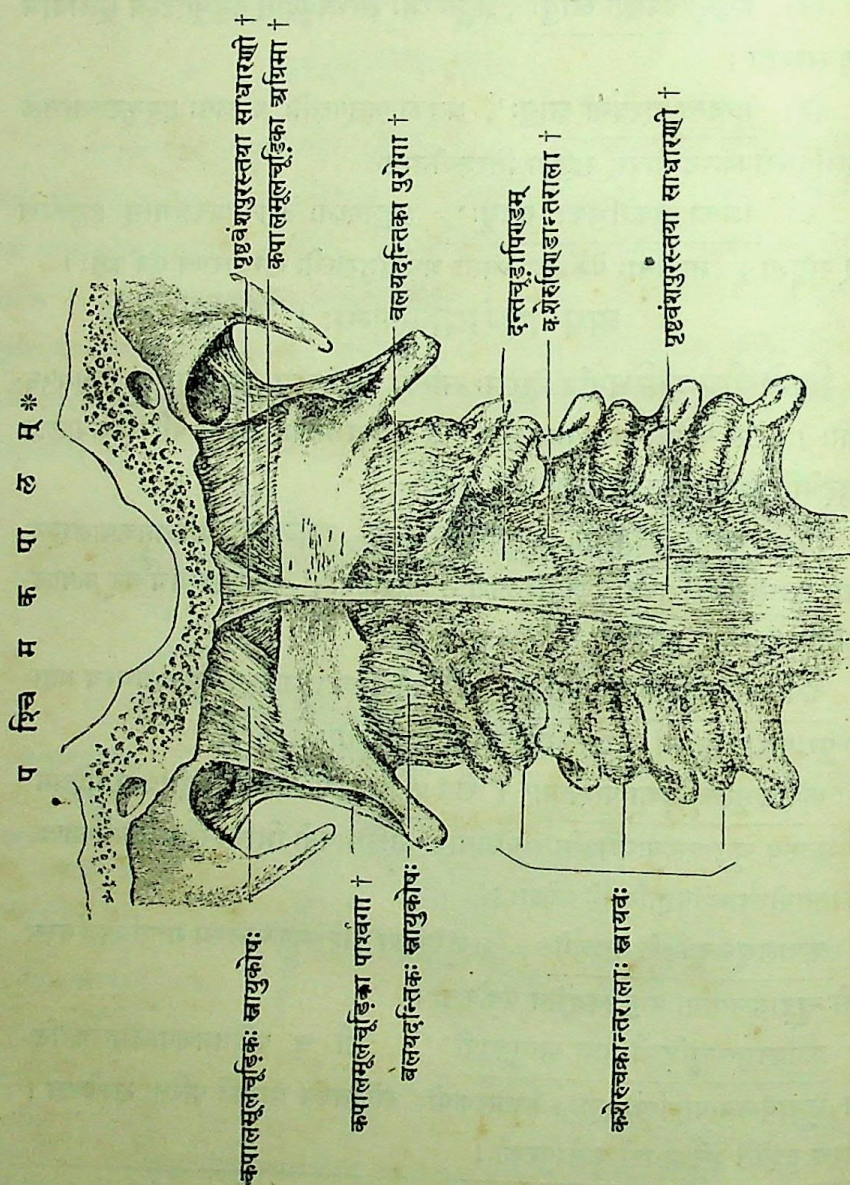
कपालमूलचूडिका पश्चिमा^७ । सेयं पश्चिमकपालांशस्य महाविवरपश्चिम-परिधिभूतस्य चूड़ावलयापरार्द्धेन संयोजनी । ताञ्चोभयतो भित्त्वा सनाड्योर्मस्तिष्क-मातृकाख्ययोर्धमन्योर्महाविवरे प्रवेशः ।

कपालमूलचूडिके पार्श्वगे^८ । तथोरेकैका पश्चिमकपालस्य मन्याप्रवर्द्धनस्य योजनी चूड़ावलयाया बाहुप्रवर्द्धनेन एकैकतः ।

कपालमूलचूडिकौ नाम स्नायुकोपौ^९ । तौ च पश्चिमकपालमूलकोटि-द्वयस्य चूड़ावलयोपरिस्थितयोः, स्थालकयोः संहितस्य धारकौ परितः सम्बेष्ट्य । तदन्तश्च दृश्येते श्लेष्मधरौ कलापुटकौ ।

१ Capsular Ligament of the Temporo-mandibular Articulation. २ External Lateral Lig. ३ Internal Lateral Lig. ४ Stylo-mandibular Lig. ५ Cranio-vertebral Articulations. ६ Occipito-atlantal Articulation. ७ Anterior Occipito-atlantal Lig. ८ Same—Posterior. ९ Same—Lateral. १० Same—Capsular.

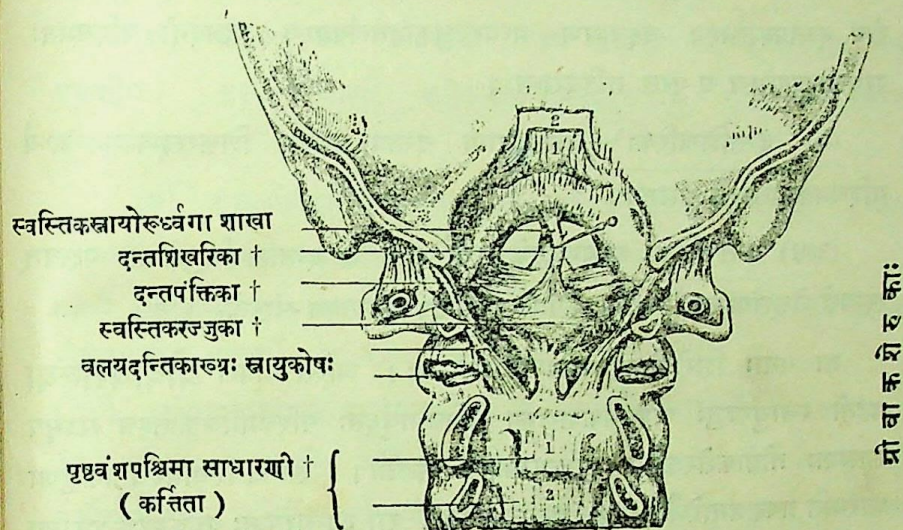
५५ चित्रम्—शिरोग्रीवसन्धिः (सम्मुखतो दृष्टः)



५६ चित्रम्—शिरोग्रीवसन्धिः (पृष्ठतलम्)

(स चेह पश्चिमकपालोत्तरार्द्धस्य ग्रीवाकशेरुचक्राणाञ्चापसारणेन दर्शितः)

प श्चि म क पा ल म्



[† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम्]

(ख) चूडावल्या-दन्तचूडयोः सन्धिस्तु पुरोभागे चक्रकोराख्यः ।
 दन्तचूडाया हि दन्तप्रवर्द्धनं मध्यकीलभूतमाश्रित्य विवर्त्तते चूडावल्या शिरः-
 सहितेति । अवशिष्टांशे तु स एव प्रतरसंज्ञः । स्नायवश्चात्र पञ्च । तद्वया—
 वलयदन्तिका पुरोगा^१,—कशेरुपिण्डयोः पुरःस्तात् सन्धानकरी ।
 वलयदन्तिका पश्चिमा^२—कशेरुचक्रयोः पश्चिमतः सन्धानकरी ।
 वलयदन्तिकौ स्नायुकोषौ^३ चूडावल्या-दन्तचूडयोः सन्धिप्रवर्द्धनकानां
 यथाहं परस्पर सन्धानकरी । तौ च अभ्यन्तरतः श्लेष्मधरकलापुटकसहितौ ।
 स्वस्तिकरज्जुकाख्या^४ स्नायुः उभयतः चूडावल्याया अन्तःकलायकयोः
 सम्बद्धा मूलाभ्याम् । सेयं दन्तचूडाया दन्तप्रवर्द्धनधारणी स्नायुरनुदैर्घ्यम् ऊर्ध्वाधः-
 संसका क्रमात् पश्चात्कपालमूलेन दन्तचूडापिण्डेन च, दन्तप्रवर्द्धनस्य पुरस्तात्
 संयमनाय^५ । श्लेष्मधरौ चात्र कलापुटकौ दन्तप्रवर्द्धनस्य पुरःपश्चिमस्थौ ।

१ Atlanto-axial Articulation. २ Anterior Atlanto-axial Lig. ३ Posterior Do. ४ Capsular Do. ५ Transverse Lig. ६ संयमनञ्च यथास्थानधारणरूपम् यदि हि दन्तप्रवर्द्धनं भग्नं स्थानच्युतञ्च स्यात् तदा सुपुन्नाशीर्षकसम्पीडनात् सद्य एव मृत्युः यथा उद्बन्धनादौ प्रागपि श्वासरोधादिति निश्चयो विशेषविदाम् ।

(ग) पश्चिमकपाल-दन्तचूड़योः सन्धौ^१ तु परस्परस्पर्शाभावेऽपि परस्पर सम्बन्धिन्यः स्नायवश्चतस्रो द्रष्टव्याः सुषुम्नाविवरान्तर्निगूढाः । तद्वयथा—

(१) कपालदन्तचूड़िका^२—पश्चिमकपालमूलस्य दन्तचूड़ापिण्डेन सम्बन्धनी । सेयं दन्तप्रवर्द्धनस्य वक्ष्यमाण—मध्यरज्जुकाद्वयसंयतस्य च्छादनी पश्चिमतः, सुषुम्नाकाण्डस्य च पुरतः तद्विवरान्तः ।

(२) दन्तशिखरिका^३—दन्तचूड़ाया दन्तप्रवर्द्धनस्य शिखरसम्बद्धा ऊर्ध्वं पश्चिमकपालमूले संलग्ना ।

(३) दन्तपक्षिके, मध्यरज्जुके^४ वा नाम द्वे दन्तप्रवर्द्धनमुभयतः पक्षवत् सम्बद्धे तेत्संयमनार्थं, पश्चिमकपालमूलकोट्योर्मूलतश्च संसक्ते—इति ।

ता एताः शिरोग्रीवसन्ध्यायिन्यः स्नायवः । अस्ति चापरा ग्रीवाधराख्या महती स्नायुरज्जुः पश्चिमकपालस्य पश्चिमावुदतः पश्चिमालिकातश्च सम्भूय सप्तम्याः ग्रीवाकशेरुकायाः पृष्ठकण्टकान्तं संलग्ना । सा च स्थितिस्थापकगुणा धारयति प्रयत्नमन्तरेणैव ग्रीवावंशमृजुभावेन । सा साधारण्याः पृष्ठकण्टकधराख्य स्नायोरंशरूपा ।

अथ पृष्ठवंशसन्धयः ।

पृष्ठवंशः खलु कशेरुकाभिरुपर्युपरि संहिताभिर्निर्मियते । सन्धिश्च^५ तासां परस्परं पञ्चस्ववयवेषु सजातीयेषु—(५५ चित्रम्)

(१) कशेरुपिण्डेषु, (२) कशेरुचक्रेषु, (३) सन्धिप्रवर्द्धनेषु, (४) पृष्ठकण्टकेषु, (५) बाहुप्रवर्द्धनेषु चेति ।

तत्र कशेरुपिण्डानां परस्परसन्धयः अचेष्टप्रायाः । कशेरुचक्रादीनां परस्पर-सन्धयस्तु युक्तप्रतराख्या अल्पचेष्टाः, तेऽपि चेष्टाधिक्यं ग्रीवा-कटि-कशेरुका-सन्धिषु । चेष्टाश्च पृष्ठवंशे अन्तरायमनं^६ बहिरायमनं^७ पार्श्वविवर्तनञ्चेति^८—त्रिविधा एव प्राधान्येन^९ द्रष्टव्याः । तत्र—

१ Occipito-axial, Articulation. २ Apparatus Ligamentus Colli. ३ Sensory Ligament. ४ Check Ligaments. ५ Ligamentum Nuchæ. ६ Vertebral Articulations. ७ अन्तरायमनं नाम पुरस्तादवनमनम् । ८ बहिरायमनं पृष्ठतोऽवनमनम् । अपतानकुरोगोक्तयोस्तन्तरायाम-बहिरायामसंज्ञयोर्दर्शनात् पदद्वयस्येदृशार्थं प्रयोगः । ९ वामतो दक्षिणतो वा विवर्तनमित्यर्थः । १० अपरासां मिश्रचेष्टानां त्रिविधेष्वेवान्तर्भावात् ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

१२५

(१) कशेरुपिण्डानां परस्परसन्धानकारिण्यः स्नायवस्त्रिधा विभज्यन्ते —

(क) कशेरुपुरस्त्या साधारणी^१, सेयं सर्वासां कशेरुकानां पुरोवर्त्तिनी दृढस्थूलदीर्घपट्टिकाकारा समग्रपृष्ठवंशधारणी ।

(ख) कशेरुपश्चिमा साधारणी^२, सेयं सर्वासां कशेरुकानां पृष्ठवर्त्तिनी पूर्ववदेव । दृश्यते चासौ कशेरुचक्राणामपसारणेन सुषुम्नाविवरस्यान्तः पुरःसीमभूता ।

(ग) कशेरुपिण्डान्तरालाश्च^३, ताः कशेरुपिण्डानां संयोजन्यः, मध्यतः कोमलस्थितिस्थापकैस्तद्वर्णास्थिप्रायैश्चक्रकैरुपलक्षिताश्च ।

(२) कशेरुचक्राणां परस्परसन्धानकारिण्यस्तु स्नायवः स्थितिस्थापकगुणाः पीताभवस्तुप्रायाश्च । ताः कशेरुचक्रान्तराला^४ नाम ।

(३) सन्धिप्रवर्धनानां परस्परसन्धानं तु तद्वेष्टनैः स्नायुकोषैः^५ । एकैकस्या हि कशेरुकायाश्चत्वारि सन्धिप्रवर्द्धनानि—द्वे ऊर्ध्वमुखे, द्वे चाधोमुखे । तत्रोर्ध्वमुखयोः सन्धिस्तदूर्ध्वस्थकशेरुकयोरधोमुखसन्धिप्रवर्द्धनाभ्याम्, अधोमुखयोस्त्वधःस्थकशेरुकाया ऊर्ध्वमुखसन्धिप्रवर्द्धनाभ्याम् । प्रतिस्नायुकोषान्तश्च दृश्यमेकैकं श्लेष्मधरकलापुटकम् ।

(४) पृष्ठकण्टकसन्धायिन्यस्तु स्नायवो द्विविधाः—पृष्ठकण्टकधरा साधारणी, कण्टकान्तरालाश्चेति । तत्र —

(क) पृष्ठकण्टकधरा साधारणी^६ नाम स्नायुः दृढरज्जुप्रायाः सर्वासां कशेरुकाणां पृष्ठकण्टकसन्धायिनी, सा पश्चिमकपालपृष्ठस्थाद्वर्तुदात् तिकास्थि-पृष्ठकण्टकान्तं यावत् सम्बद्धा । तस्याश्चोर्ध्वभागस्य प्रीवाधरा स्नायुरज्जुरिति संज्ञा उक्तपूर्वा ।

(ख) कण्टकान्तरालास्तु स्नायवः^७ पृष्ठकण्टकानामन्तरालापूरण्यः प्रतनु-कलानिर्मिताः पृष्ठ-कटिकशेरुकास्वेव विशेषतो दृश्याः ।

(५) बाहुप्रवर्द्धनानां परस्परसन्धायिन्यः पुनः स्नायवो बाहुप्रवर्द्धनान्तराला^८ नाम । ता प्रीवाकटिकशेरुकासु प्रतनुकलामध्यः, पृष्ठकशेरुकासु तु रज्जुप्रायाः ।

१ Anterior Common Ligament. २ Posterior Common Lig. ३ Inter-vertebral Ligaments & Discs. ४ Ligamenta sub-flava. ५ Articular Capsules. ६ Supra-spinous Ligaments. ७ Inter-spinous Ligaments. ८ Inter-transverse Ligaments.

अथ पशुकापृष्ठसन्धयः ।

पशुकापृष्ठसन्धयो नाम पशुकानां सन्धयः पृष्ठकशेरुकाभिः (५७ चित्रम्) ।
ते द्विविधाः—पशुकामुण्डानां कशेरुपिण्डैः सन्धयः, पशुकार्बुदानां कशेरुवाहुप्रव-
र्द्धनकैः सन्धयश्चेति । तत्र—

१ । पशुकामुण्डानां कशेरुपिण्डैः सन्धयश्चलप्रतराख्याः । तत्र प्रथम-दश-
मैकादशद्वादशीनां पशुकानामेकैकेन कशेरुपिण्डस्थालकेन सन्धानम्, अन्यासान्तु
कशेरुद्वयपिण्डस्थाभ्यां स्थालकाद्वाभ्याम् । सन्धायिन्यश्चात्र स्नायवस्त्रिविधाः ।
तद्यथा—

(क) पुरस्त्याः त्रिशूलकाराः^१, तासामेकैका ऊर्ध्वाधरीययोः कशेरुपिण्डयो-
स्तदन्तरालस्थे तरुणास्थिचक्रे च संसक्ता ।

(ख) कोषाकाराः^२ पशुकामुण्डवेष्टनभूताः स्थालकपरिधिमभितः संसक्ताः
श्लेष्मधरकलासहिताः ।

(ग) सन्ध्यन्तरीयाः^३ ह्रस्वरज्जुप्रायाः पशुकामुण्डेष्वे संयुक्ताः ।

२ । पशुकार्बुदानां कशेरुकावाहुप्रवर्द्धनैः^४ सन्धयस्तु युक्तप्रतराख्याः । तत्र
सन्धायिन्यः स्नायवश्चतुर्विधाः । तद्यथा—

(क) पशुकावाहुका अग्रिमाः^५ । ताः पशुकाग्रीवाणां कशेरुकावाहुप्रवर्द्धनैः
संयोजन्यः । ताश्च निर्भिद्य पशुकानुगानां सिरा-धमनो-नाडीनामुरः-
परिसरान्तः प्रसरः ।

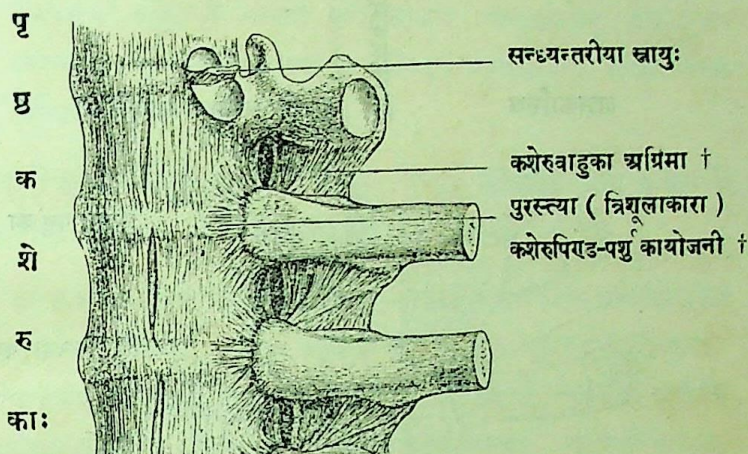
(ख) पशुकावाहुका मध्यमाः^६ । ताः पशुकाकोणानां कशेरुकावाहुप्रवर्द्धनाग्रैः
संयोजन्यः ।

(ग) पशुकावाहुकाः पश्चिमाः^७ । ताः कशेरुकावाहुप्रवर्द्धनाग्रतः पशुकार्बुदं
यावत् संसक्ताः ।

(घ) अर्बुदकोषिकाः^८ । ताः पशुकावुदानां कशेरुकावाहुप्रवर्द्धनस्थैः स्थालकैः
सन्धानकारिण्यः समन्तादुवेष्टनभूताः श्लेष्मधरकलासहिताः ।

१ Costo-vertebral Articulations. २ Anterior Costo-vertebral or Stellate
Lig. ३ Capsular Lig. ४ Inter-articular Lig. ५ Costo-transverse Articulations.
६ Anterior Costo-transverse Lig. ७ Middle (Do), ८ Posterior (Do)
९ Capsular (Do).

५७ चित्रम्—पशु काष्ठसन्धयः ।



[† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम्]

अथ पशु का-पूर्वसन्धयः ।

पशु का पूर्वसन्धयः^१ उरःपशु का सन्धयो वा नाम पर्शकोपपर्शुकोरःफलकानां सन्धयः (५८ चित्रम्) । ते चतुर्विधाः, तद्विधा—

- (१) पशु कानामुपपर्शुकाभिः,
- (२) उपपर्शु कानामुरःफलकेनोभयतः,
- (३) उपपर्शु कानां परस्परम्,
- (४) उरःफलक-खण्डानां परस्परञ्चेति । तत्—

(१) द्वादशसंख्यानां पशु कानां तत्संख्याभिरुपपर्शुकाभिः सन्धानानि स्थिराणि, पशु काग्रस्थालकेषु उपपर्शु कामूलानां दृढसन्धानात् । तत्रास्थिधराख्यकलानुवृत्ति-मात्रेण संयोगः ।

(२) उपपर्शु कानामुरःफलकेन सन्धयस्तु सप्तसंख्या एकैकतः, प्रथमादीनां सप्तानामेव उपपर्शु कानामुरःफलकेन सन्धानात् । ते च सन्धयो युक्तप्रतराः अन्यत्र प्रथमोपपर्शु कासन्धेः, स हि सर्वथा निश्चल एव । एवञ्च प्रथमसन्धिर्वर्जमपरेषु षट्सु दृश्यन्ते तत्संख्यानि श्लेष्मधरकलापुटकानि ।

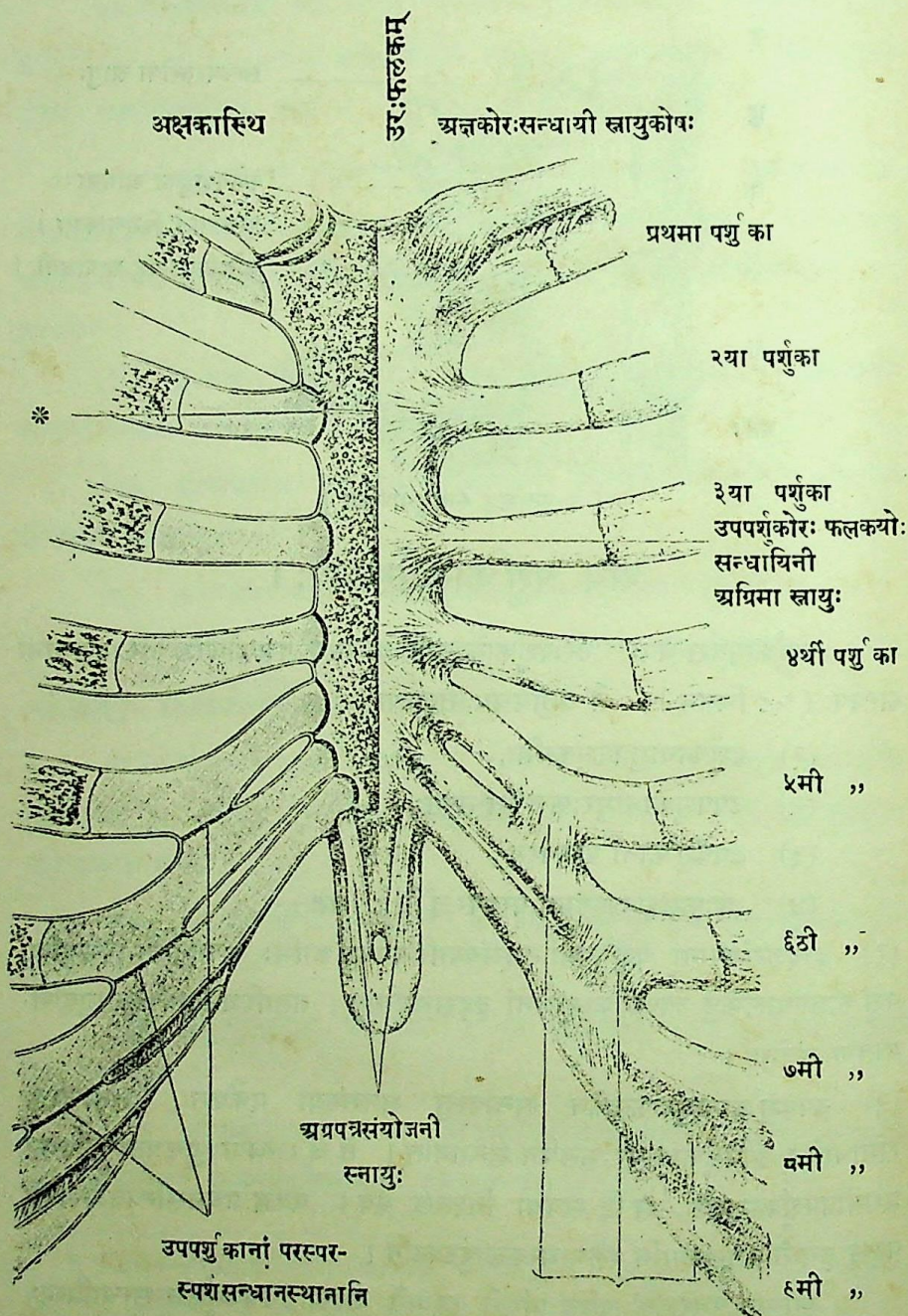
स्नायवः पुनरेकैकं सन्धिं परितो दृश्यन्ते चतस्रः उपपर्शुकोरःसन्धायिन्यः, कमात्—अग्रिमा, पश्चिमा, कोशाकारा, सन्ध्यन्तरीया चेति स्वनामव्याख्याताः ।

१ Articulations of the Cartilages of the ribs with the Sternum etc.

१२८

प्रत्यक्षशारीरम् ।

५८ चित्रम्—पशुकोरःसन्धयः ।



✽ उरःफलकान्तराला स्नायुः ।

उपपशु कान्तरालानि स्नायुसूत्राणि

द्वितीयोऽध्यायः ।

१२६

(३) उपपशुकानां परस्परसन्धयस्तु सम्पद्यन्ते कतिचित्स्नायुसूत्रैरुप-
पशुकान्तरालाख्यैः । ते च दृश्याः पञ्चम्यादिदशम्यन्तासु उपपशुकास्वप्रतः ।
तत्र पञ्चमी उपपशुका संयुज्यते षष्ठ्या स्तोकमात्रेण, षष्ठ्याद्यास्तु दशम्यन्ताः
द्वद्वसम्बद्धाः परस्परम् प्रायेण सव्यवधानम् । श्लेष्मधरकलासहिताः चलप्रतराश्च
ते केषुचित् सन्धिस्थानेषु ।

एकादशी द्वादशी चेति द्वे पशुं के अग्रतः उपपशुकांसंहिते अपि न केनापि
सम्बद्धे पुरस्तात् । अतएव तयोः विमुक्ताग्रसंज्ञेति प्रागवोचाम ।

(४) उरःफलकान्तरीयसन्धयस्तु ग्रैवेयक-मध्यफलकाऽग्रपत्राख्यानां खण्डानां
परस्परं द्वद्वसन्धानात् सम्पन्नाः । तत्र स्नायवश्चतस्रः, यथा—पुरस्त्या उरःफलक-
संयोजनी साधारणी, पश्चिमा उरःफलकसंयोजनी साधारणी चेति द्वे पूर्वापरे,
एका उरःफलकान्तराला ग्रैवेयक-मध्यफलकयोरन्तरालस्था तरुणास्थिप्राया,
अपरा अग्रपत्रसंयोजनी चेति ।

अथ अक्षकोरःसन्धानम् ।

अक्षकोरःसन्धानं^१ तु (५८ चित्रम्) अक्षकास्थः उरःफलकेन सन्धान-
मेकैकतः । तत् स्नायुकोषप्रतिबद्धं श्लेष्मधरकलासहितञ्च । तद्दृढीकरणाय चात्र
स्नायुः प्रथमपशुकया तत्संयोजनी, अक्षकयोरन्तरालस्था चापरा परस्परसंयोजनी ।

अक्षकांसन्धानं^२ तु अंससन्धिवर्णने व्याख्येयम् ।

अथ श्रोणिचक्रसन्धयः ।

श्रोणिचक्रसन्धयस्तावद् द्विधा वर्ण्यन्ते—श्रोणिचक्रास्थनां पृष्ठवंशेन,
परस्परञ्च सन्धानात् । तत्र—

श्रोणिचक्रस्य पृष्ठवंशेन सन्धिः द्वद्वप्रतराख्यः (५९ चित्रम्) ।
स च सम्पद्यते पञ्चम्या कटिकशेरुकया त्रिकास्थः सन्धिमाश्रित्य । तयोः
सन्ध्याभ्यां स्नायवः पृष्ठवंशस्नायुवत्, तासु काश्चित् तदनुबन्धिन्यः^३ । द्वे द्वे
चात्राधिके स्नायू एकैकतः—कटिजघनिका, कटिलिकान्तिका च नाम । तयोः—

१ Sterno-clavicular Articulation. २ यथा हि पृष्ठवंशसन्धिवर्णने वर्णिताः पञ्चविधाः
स्नायवः तद्वदिहापि । काश्चित् साधारणयाख्यानां पृष्ठवंशस्नायूनामनुबन्धिन्य इति विशेषः ।

कटिजघनिका^१ रज्जुगुच्छरूपा स्नायुश्चतुर्थ्याः पञ्चम्याश्च कटिकशेरुकायाः बाहुप्रवर्द्धनतो जघनधारान्तं सङ्गता । सा कटिनाडीप्रवेशाय मध्ये विवरान्विता ।

कटितिकान्तिका^२ दृढतृत्तिकोणपट्टिकाप्राया स्नायुः पञ्चम्या कटिकशेरुकाया त्रिकास्थः, श्रोणिफलकस्य च त्रिकस्थालकपरिधिना संयोजनी ।

श्रोणिचक्रास्थनां परस्परसन्धयः पुनश्चतुर्विधाभिः सम्पद्यन्ते स्नायुभिः (५६ चित्रम्) ।

(१) त्रिकास्थनो जघनकपालाभ्याम्, (२) त्रिकास्थः कुकुन्दरास्थना एकैकतः, (३) त्रिकानुतिकयोः, (४) भगास्थनोश्च परस्परमिति चतुर्धा सन्धानात् । तत्र—

(१) त्रिक-जघन-सन्धानं^३ दृढप्रतराख्यम् त्रिकमुभयतो जघनकपालयोः सन्धानात् । तत्र हि सन्धीयते त्रिकास्थि पार्श्वमेकैकतो जघनकपालस्य त्रिकस्थालकेन तरुणास्थिपत्रकावृतेन, न च तत्र प्रायो दृश्यते श्लेष्मधरा कलेति विशेषः । गर्भिण्यास्तु त्रिकस्थालकयोः सम्भवतः श्लेष्मधरौ कलापुटकौ, गर्भाभिवृद्ध्या श्रोणिफलकयोरीषच्चलीभूतत्वात् । स्नायवश्चात्र त्रिकजघन-संयोजन्यश्चतस्रः दृढपट्टिकाकाराः—द्वे द्वे एकैकतः क्रमाद्—अग्रिमा पश्चिमा चेति त्रिकजघनिकाख्ये ।

(२) त्रिक-कुकुन्दरास्थिसंयोजन्यश्च^४ स्नायवश्चतस्र एव,—द्वे द्वे एकैकतः क्रमात् लघ्वी गुर्वी च नामतः । ताभ्याञ्च यथादेशसंयुक्ताभ्यां परिणम्यते द्वारद्वय-मेकैकतः क्रमात्—गृध्रसीद्वारं कुकुन्दरद्वारञ्च । तत्र गृध्रसीविवरेण गृध्रस्याख्य-नाड्याः तदनुवर्तिनीनां सिराधमन्यादीनां शुण्डिकाख्यपेश्याश्च निर्गमः । कुकुन्द-द्वारेण पुनरन्तःस्थायाः श्रोणिगवाक्षिण्याः पेश्याः, तदनुचरीणां सिराधमनी-नाडीनाञ्च वस्तिगुहायां प्रवेशः । तत्र—

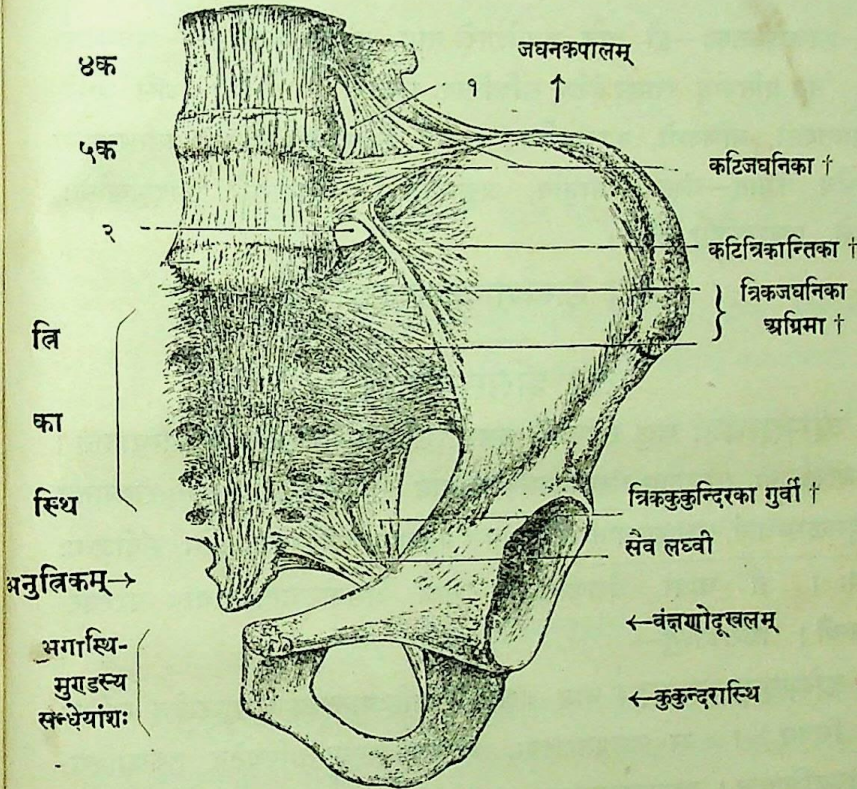
लघ्वी त्रिककुकुन्दरसंयोजनी^५ स्नायुः पुरःस्था तन्वी त्रिकोणप्राया च । सेयं त्रिकानुतिकयोः पार्श्वधारातः कुकुन्दरकण्टकान्तं सङ्गता ।

गुर्वी त्रिककुकुन्दरसंयोजनी^६ स्नायुः पश्चिमस्था स्थूला त्रिकोणप्राया च । सेयं मूलतः सम्बध्यते जघनकपालस्य पश्चिमाधःकूटेन त्रिकास्थनोऽधरोर्ध्व-पार्श्वेनाऽनुत्रिकास्थना च, अग्रतस्तु कुकुन्दरपिण्डेन श्रोणिगवाक्षपुरःपरिधिना च ।

१ Ilio-lumber Ligament. २ Lumbo-Sacral Ligament. ३ Sacro-iliac Articulation.
४ Sacro-ischiatic Ligament. ५ Lesser Sacro-Sciatic Ligament. ६ Great Sacro-Sciatic Ligament.

(३) त्रिकानुत्रिकसन्धायिन्यश्च स्नायवश्चतस्रः क्षुद्राः—अग्रिमा, पश्चिमा
पार्श्वगे द्वे चेति । सन्ध्यन्तराले चात्र दृश्यं तरुणास्थिचक्रम् ।

५६ चित्रम्—श्रोणिचक्रसन्धयः ।



[† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम् । १, २, कटिनाडीनिर्गमाय विवरद्वयम् । ४क।५क—४था५म कटि-
कशेरुकाद्वयम् । अत्र वामार्धे या याः स्नायवो यथा दर्शिताः, दक्षिणार्धेऽपि तास्तथैव ज्ञेयाः]

अनुत्रिकश्च क्षुद्रकशेरुकाचतुष्टयसङ्घातमयमित्युक्तपूर्वम् । तत्कशेरुखण्डाना-
ञ्चैव पार्श्वक्यं दृश्यते नारीषु प्रायः प्रसवकाले श्रोणिद्वारस्य विकसनसौकर्यार्थम् ।

(४) भगास्थनोः परस्परसन्धानं^१ तावत् स्वमुण्डाभ्यां मध्यरेखायाम् ।
संहितयोश्च तयोः भगास्थिसंज्ञेति प्राञ्चः, तत्र कचिद् भगपोठं लिङ्गपोठमिति वा
संज्ञा । सन्धानञ्चोदं दृढप्रतरमपि गर्भिण्याः किञ्चिद्विकसनक्षममिति परीक्षकाः ।

१ Sacro-coccygeal Ligaments. २ Symphysis Pubes.

सन्धायिन्यश्चात्र स्नायवश्चतस्रः, ताः भगास्थिसंयोजन्यो नाम क्रमात्—
उत्तरा, अधरा, अग्रिमा, पश्चिमा चेति । सन्धानान्तराले चात्र तरुणास्थिचक्रम्,
सर्वथा श्लेष्मधरकलाभावश्च ।

अंसचक्रसन्धयः पुनरंससन्धिर्वर्णने वर्णनीयाः ।

अथ शाखासन्धयः ।

शाखाश्चतस्रः—द्वौ बाहु ऊर्ध्वशाखे नाम, द्वे च सक्थिनी—अधःशाखे
नाम । तत्र प्रतिबाहु सप्तसु देशेषु सन्निविष्टाः सन्धयः । तद्व्यथा—अंसे, कूर्परे,
प्रकोष्ठान्तराले, मणिबन्धे, करकूर्चान्तः, करतले, कराङ्गलिषु चेति । प्रतिसक्थि
च तथैव क्रमात्—वंक्षणे, जानुनि, जङ्घान्तराले, पादसन्धौ, पादकूर्चान्तः,
पादतले, पादाङ्गलिषु चेति ।

अथ ऊर्ध्वशाखासन्धयः ।

तत्र अंससन्धयः ।

अंससन्धयः खलु सम्पद्यन्ते अक्षकांसफलक-प्रगण्डास्थनां सन्धानात् ।
तत्र अक्षकांसयोः सन्धानम् अंसचक्रसन्धानं नाम । प्रगण्डांसफलकयोः सन्धानम्
अंसोदूखलसन्धानं, कक्षासन्धानं वा नाम । बहवश्चानयोः सन्धानयोः संयोजन्यः
स्नायवः । द्वे चापरे अंसकान्तरीये नाम अंसफलकावयवानां परस्पर-
संयोजन्यौ । विशेषतस्तु—

अंसचक्रसन्धानम् नाम अक्षकास्थिवहिःप्रान्तस्य अंसकूटाग्रेण सन्धिः
(६० चित्रम्) । स चलप्रतरास्यः, क्वचित् सन्ध्यन्तःस्थितेन तरुणास्थि-
चक्रेणोपलक्षितश्च । तत्सम्बन्धन्यश्च स्नायवश्चतस्रः—द्वे अंसाक्षकबन्धन्यौ,—
उत्तरा अधरा^१ चेति, द्वे च तुण्डाक्षकबन्धन्यौ,—त्रिकोणिका, चतुरस्रिका^२
चेति । तासामाद्ये अंसचक्रसन्धायिन्यौ क्रमादूर्ध्वाधःस्थे, अन्त्ये अंसतुण्ड-
पश्चाद्वा^३ अक्षकास्थिवहिःप्रान्तस्य ऊर्ध्वाधस्तलं यावत् सन्नद्धे स्वनामव्याख्याते ।

अंसफलकान्तरीये^४ तु स्नायू क्रमात् तुण्डमूलिका^५ तुण्डकूटिका^६ च नाम ।
तत्राद्या अंसतुण्डस्य मूले अंसशिरःकोटरोपरि संलग्ना विवरीकरोति कोटरम्,
अन्त्या तु अंसतुण्डबाह्याद्वा^३ अंसकूटाग्रं यावत् सन्नद्धा ।

१ Acromio-Clavicular Articulation. २ Superior and Inferior Acromic-
clavicular Ligaments. ३ Coraco-clavicular Ligaments (Conoid and Trapezoid).
४ Ligaments of the Scapula. ५ Transverse. ६ Coraco-acromial,

चतस्रश्च कूर्परसन्धिवन्धन्य. स्नायवः— अग्रिमा, पश्चिमा, वहिःपार्श्विका, अन्तःपार्श्विका चेति । प्रकोष्ठास्थनोरुर्ध्वप्रान्तसन्धायिनी तु स्नायुर्मुण्डवेष्टनिका नामाग्रे वक्ष्यते । अग्रिमादि स्नायुत्रयस्य परस्परसम्बन्धस्तु त्रिणष्टः । तत्र—

अग्रिमा कूर्परसन्धिवन्धनी प्रगण्डास्थनः आन्तरावुदात्त सम्भूय अन्तःप्रकोष्ठास्थनश्चञ्चुप्रवर्द्धनपरिधौ सङ्गता मुण्डवेष्टनिकाख्यस्नायुसम्बद्धा च ।

पश्चिमा कूर्परसन्धिवन्धनी प्रगण्डास्थनः कूर्परखातोपकण्ठात् सम्भूय अन्तःप्रकोष्ठास्थनः कूर्परकूटपरिधौ संसक्ता ।

वहिःपार्श्विका प्रगण्डास्थनो बाह्यावुदात्त सम्भूय मुण्डवेष्टनिकाख्यस्नायौ सम्बद्धा ।

अन्तःपार्श्विका प्रगण्डास्थनः आन्तरावुदात्त सम्भूय अन्तःप्रकोष्ठास्थनः कूटद्वयान्तःपरिधौ संसक्ता ।

सर्वासाञ्चासां स्नायूनां परस्परसंयुक्तानां संसक्तभावात् स्नायुकोषवदवस्थितिः, अन्यत्र कूर्परकूटपृष्ठात् । तद्धि त्वङ्मात्रावरणमिति प्रागवोचाम ।

चेष्टाः— पुनरिह कूर्परसन्धौ संकोचः, प्रसारः, अन्तर्विवर्त्तनं, वहिर्विवर्त्तनञ्चेति चतुर्विधाः, तासां प्रसारस्तावद्वाहोर्दण्डीभावमात्रपर्यवसायीति विशेषः ।

श्लेष्मधरा चात्र कला सन्ध्यन्तरीया प्रकोष्ठास्थनोरुर्ध्वसन्धानान्तःप्रसृतया शाखया सह लक्षणीया ।

अथ प्रकोष्ठान्तरीयसन्धयः ।

प्रकोष्ठास्थनोः परस्परसन्धानं तावदल्पचेष्टम् ऊर्ध्वाध्रःप्रान्तयाः कोरं, मध्ये प्रतराख्यञ्च । तद्धि त्रिषु देशेषु दृश्यम्— ऊर्ध्वमधो मध्ये चेति । तत्र ऊर्ध्वसन्धाने सन्धीयते वहिःप्रकोष्ठास्थनो मुण्डमन्तःप्रकोष्ठास्थनश्चक्रनेमिखातेन, तत्संवेष्टनी चात्र स्नायुः मुण्डवेष्टनिका नाम वहिःप्रकोष्ठमुण्डस्य विवर्त्तनप्रदा । अपरा चात्रैवाऽधस्तात् तिरश्चीना स्नायुः प्रकोष्ठतिरश्चीना नाम । अधःसन्धाने तु सन्धीयते अन्तःप्रकोष्ठास्थनो मणिमुण्डं वहिःप्रकोष्ठास्थनोऽधःप्रान्तपार्श्वतः । बन्धनञ्चानयोः प्रकोष्ठाधरीयाख्यपूर्वापरस्नायुद्वयेन त्रिकोणतरूणास्थना च मणिबन्धसन्धिं प्रविष्टेन । मध्यसन्धानं पुनः प्रकोष्ठास्थिनलकयोरादूरवर्त्तिनो मध्यस्थया प्रकोष्ठान्तरालाख्यया दृढकलया, नत्वत्र तयोः साक्षात् परस्परस्पर्शः ।

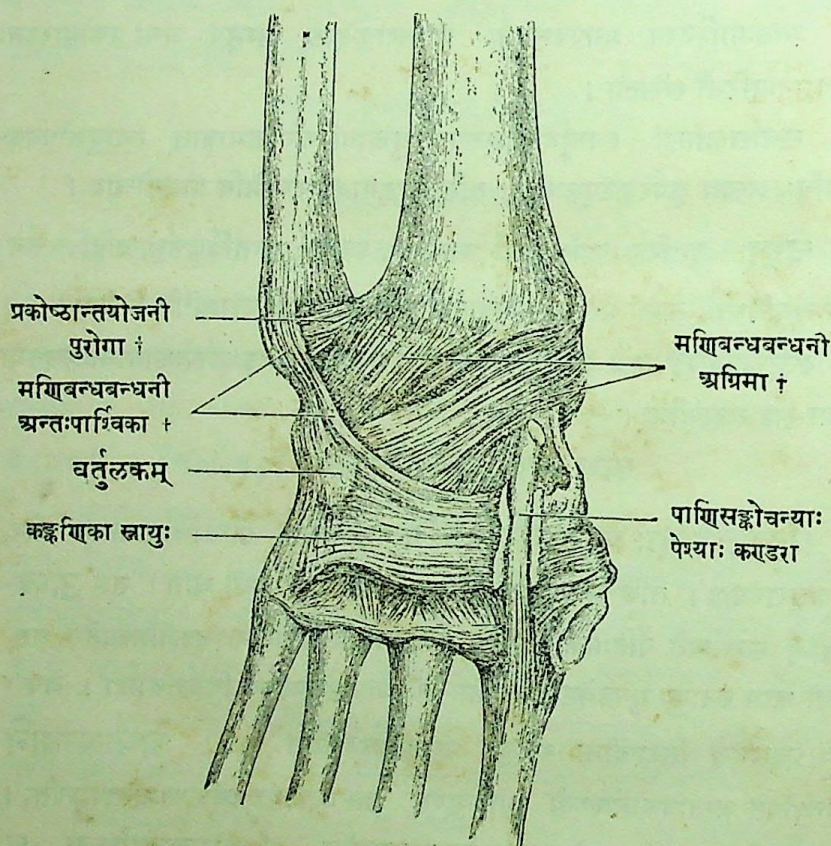
१ प्रसारितो हि बाहुर्दण्डबद्धवति, न त्वसौ ततःपरमवनम्यते धनुवत् । २ Radio-ulnar Articulations.

अथ मणिवन्धसन्धिः ।

मणिवन्धसन्धिस्तावत् खल्लकोराख्यः, वहिःप्रकोष्ठास्थनोऽधःप्रान्तस्थे ईषत्खल्लकोरभागे अर्द्धचन्द्र-नौनिभाख्योः कूर्चास्थनोर्नातिगभीरसन्धानात् (६२ चित्रम्) । अन्तःप्रकोष्ठाधःप्रान्तश्च नात्र सन्धायते साक्षात्, तत्संहितविकोण-तरुणास्थि व्यवधानेन उपलकाख्यकूर्चास्थनस्तत्र सन्धानात्^१ ।

६२ चित्रम्—मणिवन्धसन्धिः (पुरस्तलम्) ।

प्र को ष्ठा स्थि नी



मू ल श ला काः

[† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम्]

१ Wrist-Joint. २ एवञ्च अर्द्धचन्द्र-नौनिभोपलकाख्यस्य कूर्चास्थित्रयस्य मणिवन्धसन्धौ प्रवेशः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

१३७

मणिवन्धवन्धन्यस्त्वह स्नायवः पञ्च । चतस्रो रज्ज्वाकाराः—वहिः-
पार्श्विका, अन्तःपार्श्विका, अग्रिमा, पश्चिमा चेति । पञ्चमी कोषाकारा । तत्र
(६२ चित्रम्)—

वहिःपार्श्विका वहिःप्रकोष्ठास्थनो वहिर्मणिकाख्यप्रवर्द्धनात् सम्भूय नौनि-
भाख्यकूर्चास्थनः, कङ्कणिकाख्यस्नायोश्च पार्श्वतः सङ्गता ।

अन्तःपार्श्विका अन्तःप्रकोष्ठास्थनः अन्तर्मणिकाख्यप्रवर्द्धनात् सम्भूय
उपलक-वर्तुलकाख्ययोः कूर्चास्थनोः कङ्कणिकाख्यस्नायोश्च पार्श्वतः सङ्गता ।

अग्रिमा तु प्रततपट्टिकाकारा प्रकोष्ठास्थनोरधःप्रान्तयोः पुरस्तलात् सम्भूय
नौनिभाद्धचन्द्रोपलकाख्यानां पुरस्तले सम्बद्धा ।

पश्चिमा च तादृश्येव । सा केवलं वहिःप्रकोष्ठाधःप्रान्तस्य पश्चिमतलात्
सम्भूय पूर्वोक्तकूर्चास्थितयस्य पृष्ठतः सम्बद्धा ।

या तु पञ्चमी कोषाकारा स्नायुस्क्ता, सा सर्वसन्धिच्छादनी, तां दृढी
करोति रज्ज्वाकाराः स्नायवः पूर्वोक्ताः ।

श्लेष्मधरा कला च मणिवन्धसन्धौ विशेषतः शिथिला पुष्कल-
श्लेष्मवती च । अतएव मणिवन्धसन्धेः शैथिल्यम् ।

चेष्टाः पुनरत्र सन्धौ प्रवर्तन्ते नानाविधाः पुरःपश्चादन्तर्बहिर्विवर्त्तरूपाः ।
सन्धेश्चास्य शैथिल्यं स्थितिस्थापकता च भारधारणसौकर्याय ।

अथ करकूर्चान्तरीयसन्धयः ।

करकूर्चास्थीन्यष्टौ श्रेणीद्वयविन्यस्तानि,—एकैकस्यां श्रेण्यां चत्वारि
चत्वारोति । तत्रोर्ध्वश्रेणीस्थानां चतुर्णां मध्ये नौनिभाद्धचन्द्रोपलकाख्यानि त्रीणि
मणिवन्धसन्धौ प्रविष्टानि, वर्तुलकाख्यन्तु वहिःसन्धितः, तद्वि कण्डरान्तरीयं
चणकास्थीति केचिदित्युक्तपूर्वम् ।

अथैषां कूर्चास्थनां परस्परसन्धानं तावत् प्रतराख्यम् तेषां व्याख्येयञ्च—
ऊर्ध्वश्रेणीस्थानां परस्परम्, अधःश्रेणीस्थानां परस्परम्, ऊर्ध्वाधःश्रेण्योश्च परस्पर-
मिति । तत्र—

ऊर्ध्वश्रेण्यां नौनिभाद्धचन्द्रोपलकानां परस्परसम्बन्धन्यः स्नायवश्चतस्रः—

१ कङ्कणिका नाम कण्डराधारिणी स्नायुः पेशीखण्डे वर्णनीया । २ Carpal Articulations.

पुरोगा, पृष्ठगा, कूर्चान्तरीये द्वे चेति । वर्तुलकस्य तु बन्धनाय पृथगेव स्नायु-
कोषः, द्वे च तत्पुरोगे स्नायू अंकुशक-कनिष्ठामूलशलाकयोर्मूलतः संसक्ते ।

अधःश्रेण्यां पुनः कूर्चास्थिचतुष्टयं पञ्चभिः स्नायुभिः परस्परसम्ब-
द्धम्—द्वाभ्यां पूर्वापराभ्यां, तिसृभिश्च कूर्चान्तरीयाभिरिति ।

ऊर्ध्वाधःश्रेण्योश्च परस्परसन्धायिन्यश्चतस्रः स्नायवः—अग्रिमा,
पश्चिमा, अन्तःपार्श्विका, बहिःपार्श्विका चेति ।

सर्वासाञ्चासां परस्परानुप्रवेशात् स्नायुजालगवाक्षितः संहतस्वरूप इव च
द्रश्यते कूर्चास्थिसमुदायः । एवञ्च प्रतिकरमेकैकं शलाकाधिष्ठानमिति
प्रचीना संज्ञा ।

अथ करतलसन्धयः ।

करतलसन्धयस्तावत् प्रधानतः करतलनिर्मापिकाणां मूलशलाकानां
सन्धयः कोराख्याः । सन्धानञ्च तासां त्रेधा द्रष्टव्यम्—ऊर्ध्वं पर्याणक-कूटक-
मध्यकूट-फणधर-संज्ञैश्चतुर्भिः कूर्चास्थिभिः^१, अधस्ताद् अंगुलीपश्चिमनलकैः^२,
मूलतः परस्परञ्चेति^३ । तत्सन्धानप्रकारास्तु अस्थिखण्डे वर्णितपूर्वाः ।

अथेमाः करतले सन्धिवन्धन्यः स्नायवः—

एका पर्याणकांगुष्ठमूलशलाकयोर्मूलतः पृथक् श्लेष्मधरकलावती—कोष-
रूपा (सन्धिश्चायं परस्परकोर इति वर्णितपूर्वम्) । अन्याः अपरासां मूलशलाकानां
तत्तत्कूर्चास्थिभिर्बन्धनाय—षट् पृष्ठगाः, अष्टौ पुरोगाः, द्वे च सन्ध्यन्तरीये—
इति षोडशः स्नायवः ।

एकैव चात्र श्लेष्मधरा कला कनिष्ठादिमूलशलाकाचतुष्टयस्य मूलतः, सा
कूर्चास्थानामन्तरालेषु शाखाभिः प्रविष्टा अन्यत्र वर्तुलकसन्धेः । तत्र तु पृथगेव
श्लेष्मधरं कलापुटकम् ।

अंगुलिपश्चिमनलकानां सन्धयस्तु अंगुलिसन्धिवत् ।

मूलशलाकानां परस्परसन्धयः पुनरंगुष्ठवर्जमपरांसामेव मूलतः^४ । तत्र

१ Carpo-Metacarpal Articulations. २ Metacarpo-phalangeal Articulations.
३ Inter-Metacarpal Articulations. ४ विस्तरस्त्वासां मृतके द्रष्टव्यः । ५ सन्धिप्रकार-
स्मरणार्थं श्लोकास्तु अस्थिखण्डे २० पृष्ठान्ते द्रष्टव्याः । ते च “सन्धीयन्ते करे मूलशलाका”—
इति पाठपरिवृत्त्या पठनीयाः करविषये ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

१३६

त्रिविधाः सन्ध्यायिन्यः स्नायवः—पूर्वगाः, पृष्ठगाः, शलाकान्तरीयाश्चेति । तत्र मूल-
शलाकानामन्तरालस्थाः दृढस्नायवः 'शलाकान्तरीया' नाम । शलाकानां परस्पर-
स्पर्शाभावेऽपि ताभिः परस्परसम्बद्धानि मूलशलाकाग्राणि ।

अथ करांगुलिसन्धयः ।

करांगुलिसन्धयस्तु अंगुलिनलकानां चतुर्दशानां चतुर्दश—
एकैकस्यामंगुल्यां त्रयस्तयः, द्वावंगुष्टे चेति । ते च कोराख्याः ।

एकैकस्मिंश्च अंगुलिसन्धौ लघुस्नायवस्ति एव—पुरोगा, अन्तःपार्श्विका,
वहिःपार्श्विका चेति । पृष्ठगा तु स्नायुरत्र पृथग् न दृश्यते, करप्रसारण्याख्यपेशीनां
कण्डराभिरेव तत्प्रयोजनसाधनात् ।

चेष्टाः पुनः करांगुलीनां सङ्कोच-प्रसाराऽन्तःकर्षण-वहिःकर्षणरूपाः, जपनं^१
चांगुष्ठस्य । तत्तत्प्रवर्तन्यः पेश्यस्तु अग्रे वर्णनीयाः ।

अथ अधःशाखासन्धयः ।

अधःशाखासन्धयस्तावत् प्रायेणोर्ध्वशाखासन्धिवदेव, विशेषास्तु तत्र अव-
स्थानभेदकृताः । तत्रादौ—

बन्धणसन्धिः ।

बन्धणसन्धिः^२ नाम (६३ चित्रम्) श्रोणिफलकस्थस्य वक्षणोदूखलस्य
तरूणास्थिवलयवेष्टितस्य ऊर्वस्थिमुण्डेन सन्धानमुदूखलाख्यम् । तत्र च महती
श्लेष्मधरा कला सन्धिच्छादनस्य महास्नायुकोषस्य अन्तर्व्यापिनी । सन्धिप्रवन्धन-
श्चात्र एक एव महान् स्नायुकोषः प्रधानभूतः—स च वक्षणोदूखलपरिधेः सम्भूय
ऊर्वस्थिग्रीवामभितः शिखरान्तरालाख्ययोश्च रेखयोः सम्बद्धः । स्नायुकोषश्चायं
तिसृभिर्दृढस्नायुरज्जुभिः श्रोणिफलकावयवभूतादस्थित्रितयात् समुदुगताभि-
र्दृढीकृतः—इत्यत्र विशेषः । चेष्टावांश्च सुदृढश्चायं सन्धिर्दृढपेशीभिः समन्तात्
सुरक्षितः^३ ।

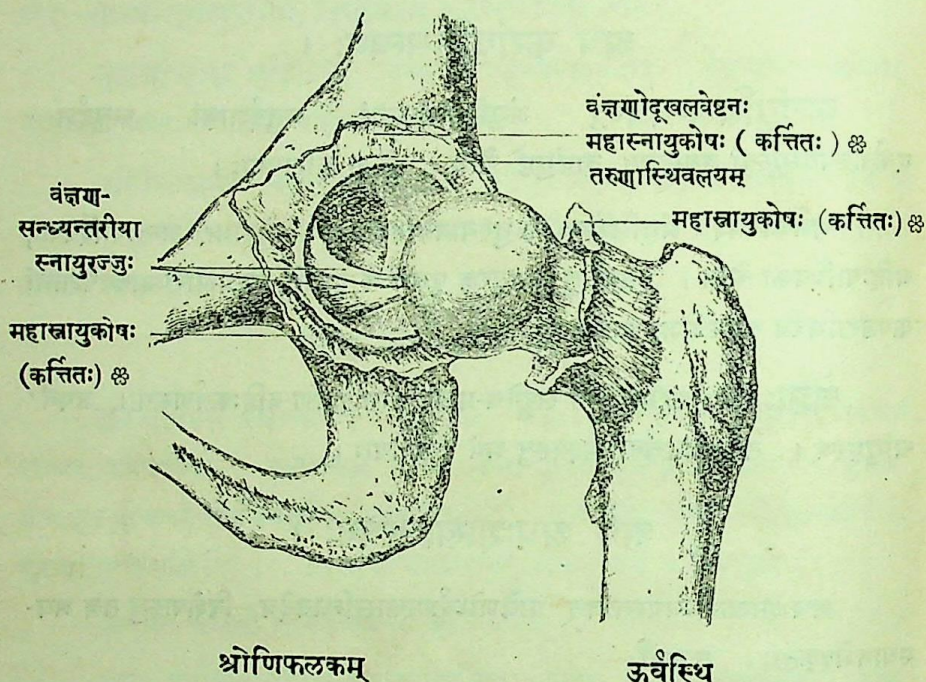
१ Phalangeal Articulations. २ जपनं जपकर्मणि व्यापृतस्यांगुष्ठस्य चेष्टाविशेषः,
स च कराङ्गुष्ठस्यैव सम्भवति । ३ Hip-Joint. ४ अतएवात्र यदा सन्धिच्युतिर्भवति तदासौ
महता बलेन दुर्निपुणचिकित्सया च साध्यते ।

१४०

प्रत्यक्षशारीरम् ।

६३ चित्रम्—वंक्षणसन्धिः ।

(स्नायुकोषच्छेदेन सेन्धेरभ्यन्तरं दर्शितम्)



(❧ एक एव स्नायुकोषोऽयं वंक्षणसन्धिच्छादनः)

महास्नायुकोषान्तश्चात् द्रष्टव्या वंक्षणसन्ध्यन्तरीया^१ नाम दृढा स्नायुरज्जुः—
सा वंक्षणोदूखलमध्यस्थाद् गभीरकोटरादुद्भूय ऊर्वस्थिमुण्डस्थे गर्ते सम्बद्धा
वंक्षणसन्धेः शिथिलत्ववारणाय ।

अथ जानुसन्धिः ।

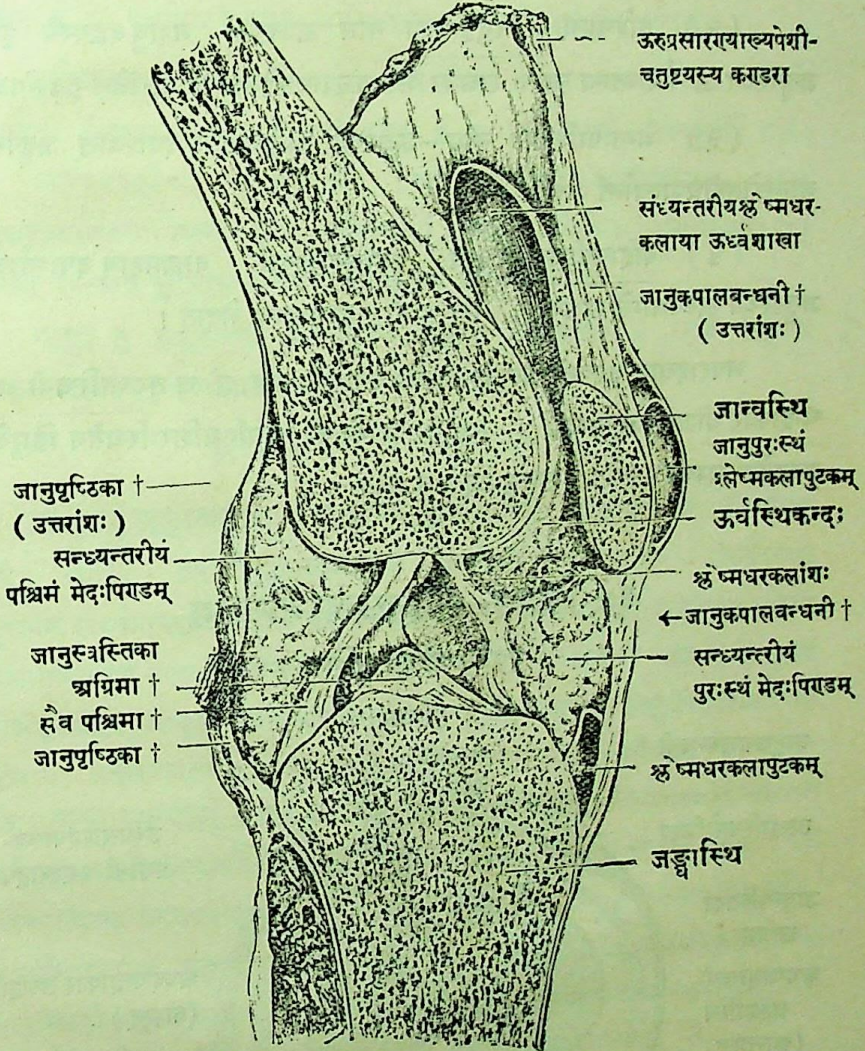
जानुसन्धिः^२ नाम ऊरु-जानु-जङ्घास्थनां सन्धिर्वहुधासम्बद्धश्चेष्टावान्
(६४ चित्रम्) । तत्र जानुकपालस्य ऊरुजङ्घास्थिभ्यां सन्धिः प्रतराख्यः,
ऊरुजङ्घास्थनोः सन्धिः पुनः सुदृढः कोराख्यश्च । अनुजङ्घास्थनस्तु जानुसन्धौ न
प्रवेशः, तत्सन्धानस्य तत्पार्श्वतः पृथगवस्थानात् ।

१ Ligamentum Teres. २ Knee-Joint.

६४ चित्रम्—जानुसन्धिः

(ऊर्ध्वाधरच्छेदेन दर्शितः)

ऊर्वस्थि



[† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम्]

तत्र ऊरुजानुजङ्घास्थानां त्रयाणामपि संवेष्टनः तनुरपि दृढप्रायः स्नायुकोषः
एक एव । तदुद्वेदीकरणार्थं चतस्रः स्नायवस्तत्संज्ञकाः सन्धिवाह्याः । तद्वयथा—

(१) पुरोगा—जानुकपालबन्धनी^१ नाम, सेयं जानुकपालपरिधेः सम्भूता । तस्या अधरांशो जङ्घास्थः ऊर्ध्वप्रान्तपुरस्तलस्थेऽर्बुदे सम्बद्धः, उत्तरांशः पुनरुर्ध्वगतया ऊरुप्रसारण्याख्यपेशीचतुष्टयस्य सम्मिलितकण्डरयामिलितः स्नायु-कोषस्य पुरःप्रतिबद्धः ।

(२) पश्चिमगा—जानुपृष्ठिका नाम ऊर्वस्थनो महावुर्दद्वयस्य पृष्ठतो जङ्घास्थन ऊर्ध्वप्रान्तस्य पृष्ठतः सन्नद्धा कलाकलपाख्यपेश्याः कण्डरांतेन दृढसंबद्धा ।

(३) अन्तःपार्श्विका नाम—ऊर्वस्थन आन्तरमहावुर्दपाश्वात् जङ्घास्थन आन्तरोत्सेधपाश्चान्तं सन्नद्धा ।

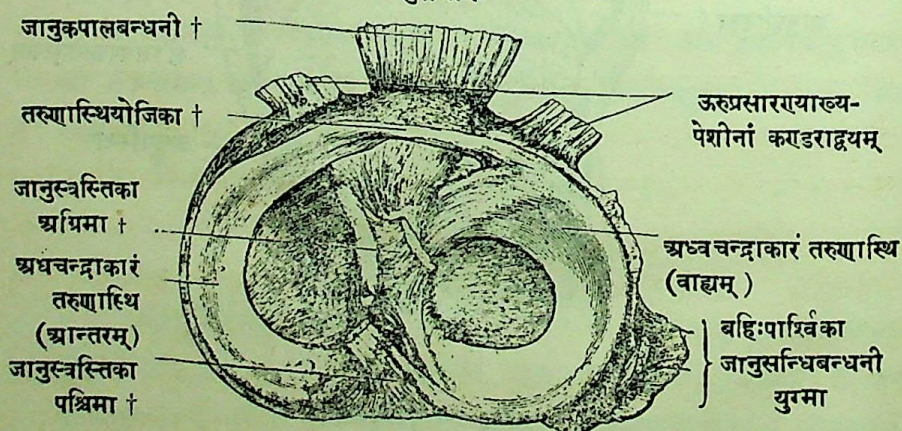
(४) बहिःपार्श्विका—नाम स्नायुरूर्वस्थनो बाह्यमहावुर्दपाश्वादनु-जङ्घास्थन ऊर्ध्वप्रान्ते संसक्ता । सा युग्मा—दीर्घ-ह्रस्व भेदात् ।

अपराश्चात् दृश्यन्ते जानुसन्ध्यन्तः स्नायवः पञ्च, द्वे च तरुणास्थिनी अर्द्ध-चन्द्राकारे योजकरज्जुसम्बद्धे । तत्र तरुणास्थिनी जङ्घास्थिशिरःस्थितेन द्विमुखेन कण्टकेन सम्बद्धप्रान्ते । स्नायुपञ्चकन्तु यथा—

६५ चित्रम्—जानुसन्धेरभ्यन्तरम्

(पूर्वापरच्छेदेन दर्शितः)

पुरोभागः



(† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम्)

१ Ligamentum Patellae. २ Semilunar Cartilages.

द्वे जानुस्वस्तिकाख्ये^१—अग्रिमा पश्चिमा चेति स्नायू । ते जङ्घास्थि-
शीर्षस्थद्विमुखकण्टकोपकण्ठात् समुत्थाय क्रमाद् ऊर्ध्वस्थिवाह्यान्तःकन्दयोः
स्वस्तिकवत् सम्बद्धे ।

तिस्रश्च तत्र श्लेष्मधरकलावन्धन्यः स्नायवः यथा—एका त्रिकोणाकारा
पुरोगा, द्वे च पक्षतिप्राये पृष्ठतः अर्द्धचन्द्राकारतरुणास्थिप्रान्तेषु संसक्ते ।

श्लेष्मधरा कला तु जानुसन्धौ द्विविधा—एका सन्ध्यन्तरीया महोर्ध्व-
शाखावतो विशाला च स्नायुत्रयनिबद्धा, द्वे च सन्धिवाह्यो कलापुटके इति ।
तत्र सन्धिवाह्यमेकं कलापुटकं त्वग्जानुकपालयोरन्तरालस्थम्, अपरं
जानुकपालवन्धन्याः स्नायुरज्ज्वाः पश्चिमस्थं कण्डरानुगमिति । सन्ध्ययन्तश्चात्र
द्रष्टव्यम् पुरस्तात् पृष्ठतश्च श्लेष्मधरकलाच्छत्रं मेदःपिण्डद्वयम् ।

चेष्टा तु जानुसन्धौ द्विविधैव—सङ्कोचः प्रसारश्चेति । तत्र सङ्कोचः
पुष्कलः, प्रसारस्तु दण्डीभावान्त इति विशेषः ।

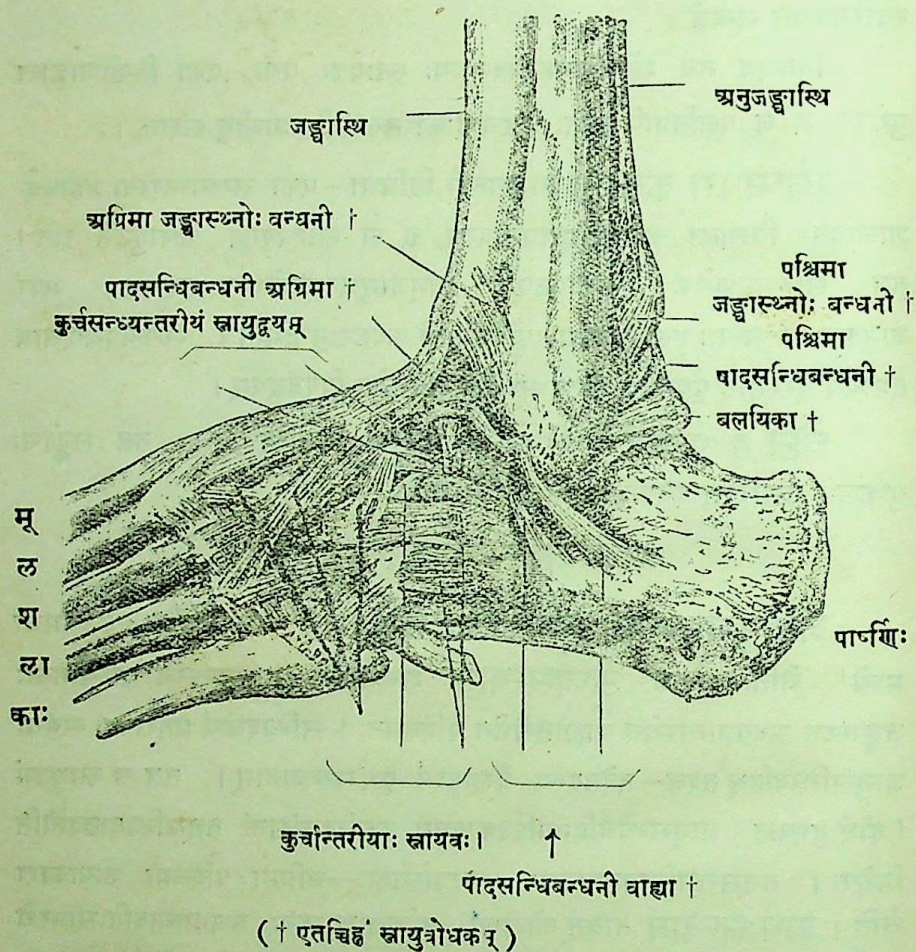
अथ जङ्घान्तरीयसन्धयः ।

जङ्घानुजङ्घास्थनोः परस्परसन्धानं तावत् त्रिषु प्रदेशेषु—ऊर्ध्वमधो
मध्ये^२ चेति । तत्र ऊर्ध्वसन्धाने सन्धीयते अनुजङ्घास्थन ऊर्ध्वप्रान्तः
जङ्घास्थन ऊर्ध्वप्रान्तस्थेन वाह्योत्सेधेन पश्चिमतः । सन्धिश्चायं प्रतराख्यः सर्वथा
जानुसन्धिवहिर्भूतश्च—तदेतदस्य वैसादृश्यं कूर्परसन्धानात् । तत्र च स्नायुद्वयं
(दीर्घं ह्रस्वश्च) जानुसन्धेर्वहिःपार्श्विकाख्यम् ऊर्ध्वस्थिसंसक्तं तत्सन्धिदान्द्यायेति
विशेषः । तत्सन्धायिन्यश्चापराः स्नायवस्तिस्रः—अग्रिमा पश्चिमा कोषाकारा
चेति । अधःसन्धानं तावत् कोराख्यं—तद्वि जङ्घास्थनः अधःप्रान्तवहिःसीमस्थे
कोरत्रिकोणप्रदेशे सन्धीयते । अनुजङ्घास्थनोऽधःप्रान्तो बहिर्गुल्फनिष्पादकः ; तत्र
च सन्धायिन्यः स्नायवश्चतस्रः—अग्रिमा, पश्चिमा, वलयिका, सन्ध्यन्तरीया चेति ।
एवं संहिताभ्याश्च जङ्घानुजङ्घास्थिभ्यां सन्धीयते कूर्चशिरः—सोऽयं गुल्फसन्धिः
पादसन्धिर्वा अनुपदं व्याख्येयः । जङ्घानुजङ्घास्थनोरधःसन्धिवन्धन्यः स्नायवस्तु तिस्र
एव—अग्रिमा, पश्चिमा, सन्ध्यन्तरीया चेति—स्वनामव्याख्याताः ।

मध्यसंधानं तु जङ्घानुजङ्घास्थनोर्द्वन्द्वकलयैव तदन्तरालस्थया; न त्वनयो-
र्नलकयोः परस्परस्पर्शः ।

१ Crucial Ligaments. २ Superior, Inferior and Middle Tibio-fibular
Articulations.

६६ चित्रम्—जङ्घास्थिद्वयसन्धिः ।



अथ गुल्फसन्धिः ।

गुल्फसन्धिः^१ पादसन्धिर्वा नाम जङ्घानुजङ्घास्थनोरधःप्रान्तयोः कूर्चशिरसा सन्धिः खल्लकोराख्यः । तत्र हि जङ्घास्थिद्वयाधःप्रान्तस्थं खल्लवत्कोरं स्थालकमाश्रित्य विवर्तते समग्रः पादः पुरःपश्चादन्तर्बहिश्च कूर्चशिरोव्यवधानेन । अत एवास्य पादसन्धिरित्यपि संज्ञा ।

१ Ankle Joint.

द्वितीयोऽध्यायः ।

१४५

गुल्फसन्धिसम्बन्धन्यः स्नायवस्तु चतस्रः (६६ चित्रम्), तद्वयथा—

अग्रिमा—जङ्घाधःप्रान्तस्य कूर्चशिरसश्च पुरःपरिधौ सम्बद्धा ।

पश्चिमा—प्रतनुगुच्छमयी तयोरेव पश्चिमपरिधौः सम्बद्धा ।

अन्तःपार्श्विका (गुल्फत्रिकोणिका वा) नाम । सेयं जङ्घाधःप्रान्तीयादन्त-
गुल्फाख्यभागात् सम्भूय नौनिभ-कूर्चशिरः-पाणि-संज्ञस्य कूर्चास्थितयस्य अन्तः-
सोमि सम्बद्धा ।

बहिःपार्श्विका—अनुजङ्घाधःप्रान्ताद् बहिर्गुल्फाख्यात् सम्भूय कूर्चशिरः-
पाणि-संज्ञयोः कूर्चास्थनोर्बहिःसोमि सन्नद्धा ।

अथ पादकूर्चान्तरीयसन्धयः ।

पादकूर्चास्थनां सन्धानप्रकारास्तावद् वर्णितपूर्वाः । तत्सन्धायिन्यः
स्नायवः पुनर्वहवः (६६, ६७ चित्रयोः) । तासां परस्परानुप्रवेशात् स्नायुजाल-
गवाक्षितो दृढसन्धानादेकीभूत इव च दृश्यते पादकूर्चास्थिसमुदायः करकूर्चास्थि-
सङ्घवत् । तथाच प्रतिपादमेकैकं कूर्चास्थिसङ्घं शलाकाधिष्ठानं नामाहुः प्राञ्चः ।

तासाञ्च स्नायूनां मध्ये इमास्तावद् विशेषतो लक्षणीयाः—

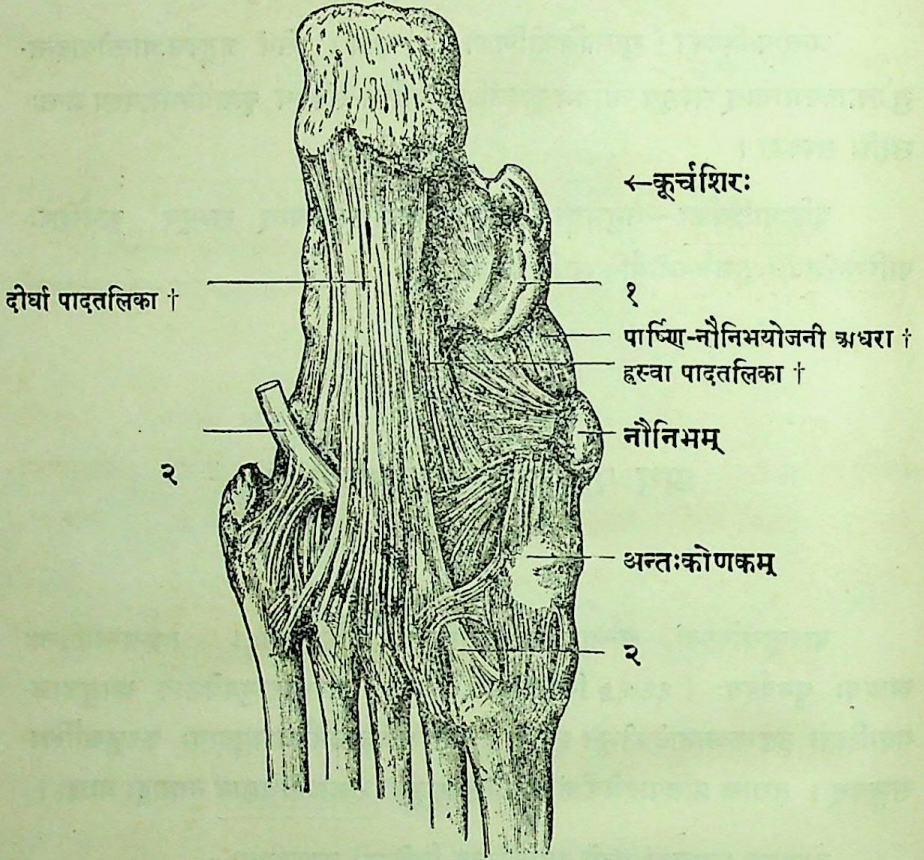
(१) पाणि-कूर्चशिरसोः सन्धायिन्यस्तिस्रः स्नायवः—अन्तःपार्श्विका,
बहिःपार्श्विका, पश्चिमा चेति ।

(२) घन-पाणि-योः सम्बन्धन्यश्चतस्रः । तद्वयथा—द्वे पादतलिके—दीर्घा
ह्रस्वा चेति, द्वे च पादपृष्ठिके इति । तत्र दीर्घा पादतलिका संसृज्यते दीर्घायाः
पादविवर्त्तन्याख्यपेश्याः कण्डरान्तेन ।

(३) नौनिभ-पाणि-योः सन्धायिन्यौ द्वे—उत्तरा, अधरा चेति ।

६७ चित्रम्—पादतलस्थाः स्नायवः ।

पार्श्वः



मूलशलाकाः

[† एतच्चिह्नं स्नायुबोधकम्]

चित्रव्याख्या—१ कूर्चशिरसस्तलस्था सीता दीर्घाङ्गुष्ठसङ्कोचन्याख्यपेश्याः कण्ठरान्त-
धारणाय । २, २, दीर्घायाः पादविवर्तन्याख्यपेश्याः कण्ठरान्तौ ।

(४) नौनिभ-कूर्चशिरसोः सम्बन्धन्यस्तिस्रः—पादतलगा, पादपृष्ठगा,
सन्ध्वन्तरीया चेति ।

(५) कोणकाख्यानां त्रयाणां परस्परसम्बन्धन्यश्च तिस्रस्तथैव ।

(६) अन्तर्बहिःकोणकयोः सन्ध्यायिन्यश्च तिस्रस्तथैवेति ।

अथ पादतलसन्धयः ।

पादतलस्य तावत् पश्चाद्धर्माश्रित्य स्थिताः सन्धयः कूर्चान्तरीयसन्धिवर्णने वर्णितपूर्वाः । तत्पूर्वार्द्धसन्धयस्तु पादमूलशलाकासन्धयो^१ नाम कोराख्याः । सन्धानञ्च तासां तेषां द्रष्टव्यम्—पुरस्तात् पादांगुलिपश्चिमनलकैः, पश्चात् कोणकत्रयेण घनाख्येन च कूर्चास्थिता, मूलपार्श्वतः परस्परञ्चेति (६७ चित्रम्) । तत्सन्धानप्रकारास्तु स्मारकपथैः वर्णितपूर्वाः^२ ।

तत्र पुरस्तात् पादांगुलिपश्चिमनलकैः सन्धयः अंगुलिसन्धिवत्, पश्चात् कूर्चास्थिभिः सन्धयः पुनस्त्रिविधाभिः स्नायुभिः प्रतिबद्धाः ताश्च—पादतलगाः, पादपृष्ठगाः, सन्ध्यन्तरीयाश्चेति ।

मूलशलाकानां परस्परसन्धयस्तु अंगुष्ठवर्जमपरासामेव मूलतः । तत्रापि त्रिविधाः स्नायवः पूर्ववत् । अत्रतस्तु मूलशलाकानामन्तरालस्था बृहत्स्नायवः शलाकान्तरीया नाम । तत्र शलाकानां परस्परस्पर्शभावेऽपि तामिः परस्पर-सम्बद्धानि दृश्यन्ते मूलशलाकाप्राणि ।

अथ पादांगुलिसन्धयः ।

पादांगुलिसन्धयः^३ करांगुलिसन्धिवत् पादांगुलिनलकानां चतुर्दशानां चतुर्दश,—एकैकस्यामंगुल्यां तयस्त्रयः, द्वावंगुष्ठे चेति । ते कोराख्याः ।

स्नायवश्च तत्र करांगुलिसन्धिवदेव विज्ञेयाः ।

चेष्टास्तु पादांगुलिषु स्वल्पतराः सङ्कोच-प्रसारान्तःकर्षण-वहिःकर्षणरूपा-श्चतस्रः । पादांगुष्ठस्य तु करांगुष्ठवत् नास्ति जपादिसामर्थ्यमिति विशेषः ।

तदेतत् सन्धिस्नायुखण्डं समाप्तम् ।

१ Metatarsal Articulations. २ अस्थिखण्डस्य २० पृष्ठे । ३ Phalangeal Articulations.

इति

वङ्गाधिपतिश्रीमन्महाराजलक्ष्मणसेननरपतेः सभापण्डितस्य महाकविश्रीधोयोसेन-
कविराजस्य वंशधरेण श्रीमन्नारायणकरुणावतारश्रीकृष्णचैतन्यतनयीकृत-
धन्यजनिश्रीमद्रघुनन्दनगोस्वामिदौहितकुलोद्भवेन निखिलराढाभूमि-
सौरभप्रभवश्रीखण्डपुरवास्तव्य-विद्याकल्पद्रुमेत्यन्वर्थनामधेय-
सर्वतन्त्रस्वतन्त्रश्रीविश्वनाथोपमविश्वनाथकविराजात्मजेन
महामहोपाध्याय-श्रीगणनाथसेनशर्म-सरस्वती-
विद्यासागर-वैयावतंस-एम्-प, एल्, एम्, एस्
इत्याद्युपाधिकेन प्राणाचार्येण विरचिते

प्रत्यक्षशारीरे

अस्थि-सन्धि-स्नायुवर्णनीयो नाम

प्रथमो भागः

समाप्तः ।

॥ श्रीकृष्णचरणार्पणमस्तु ॥

“प्रत्यक्षशारीर”मधिकृत्य निखिलभारतीय वैद्यशिरोमणीनां

अप्रार्थितप्रशंसा-वचनानि

मुम्बई वास्तव्यानां, भारतविश्रुतानां बहुवैद्यग्रन्थसम्पादनानामायुर्वेदमार्तण्ड
पं० श्रीयादवजीविकमजी आचार्याणामभिप्रायः (आयुर्वेदीयप्रथमालातः)—

“कलिकातानगरवास्तव्यैः वैद्यावतंस-कविराज श्रीगणनाथसेन-महोदयः संस्कृतभाषया विरचितस्य ‘प्रत्यक्षशारीरस्य’ प्रथमभागमधिगम्य सत्यं सन्तोषमावहति चेत्तः। एतत्त्ववश्यं स्वीकरणीयम् यद्वर्तमानसमयेऽवशिष्टेषु चरकसुश्रुताद्यायुर्वेद ग्रन्थेषु यच्छारीरज्ञानं वर्तते, न तच्छल्य-चिकित्सायां कायचिकित्सायां वा पर्याप्तम्। त्रुटिमेनां सम्पत् पूरयितुं कविराजमहोदयैः समारब्धोऽयं यत्नः। कृतकृत्याश्च ते खल्वस्मिन् यत्ने। एतत्कार्यं सम्पादयितुं श्रीगणनाथसेन व्यतिरिक्तो न कोऽपि पुरुषः सम्प्रति भारतवर्षमलङ्कृते। यतो ये प्राच्यायुर्वेदाभिज्ञा वैद्याः सन्ति न ते प्रत्यक्षोक्तशारीरतत्त्वाः, ये च प्रतोच्यायुर्वेदाभिज्ञा भिषजो डाक्टरपदवाच्याः, न ते प्राच्यायुर्वेद-मर्मज्ञाः, न वा संस्कृतभाषयेदृशग्रन्थरचनायां समर्थाः। श्रीगणनाथसेनास्तु प्राच्यप्रतीच्योभय-भिषग्विद्यामर्मज्ञाः, प्रत्यक्षोक्तशारीरतत्त्वाः, संस्कृतभाषया गद्यपद्यरचनायां चातीव प्रौढाः। यदा खलु भारतवर्षे ईदृशग्रन्थानामध्यापनं, शारीरतत्त्वस्य प्रत्यक्षतः शिक्षणं च प्रचरिष्यति, स एवास्माकं मृतप्रायस्यायुर्वेदस्य पुनरुज्जीवनारम्भदिवसः।”

मद्रासवास्तव्यानां वैद्यरत्नोपाधिक पं० डो० गोपालाचार्याणाम्—

“एष ग्रन्थः सम्पूर्णतां प्राप्तः आयुर्वेदजलनिधेः कौस्तुभमिव भविष्यति। अवश्यपाठ्योऽयं छात्राणाम्। ईदृशं दुष्करं कर्म सम्पादयितुं साम्प्रतं भवानिव भवानेव दृश्यते।”

कानपुर निवासिनां चिकित्सक-चूडामणि पं० श्रीरामेश्वरमिश्र वैद्यशास्त्रिणाम्—

“अनेकविस्दावलीप्रोज्ज्वला आत्मीयैस्तेजोभिरिदानीं कलिकाताभिधां महानगरी-मलङ्कुर्वाणाः ‘सम्प्रति शल्यतन्त्रवञ्चितो ह्यायुर्वेद’ इत्यभिसूयया तं परैर्विगर्हितप्रायमालोच्य प्रत्यक्षशारीराभिधं ग्रन्थरत्नं विरचयन्तो निखिलायुर्वेदोपजीविनां भिषजां लोकानाञ्च मनो रञ्जयन्तो धन्यवादाभिनन्दनार्हाः श्रीमन्तो गणनाथा विद्याचञ्चवो विपश्चिदगुरवः समुल्लसन्तितराम्,—यदेते महानुभावा निद्राणमप्यायुर्वेदं जगति प्रथयितुम् औरभ्र-पौष्कलावतादिमुनिगणानां नाथाः सुश्रुता इवाऽवातरन्ति।”

रत्नमाला (चम्पारन) वास्तव्यानां सुप्रसिद्ध-विद्यावयोवृद्ध-वैद्यप्रवरानां
पं० श्रीचन्द्रशेखरधरशर्मणाम्—

“प्रत्यक्षशारीर” निर्मितवता भवता आयुर्वेदस्य विकलमङ्गं यथा पुनरपि सकलं व्यधायि, नाद्यावधि केनापि सुशकं तद्भूतं। सत्यमेव विश्वसिमि, यथा वेदोद्धाराय भगवतो व्यासस्य प्रादुर्भावः समभूद्, यथा च धर्मोद्धाराय श्रीशङ्कराचार्यपादानामवतारोऽभवत्, तथा आयुर्वेदो-द्धारार्थमेव भवतामाविर्भाव इति।”

नेपालमहाराजान्तिकस्थ राजवैद्यानां श्रीमतां रामदास भिषकप्रवरानाम्—

“हन्त सनाथीकृती लोकः। “प्रत्यक्षशारीर” तत्त्वामृतपानलोलुपा रमन्ते वैद्यलोकाः यतस्ते स्वीयविद्यायां शल्यतन्त्रस्य प्रचाराभावात् नानाविधशास्त्रनिपुणा अपि नखदन्तभक्षा इव भ्रमन्ति। तादृशानां महात्मनामन्येषाञ्च वैद्यविद्याजिज्ञासूनामुपकाराय प्रत्यक्षशारीराख्यो मार्गः प्रदर्शितो भवद्भिरेव प्रथमः”—इति।

कलिकातावास्तव्यानां कविरत्नोपाधिक-विद्वद्भिर कविराजवर्य श्रीराजेन्द्रनारायण
सेन महोदयानामभिमतम्—

“प्रत्यक्षदृष्ट-नरदेहतत्त्ववर्णनपरं संस्कृतभाषया सङ्कलितं पुस्तकमिदं शारीरतत्त्वबोधकै-
श्चित्रैस्तथा सुसिद्धान्तनिकरैरन्वर्थपरिभाषाप्रकटनैश्च अत्युपादेयतया प्रतिभाति । सफलश्रमोऽयं
ग्रन्थकारः । अध्येतारश्च सर्वथा सिद्धार्थीः स्युरिति ।”

वैद्यरत्नोपाधिधारिणां प्राच्यप्रतीच्यशास्त्रविदुषां कविराज श्रीयोगेन्द्रनाथ सेन
विद्याभूषण, एम्, ए. महाशयानामभिप्रायः—

“प्रत्यक्षशारीरं” दृष्ट्वा नितरां ह्लादितोऽस्मि । अस्य भाषाया उत्कर्षो विषयस्य गौरवं
संबदत्येव । अस्थिसंख्यानादि प्रस्तावेषु समधिकं वैदुष्यमत्र प्रकटीकृतम् । सिद्धान्तानां चमत्कारित्वं
च सर्वैरेवांगीकर्तव्यम् । ग्रन्थोऽयं वैद्यानामुपादेयो भविष्यतीत्याशास्ते—योगीन्द्रनाथ सेनः ।”

कलिकातास्थ भिषग्बराणां कविराज श्रीश्यामादास वाचस्पति महोदयानाम्—

“धान्वन्तरीय-निबन्ध-प्रतिसंस्कारमेनं वदतां कमपि धीविभ्रमं नावैमि । कालवशाद्
विपरिणम्यमाने जगति विविधेषु खल्वपि विषयेष्ववश्यम्भावी प्रतिसंस्कारः । यो यो मनीषेतिता
देशकालपात्रायणसुख्य तमनुतिष्ठति, स तु नायकपदवीमलङ्कुर्वानो धन्यवचनभाग् भवति । प्रणेता
तावत् प्रत्यक्षशारीरस्य गणनाथो धन्यवचनभूमिः । नवीनतत्त्वज्ञिज्ञासु-धान्वन्तरीयाणामन्येषा-
ञ्चायमुपकर्ता, चेतश्चमत्कर्ता च सम्पत्स्यते ।”

श्रीखण्डवास्तव्य-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-कविराज श्रीराधिकानाथ राय कविरत्नानाम्—

इतः प्राग् द्विसहस्रवर्षकालेनापि यत्कार्यं कर्तुमशक्यमासीदतीतैर्बर्त्तमानैश्च वैद्यवर्गैः,
अधुना प्राच्यप्रतीच्योभयशास्त्रपारदर्शिना कुशाग्रधीसम्पन्नेन श्रीमता गणनाथसेन-विद्यानिधि
महोदयेन तादृग् अतिदुरुहकार्यं लीलया सुष्ठु कृतमति तु महच्चित्रमेव । ग्रन्थस्य भाषासम्पद्वर्णना-
वैचित्र्यञ्च मामिदं वक्तुं मुखरयति यद् अपि खलु चरकमुनिरेव उत वा भगवान् शङ्कराचार्यः, उत वा
कोप्यन्यः प्राचीन ऋषिः योऽधुना पुनः पृथिव्यामाविर्भूय आयुर्वेदशास्त्रस्य चिरन्तनमभावं
दूरीकर्तुं मित्थं प्रयतते ।”

कुचविहारराज्याधिपति-चिकित्सकानां सुप्रसिद्ध “वनौषधिदर्पण” ग्रन्थकृतां
कविराज श्रीविरजाचरण काव्यतीर्थ कविभूषण महोदयानाम्—

“प्रत्यक्षदृष्टनिखिलार्थकमद्य शास्त्रमुद्घोतयन्तं श्रीमद्गणनाथसेनं को नाम नार्हत्यभिनन्दितुं
जनहितकामी । अस्तु निर्विघ्नपरिसमाप्तिः प्रत्यक्षशारीरस्य । बीजरूपं धन्वन्तरिप्रोक्तं शारीर-
तत्त्वं महीरुहसदृशेन प्रत्यक्षशारीरेण प्रपञ्चयता श्रीमद्गणनाथेन “कुशलेनाभिपन्नं तद् बहुधा
विप्ररोहति” इति धन्वन्तरिवाक्यम् सफलीकृतम् । पारिभाषिकसंज्ञारचनयामभिधेयवर्णने,
चित्रव्याख्यायां, मुद्रणव्यापारे च ग्रन्थकर्तुं यां श्रमशीलता, कार्यपटुता, लिपिकुशलता, गभीर-
दर्शिता च परिस्फुटा, कालेऽस्मिन् पाल्हाविकोत्पातबहुले सुदुर्लभैव सा ।”



गुरुकुलकागड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित
है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छे
नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का
अर्थदण्ड लगेगा।

| | | |
|--------------|---------|--|
| 12 SEP 1961 | रु० १/२ | |
| 26 SEP 1961 | २ | |
| 25 MAY 1962 | अ. ३८३ | |
| - 7 AUG 1964 | | |
| 221183 | | |

१००००.६.५६१ ३०, २८०

20.03

SAMPLE STOCK VERIFICATION

1988

VERIFIED BY rk

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

५३००३

वर्ग संख्या....९८८॥

आगत संख्या ३०२८०

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

Signature with Date

